रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

AN ANALYTICAL STUDY OF THE HISTORICAL NOVELS OF RANGEY RAGHAV

Thesis

Submitted to

Cochin University of Science and Technology

for the degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

षाजू टी. पी.

SHAJU T. P.

Dr. A. ARAVINDAKSHAN

(Professor and Dean - Faculty of Humanities)

Supervising Teacher

DEPARTMENT OF HINDI

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

COCHIN - 682 022

1998

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis is a bonafide record of work carried out by Sri. T.P. Shaju under my supervision for Ph.D. degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

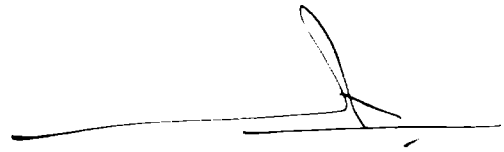

DR. A. ARAVINDAKSHAN
(Professor and Dean Faculty of Humanities)
SUPERVISING TEACHER

Department of Hindi
Cochin University of Science & Technology
Kochi-682 022

28th December 1998

DECLARATION

I hereby declare that the work presented in this thesis is based on the original work done by me under the guidance of Dr. A. Aravindakshan, Professor, Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology, Cochin-682 022, and no part of this thesis has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree in any University.

SHAJU T.P.

Department of Hindi,
Cochin University of Science & Technology
Kochi-682 022

28th December, 1998

ACKNOWLEDGEMENT

This work was carried out in the Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology, Kochi-682 022, during the tenure of fellowship awarded to me by the Cochin University of Science and Technology for the help and encouragement.

SHAJU T.P.

Department of Hindi
Cochin University of Science & Technology
Kochi-682 022.

28th December 1998

विषयानुक्रमणिका

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

भूमिका — 1 - 7

अध्याय : एक — 8 - 46

रांगेय राघव : व्यक्ति और रचनाकार

जीवन वृत्त - शिक्षा - इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व - जीवन संघर्ष - लेखन का आरंभ - रांगेय राघव की साहित्यिक मान्यताएँ - रांगेय राघव की राजनीतिक मान्यताएँ - रांगेय राघव की सामाजिक मान्यताएँ - रांगेय राघव के कृतित्व के विभिन्न आयाम - उपन्यासकार रांगेय राघव - सामाजिक उपन्यास - ऐतिहासिक उपन्यास - जीवनचरितात्मक उपन्यास - आँचलिक उपन्यास - महायात्रा गाथा - कहानीकार - कवि - नाटककार - रिपोर्ताज लेखक - समीक्षक - इतिहासकार - अनुवादक - पुरस्कार प्राप्ति - निष्कर्ष ।

अध्याय दो — 47 - 77

रांगेय राघव की इतिहास-दृष्टि

प्राचीन भारतीय इतिहास - प्रागैतिहासिक काल - आग्नेय युग - द्रविडों से पहले - पूर्व प्राचीन काल - द्रविड युग - किरात - देव - असुर युग - देव-असुर-किरात युग - सत्य युग - पूर्व वैदिक काल - त्रेता युग - उत्तर वैदिक काल - द्वापर युग - कलियुग - गणनास्तिक युग - इतिहास अध्ययन के संबंध में रांगेय राघव का मत -

पृष्ठ संख्या

रांगेय राघव की इतिहास-दृष्टि पर इतिहासकारों
का आरोप - निष्कर्ष ।

अध्याय : तीन 78 - 123

रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास
और कल्पना

इतिहास और कल्पना - ऐतिहासिक उपन्यासों के
प्रकार - इतिहासप्रधान ऐतिहासिक उपन्यास -
इतिहासाश्रित ऐतिहासिक उपन्यास - कल्पनाप्रधान
ऐतिहासिक उपन्यास - तथ्य चयन का परिदृश्य -
कालखंड का संदर्भ - ऐतिहासिक व्यक्ति बनाम पात्र -
आचार-विचार एवं सामाजिक प्रथाएँ - ऐतिहासिकता
की वांछित दिशाएँ - निष्कर्ष ।

अध्याय चार 124 - 163

रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यास और भारतीय संस्कृति
का समावेश

भारतीयता की पहचान - भारतीय संस्कृति का
प्रगतिशील संदर्भ - भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिकता-
एकता का सन्देश - रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों
के सांस्कृतिक पक्ष - सिन्धुघाटी संस्कृति और "मुर्दों का
टीला" - महाकाव्यकालीन जातीय-संस्कृति और "अंधेरे के
जुगनू" - हर्षकालीन भारतीय संस्कृति और "चीवर" -

पृष्ठ संख्या

भारतीय संस्कृति में बौद्ध-जैन धर्म का परिदृश्य

"पक्षी और आकाश" तथा "राह न रुकी" - निष्कर्ष ।

अध्याय पाँच 164 - 217

रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों का शिल्पपरक अध्ययन

ऐतिहासिक उपन्यासों की शिल्प-विधि में वातावरण का महत्व - ऐतिहासिक उपन्यास के कथानक का स्वरूप - कथानक का संगठन - ऐतिहासिक उपन्यासों की पात्र-परिकल्पना - ऐतिहासिक उपन्यासों की भाषा - ऐतिहासिक उपन्यासों में प्रयुक्त शैलियाँ - रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों के आधार - मुर्दों का टीला - अंधेरे के जुगनू - चोवर - पक्षी और आकाश - राह न रुकी - रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक और काल्पनिक पात्र - प्रमुख ऐतिहासिक पात्र - राज्यश्री - हर्षवर्द्धन - वसुमति - दधिवाहन - प्रमुख काल्पनिक पात्र - मणिबंध - नीलुफर - विश्वजीत् - धनकुमार - प्रावृट - भुमन्यु - ऐतिहासिक प्रभावान्विति और शब्दप्रयोग - भाषा शैली - सूक्तियों का प्रयोग - निष्कर्ष ।

उपसंहार 218 - 227

ग्रंथ-सूची 228 - 246

भूमिका

भूमिका

ऐतिहासिक उपन्यास अतीत के संदर्भ में वर्तमान का ऐसा अध्ययन है जिसमें अतीत अपने वर्तमान संदर्भ के पर्याप्त संकेतों सहित प्रकट होता है । श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य, समाज और भाषा के साथ राष्ट्र की अविचल संपत्ति है जो आनेवाली पीढ़ी को अतीत के तमाम राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिदृश्यों का परिचय कराता है । अत: ऐतिहासिक उपन्यासों में मनुष्य का जीवन अपने संपूर्ण राग-विराग के साथ पुनर्जीवित हो सकता है । हिन्दी साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यासों की एक सशक्त परंपरा विकसित हुई है । हिन्दी में इस परंपरा की शुरूआत सबसे पहले किशोरीलाल गोस्वामी ने की है । आगे चलकर वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, जयशंकर प्रसाद, राहुल सांकृत्यायन, चतुरसेन शास्त्री, यशपाल, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, रांगेय राघव, अमृतलाल नागर, नरेन्द्र कोहली आदि प्रमुख रचनाकारों ने इसको अधिक जीवन्त, सशक्त और गतिशील बनाया है । इनमें प्रत्येक रचनाकार ने इस क्षेत्र में अपनी-अपनी प्रतिभा और रचना-कौशल का परिचय दिया है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में "रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों का विश्लेषणात्मक अध्ययन" किया गया है । रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यास प्रागैतिहासिक काल की ओर एक लंबी यात्रा है अथवा इतिहास की अतल गहराइयों का रहस्योद्घाटन हैं । उन्होंने प्रागैतिहासिक काल से लेकर सामाजिक विकास की विभिन्न मंजिलों का अध्ययन किया और विकास के नियमों का पता लगाया । अत: उनकी ऐतिहासिक रचनाएँ

ऐतिहासिक संघर्ष का जीवन्त दस्तावेज़ हैं । इस शोध-प्रबन्ध में ऐतिहासिक उपन्यास के विभिन्न तत्वों पर प्रकाश डाला गया है, जैसे एक श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास कैसा स्वरूप है, हमारे सांस्कृतिक इतिहास व्यापक परिप्रेक्ष्य में उसका महत्व क्या है, ऐतिहासिक उपन्यास के अंतरंग में रचना के अवसर क्या क्या घुल मिल जाते हैं और यथार्थ एवं कल्पना समावेश का क्या अनुपात होता है आदि ।

रांगेय राघव हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठित उपन्यासकार और चिन्तक हैं । उनके साहित्य की किसी भी शाखा पर गंभीरतापूर्वक कोई अध्ययन अभी तक नहीं हुआ है । उनके ऐतिहासिक उपन्यास वस्तुतः अनदेखे ही रह गए हैं । इस शोध-प्रबंध में, इसलिए रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है क्योंकि शोध-कार्य के लिए एक नया क्षेत्र चुना जा सके जिस पर शोधपरक प्रकाश डाला जाना चाहिए । कई युगों को समेटनेवाले रांगेय राघव के उपन्यासों का मूल्यांकन साहित्य की अमूल्य विरासत का विश्लेषण है और वह हमें विवेचन का एक नया आलोक भी प्रदान करता है । इस कारण से मैं ने रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों को अपने विषय के रूप में चयन किया ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के पाँच अध्याय हैं । पहला अध्याय "रांगेय राघव व्यक्ति और रचनाकार" शीर्षक से है । जब किसी विशेष लेखक पर शोध-कार्य किया जाता है तब उसकी रचना-धर्मिता के साथ ही साथ उसके व्यक्तित्व को भी निकट से पहचानना आवश्यक हो जाता है क्योंकि

एक यथार्थ रचनाकार का व्यक्तित्व बहुमुखी होता है । जिसका प्रतिफलन उनकी रचनाओं में अनुभव किया जा सकता है । इसीलिए इस अध्याय में रांगेय राघव के जीवन-वृत्त और अन्य जीवनीपरक तथ्यों पर भी प्रकाश डालने के उपरान्त उनकी साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक मान्यताओं का विश्लेषण भी प्रस्तुत किया गया है । रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों के अतिरिक्त उनके संपूर्ण कृतित्व का संक्षिप्त परिचय भी इस अध्याय में दिया गया है । निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि प्रतिभा, व्यक्तित्व और सृजनात्मकता के मूल्यांकन को दृष्टि में रखकर इस अध्याय को स्वरूप दिया गया है ।

दूसरा अध्याय है "रांगेय राघव की इतिहास-दृष्टि" । प्राचीन भारतीय इतिहास और हमारी जातीय परंपरा के संबंध में रांगेय राघव का अपना दृष्टिकोण रहा है । प्राचीन भारत के सांस्कृतिक इतिहास की खोज के साथ ही साथ हमारी जाति-व्यवस्था, सामाजिक ऊँच-नीच और अन्य तत्वों पर भी शोध करने की उनकी तीव्र इच्छा थी । इस इच्छा से प्रेरित होकर "प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास" नामक इतिहास ग्रंथ का प्रणयन उन्होंने किया है । हिन्दी साहित्य के लिए उनका यह ग्रंथ एक अमूल्य देन है । इसमें उन्होंने प्रागैतिहासिक काल से लेकर भारतीय इतिहास का सूक्ष्म और गंभीर अध्ययन प्रस्तुत किया है । रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों का आधार वास्तव में यह ग्रंथ है । अत: उनके ऐतिहासिक उपन्यासों के मूल तत्व को समझने के लिए इस ग्रंथ का अध्ययन ज़रूरी है । अत: दूसरे अध्याय में रांगेय राघव के प्रस्तुत इतिहास ग्रंथ के विश्लेषण के साथ ही उनके इतिहास-दृष्टि पर भी विचार किया गया है ।

"रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास और कल्पना" शीर्षक तीसरे अध्याय में इतिहास और कल्पना के प्रयोग के आधार पर ऐतिहासिक उपन्यासों के विभिन्न प्रकारों पर विचार किया गया है जैसे - §1§ इतिहासप्रधान §2§ इतिहासाश्रित और §3§ कल्पनाप्रधान ऐतिहासिक उपन्यास । आगे ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास और कल्पना की आनुपातिक भूमिकाओं पर भी विचार किया गया है । साहित्यिक कृति होने के नाते ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास के साथ ही औपन्यासिकता को सुरक्षित किया जाना चाहिए । रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना तत्वों और ऐतिहासिक तथ्यों का अंतरसंबंध ही इस अध्याय का मुख्य प्रतिपाद्य है । इधर एक तत्व पर दूसरे तत्व के हावी होने का सवाल उठता है । अत: इस अध्याय में इतिहास और कल्पना की पारस्परिकता का सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

चौथा अध्याय है "रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यास और भारतीय संस्कृति का समावेश ।" इसमें भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है । भारतीय संस्कृति समन्वयात्मक है, उसका समाज-शास्त्रीय आधार है । भारतीय संस्कृति पर जातीय प्रभाव के सवाल पर रांगेय राघव की कुतूहलता थी । एक शोधार्थी की तरह उन्होंने अतीत की खोज की है और भारतीयता को अलग पहचाना जिसे हम भारतीय संस्कृति कहते हैं । अन्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों की भाँति रांगेय राघव ने अपने उपन्यासों में समीपस्थ अतीत को नहीं लिया है । उनके प्रत्येक ऐतिहासिक उपन्यास में प्रागैतिहासिक या प्राचीन युगीन भारतीय संस्कृति के किन्हीं विशिष्ट कालखंड को उभारा गया है । इस अध्याय में विभिन्न- उपन्यासों

में आए ऐतिहासिक परिदृश्यों और कल्पना पर आधारित परिदृश्यों को प्रस्तुत करके उनके अध्ययन से उभारे गए सांस्कृतिक पहलुओं को देखा गया है ।

शोध-प्रबंध के पाँचवें अध्याय का शीर्षक है "रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों का शिल्पपरक अध्ययन" । इसमें शिल्प-विधान को विन्यासगत रचना-कौशल के अंतर्गत रखकर ऐतिहासिक उपन्यासों की शिल्पगत विशिष्टताओं पर प्रकाश डाला गया है । ऐतिहासिक उपन्यासों के वस्तुचयन में वातावरण, पात्र, कथानक, भाषा आदि सामाजिक उपन्यासों की तुलना में भिन्नता के साथ आते हैं । इनके आधार पर इस अध्याय में रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों का शैल्पिक अध्ययन किया गया है ।

उपसंहार में रांगेय राघव की रचनात्मक उपलब्धियों को समाविष्ट करने का कार्य किया है । एक साहित्यकार विभिन्न विधाओं में अपने को अभिव्यंजित करता है और रांगेय राघव ने ऐसा किया है । यहाँ विवेच्य विषय ऐतिहासिक उपन्यास है जिसके माध्यम से रांगेय राघव ने रचनात्मकता के शिखर को कैसे छु लिया है, यही आँका गया है । ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में रांगेय राघव की सार्थक भूमिका को उपसंहार में रेखांकित किया है ।

प्रस्तुत शोध-कार्य कोचिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के श्रद्धेय गुरुवर प्रोफेसर डॉ. ए. अरविन्दाक्षन जी के विद्वत्तापूर्ण निर्देशन में संपन्न

हुआ है । उनके पांडित्यपूर्ण निर्देशों तथा सुझावों ने मुझे काफी प्रेरित किया है । उनके प्रति मैं आभारी रहूँगा ।

इस विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रोफेसर डॉ. एन. मोहनन इस शोध-कार्य में हमेशा मुझे प्रोत्साहन देते रहे । मैं ने उनकी सहृदयता का लाभ उठाया है । उनके प्रति भी मैं हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ । इस विभाग के अन्य गुरूजनों के प्रति भी मैं आभार प्रकट करता हूँ कि इस शोध-कार्य में वे मुझे निरन्तर प्रोत्साहन देते रहे हैं ।

कोचिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के एरणाकुलम और चेन्नई केन्द्र, कालिकट विश्वविद्यालय, महाराजास कॉलेज, एरणाकुलम आदि पुस्तकालयों तथा कोट्टयम के सार्वजनिक पुस्तकालय आदि के अधिकारियों ने समय-समय पर आवश्यक पुस्तकें देकर इस शोध-कार्य में मेरी सहायता की है । उनके प्रति भी मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ । इस शोध-प्रबन्ध की तैयारी के सिलसिले में मैं ने जिन ग्रंथों का उपयोग किया है उनके लेखकों के प्रति भी मैं आभार प्रकट करता हूँ ।

अंत में बडी विनम्रता के साथ मैं यह शोध-प्रबन्ध सहृदय विद्वानों के सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ । सुधी जन जानते हैं कि कोई भी अध्ययन अपने आप में पूर्ण नहीं है । मैं ने इसे स्तरीय बनाने की कोशिश की है । अतः इस अपूर्णता के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ ।

सविनय,

हिन्दी विभाग,
विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कोचिन
कोच्चि - 682022.

षाजु. टी. पी.

तारीख 28. 12. 1998

अध्याय : एक

रांगेय राघव व्यक्ति और रचनाकार

प्रेमचन्दोत्तर युग के हिन्दी साहित्यकारों में रांगेय राघव का विशिष्ट स्थान हैं । वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं । रांगेय राघव हिन्दी साहित्य में अज्ञेय, जैनेन्द्र, मोहन राकेश को परंपरा में न आकर राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, भगवतशरण उपाध्याय, अमृतलाल नागर की परंपरा में आनेवाले हैं । वे प्रगतिशील लेखक हैं । अलावा इसके राहुल सांकृत्यायन के समान वे पुरातत्ववेत्ता और व्याख्याकार भी रहे । सर्जक साहित्यकार के अलावा रांगेय राघव उच्चकोटि के शोधकर्ता और इतिहासकार हैं । उनके ग्रन्थ अनेक विषयों से संबंधित हैं और उनका क्षेत्र अत्यंत व्यापक है ।

रांगेय राघव ने 21 वर्ष की आयु से लेकर 39 वर्ष की आयु तक के अपने जीवनकाल में हिन्दी साहित्य की प्राय: सभी विधाओं में लेखनी चलाई और अपने नाम की अमिट छाप छोड दी । उनके लगभग 150 मौलिक तथा अनूदित ग्रंथ इसका प्रमाण है । भारतीय साहित्य के निर्माता रांगेय राघव हिन्दी साहित्य को भरा-पूरा देखना चाहते थे । उनकी मेधा एवं विलक्षण चिन्तन-शक्ति गंभीर अध्ययन का परिचायक है । "हिन्दी की युवा पीढी के लेखकों में रांगेय राघव ही ऐसे कलाकार थे जिन्होंने पौर्वात्य और पाश्चात्य ज्ञान-राशी का अद्वितीय समन्वय, अपने जीवन, साहित्य और चिन्तन में कर लिया था ।"[1] उनका जीवन साहित्य के लिए पूर्णत: समर्पित था । उनकी दृष्टि प्रगतिशील रही । वे हमारी महान परंपराओं के भी समर्थक थे । वंशावली से दक्षिणात्य होने पर भी उन्होंने उत्तर भारत को अपनी कर्म-भूमि बनाकर साधना की है ।

---

1. प्रेमचन्द्र "सुमन" - रेखाएँ और संस्मरण (1992) - पृ. 169.

रांगेय राघव के लेखन-चिन्तन का हिन्दी में सर्वाधिक महत्व है । परन्तु यह एक सच है कि उनके साहित्य का तटस्थ मूल्यांकन नहीं हुआ है । हिन्दी आलोचना जगत ने सदैव उनकी उपेक्षा की है । "जहाँ दूसरे लेखकों की साधारण कृतियों पर भी बहुत कुछ कहा-लिखा गया, एकाधिक दृष्टिकोणों से उन पर चर्चा हुई, रांगेय राघव की श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण कृतियाँ भी अनदेखी और उपेक्षित रह गई ।"[1] इसका एक प्रमुख कारण हिन्दी आलोचना-जगत का पूर्वाग्रह है । डॉ. रामविलास शर्मा का कथन है कि "जब तक मैं उनकी एक किताब का अध्ययन समाप्त करता हूँ, तब तक ये कई और लिख डालते हैं । सन् 1941 में मैं ने आगरा छोडा । तब तक रांगेय राघव की प्रतिभा का पूर्ण प्रस्फुटन हो चुका था । तब भी वे अनेक पुस्तकें लिख चुके थे ।"[2] विदित है कि किसी के पास वह अपेक्षित धैर्य और एकाग्रता नहीं है जो रांगेय राघव के समग्र मूल्यांकन के लिए ज़रूरी है ।

जीवन वृत्त

रांगेय राघव का जन्म 17 जनवरी, 1923 को आगरा में हुआ । उनका मूल नाम टी. एन. वी. आचार्य याने तिरुमल्लै नम्बाकम् वीर राघव आचार्य था । साहित्यिक क्षेत्र में पदार्पण से उन्होंने "रांगेय राघव" नाम स्वीकार किया ।[3]

रांगेय राघव कुल से दक्षिणात्य हैं । ढाई शतक से उनके पूर्वज वैर (भरतपुर) के निवासी और वैर, बारोली गाँवों के जागीरदार रहे ।

---

1. मधुरेश - आलोचना - 31 जुलाई 1964 - पृ. 35
2. साहित्य संदेश - रांगेय राघव स्मृति अंक- जनवरी-फरवरी 1963 - पृ. 337
3. निष्ठा - रांगेय राघव अंक 1964 - पृ. 28

"रांगेय राघव के पिता रंगाचार्य संस्कृत के उच्चकोटि के ज्ञाता थे । वे फारसी के जानकार थे तथा कविता भी लिखते थे । उनकी माता कनकवल्ली परम विदुषी एवं तमिल, कन्नड और व्रजभाषा की ज्ञात्री थी ।"[1] रांगेय राघव को अपनी वंशावली का बहुत गर्व था । माँ और पिता के अतिरिक्त रांगेय राघव पर गहरी छाप डालनेवालों में उनके फूफा देशिकाचार्य थे जो वेदों के गंभीर विद्वान थे । पिता और फूफा के बीच प्राय: ही होते रहनेवाली साहित्यिक और दार्शनिक चर्चा का प्रभाव रांगेय राघव के मन पर अपने गहरे संस्कार छोड पाने में सफल हुआ है ।

7 मई, 1956 को सुलोचना जी से रांगेय राघव का विवाह हुआ । 8 फरवरी, 1960 को पुत्री का जन्म, जिसका नाम उन्होंने स्वयं सीमन्तिनी रखा ।

शिक्षा

रांगेय राघव का पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा आगरा में ही हुई । उनकी प्रारंभिक शिक्षा सैन्ट जॉन्स स्कूल और विक्टोरिया स्कूल, आगरा में हुई । तमिल, संस्कृत और फारसी के परंपरावाले परिवार में जन्म लेकर भी रांगेय राघव और उनके बडे भाइयों की शिक्षा अंग्रेज़ी माध्यम से हुई थी । यह उनके पिताजी के प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिणाम था । वे युग के साथ चलनेवाले व्यक्ति थे । उन्होंने अपने तीनों पुत्रों को आधुनिक शिक्षा दी ।

---

1. सुलोचना रांगेय राघव - रांगेय राघव एक अन्तरंग परिचय (1998) -पृ. 12

रांगेय राघव ने सन् 1941 में अंग्रेज़ी साहित्य के साथ दर्शन और अर्थशास्त्र लेकर स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की । सन् 1943 में उन्होंने सेन्ट जॉन्स कॉलेज में हिन्दी से एम.ए. किया । इसके बाद सन् 1948 में, उन्होंने "भारतीय मध्ययुग के संधिकाल का अध्ययन गोरखनाथ और उनका युग" विषय पर प्रोफैसर हरिहरनाथ टण्डन के निर्देशन में शोधकार्य संपन्न किया ।

घर पर ही उन्होंने पण्डित बालेश्वरप्रसाद शास्त्री से संस्कृत पढना प्रारंभ किया । एम.ए. पास कर लेने के पश्चात् भी संस्कृत का अध्ययन ज़ारी रखा । साहित्य के अतिरिक्त चित्रकला, संगीत और पुरातत्व में उनकी विशेष रूचि थी । सन् 1937 में शान्तिनिकेतन के एक विद्यार्थी से उन्होंने एक महीने चित्रकला का अभ्यास किया । इसके बाद अपने अनूदित पुस्तकों में उन्होंने खुद भाव-चित्र बनाए हैं ।

इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व

प्रतिभा, विद्वता और प्रगतिशील दृष्टि का समन्वय रांगेय राघव में दिखाई पडता है । उनकी प्रतिभा में कलाकार और साहित्यकार का संगम हुआ है । उनका व्यक्तित्व अपने कृतित्व के समान ही निराला और आकर्षक था । "लम्बा शरीर, शार्प चेहरा, उन्नत और स्निग्ध ललाट, लंबी एवं नुकीली नाक विशान नेत्र ‖ जिसमें देखनेवाला ही मुग्ध हो जाए ‖ गुलाबी पतले होंठ, आकर्षक भवें, सुकुमार शरीर और गौर वर्ण, सौम्य और शालीनता की प्रतिमूर्ति ऐसा था रांगेय राघव का व्यक्तित्व । उनकी वेश-भूषा बडी साधारण थी ।"[1]

---

1. साहित्य संदेश - जनवरी-फरवरी अंक 1963 - पृ. 337

मनुष्य के व्यक्तित्व के निर्माण में उसके जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का महान योग होता है । पारिवारिक जीवन उसका मूलाधार है । माता-पिता के द्वारा ही बच्चे का आन्तरिक और बाह्य व्यक्तित्व निर्मित और विकसित होता है । रांगेय राघव के जीवन में उनकी परिस्थितियो का महान योग रहा । उनका व्यक्तित्व अपने पिताजी और माताजी की चरित्रगत विशेषताओं का समन्वित रूप है । अपने स्वर्गीय पिता श्री रंगाचार्यजी के धैर्य और निर्भीकता की छाप उनके चरित्र पर पडी । स्वर्गीया माँ कनकम्मा की सरलता, उदारता और दयालुता ने उनके मानवतावादी दृष्टिकोण को पुष्ट किया ।

"रांगेय राघव कर्मठ व्यक्ति थे, इसलिए संघर्षपूर्ण जीवन में कभी भी व्याकुल नहीं हुए । स्वाभिमान की मात्रा उनमें अत्यधिक थी । सरल और सादा जीवन ही उनको प्रिय था । अपनी उदारता के कारण ही वे जीवन भर आर्थिक संकट के शिकार रहे । लेकिन इसके बारे में चिन्तित होना उनकी आदत नहीं थी । दूसरों के लिए उनकी जेब सदा खुली रहती थी । दीन और उनके साथी और मित्र बने ।"[1] निम्न और साधारण लोगों से वे समान स्तर पर संलाप करते थे और उनके साथी बनकर उनके जीवन का सच्चा अध्ययन करते थे । उनके उपन्यासों में और कहानियों में सामान्य लोगों के यथार्थ और ईमानदार चित्रण का यही रहस्य है । गाँव के लोगों में उनके प्रति इतनी श्रद्धा थी कि जो भी रास्ते में मिलते "महाराज" कहकर उनके सामने सिर झुकाते । रांगेय राघव भी किसान और मज़दूर वर्ग के लोगों के साथ इसी अभिन्नता से बातें करते, उनके घर के हालचाल पूछते कि सभी उनको

---

1. साहित्य संदेश - जनवरी-फरवरी अंक - पृ. 345

देखते ही, खिल उठते । वे गाँव के लोगों की भैयाजी थे । घर के नौकर और अन्य लोग ज्यों ही भैयाजी के पास आते इतने मुग्ध होकर उनसे बातें करने लगते जैसे कि रांगेय राघव सचमुच इन सबके बड़े भैया थे । गाँव की छोटी से छोटी घटना उनको आकर सुनाते और वे बड़े चाव से उन्हें सुनकर उनमें अपनी कहानियों और उपन्यासों की कथाएँ ढूँढा करते ।

वे बहुत ही तेज़ लिखनेवाले थे । "राई और पर्वत" उपन्यास तीन दिन में लिख डाला । "कब तक पुकारूँ" जैसा महाकाव्यात्मक उपन्यास एक माह में पूरा कर लिया । शेक्स्पीयर के एक-एक नाटक के हिन्दी अनुवाद एक-एक दिन में किए । भारत भूषण अग्रवाल के शब्दों में -"जैसी उद्दाम रांगेय राघव की लेखनी थी वैसी ही उनकी प्रज्ञा एवं उनका व्यक्तित्व था । दर्शन से लेकर नृतत्वशास्त्र तक उनकी रुचि थी, और मान्यता एवं धारणा को स्वयं परखकर देखने की उनकी वृत्ति थी ।"[1]

शोध-कार्य के संबंध में रांगेय राघव को शाँति-निकेतन जाना पड़ा था । वहाँ के जीवन और अध्ययन से उनके व्यक्तित्व और चिन्तन को नया मोड़ मिला । सुलोचना जी ने अपने संस्मरण में शाँति-निकेतन की इस पृष्ठभूमि को रांगेय राघव के शब्दों में ही उद्धृत किया है - "शाँति-निकेतन के वे दिन मेरेलिए, संस्कृति के एक संगम, एक मोड़ की तरह आए थे । किशोर था मैं जब, तब पिता ने अपने प्रकाण्ड पांडित्य से मेरे सामने उपनिषदों का वैभव बिखेर दिया था । दक्षिण के आलवारों के वे युगान्तकारी स्वर मेरे

---

1. भारत भूषण अग्रवाल - हिन्दी उपन्यास पाश्चात्य प्रभाव - पृ. 22।

सामने प्रतिध्वनित हो चुके थे और युग-संघर्ष ने मुझमें पाश्चात्य भौतिकवाद का अमर्ष भरा था । अपने कक्ष में मैं सोचता - भारत के अतीत की एक नहीं, अनेक धाराएँ मुझे भिगोती और कर्मठ जीवन के उद्यम का घर्षण मुझे पश्चिम की सीमा में बाँधने की चेष्टा करता । ऐसी थी मेरी पृष्ठभूमि जब मैं शाँति-निकेतन में बैठकर हठयोगी गोरखनाथ के बारे में अध्ययन कर रहा था ।"[1] सांस्कृतिक भिन्नता का यह अन्तर्द्वन्द्व उनके व्यक्तित्व पर अपनी निशानी छोड दी जिसे उन्होंने अपने कृतित्व पर बिखेर दिया ।

रांगेय राघव एक तरफ तो गंभीर परंपरावादी थे, तो दूसरी तरफ आधुनिक । कभी कभी धर्म के प्रति उनके मन में बडी आस्था जाग उठती है तब वे कहा करते थे कि "पता नहीं ये मेरे अपने संस्कार हैं या क्या लेकिन मंदिरों के घंटे जब बजने लगते हैं तो मुझे लगता है कि यह कोरा अंधविश्वास नहीं है । इसके पीछे कोई बडा सत्य अवश्य है । एक समय था जब ये मंदिर संस्कृति के बहुत बडे स्थल रहे थे । पश्चिम के भौतिकवादी कितना भी धर्म का मज़ाक बनाएँ परन्तु वह मानना पडेगा कि भारतीय जनता की प्रेरणा का जितना बडा स्रोत धर्म है उतना और नहीं ।"[2] किन्तु धर्म के नाम पर कहीं अत्याचार और शोषण होता है, गरीबों का खुन चुस लेता है तो उनका खुन खौल उठता है । यहाँ पर धर्म के प्रति रांगेय राघव की आस्था विलीन होती है और वे कहते हैं कि "मंदिर की जगह कोई जुते का दुकान खोलना है ।"[3] यह उनके विद्रोही-व्यक्तित्व का निशान है ।

---

1. सुलोचना रांगेय राघव - रांगेय राघव एक अन्तरंग परिचय - पृ. 14
2. साहित्य सन्देश - जनवरी-फरवरी अंक, 1963 - पृ. 329
3. सुलोचना रांगेय राघव - रांगेय राघव एक अंतरंग परिचय - पृ. 16

देश-विदेश में रांगेय राघव के मित्रों और प्रशंसकों की एक बहुत बड़ी मण्डली थी । लेकिन एक निर्भीक लेखक होने के नाते लोग उन्हें नापसन्द भी करते थे । यद्यपि उनके व्यक्तिगत संपर्क में आने से इनमें कई उन्हें प्यार करने लगते थे । रांगेय राघव तीखे और मधुर व्यंग्यकार थे । अपने पर कसे गये व्यंग्य पर भी वे वैसे ही खिलखिला कर हँसते थे जैसे दूसरों पर कसे गये व्यंग्य पर । उन्हें नींद न आने की बीमारी थी पर वे उसे साहित्य सृजन का वरदान के रूप में स्वीकारते थे । रांगेय राघव "चेन स्मोकर" थे । वे सिगरेट को लिखने की प्रेरणा मानते थे । उनका कहना है कि "सिगरेट लिखते समय एक ऐसा इन्टर्वेल देती है जिसमें आदमी खूब सोच सकता है ।"[1]

जीवन संघर्ष

रांगेय राघव के जीवन का प्रत्येक क्षण निरन्तर संघर्ष करते हुए बीता । यद्यपि निराशा उनके जीवन से विलग थी । यह उनकी ज़िद थी कि नौकरी मिलने पर भी नहीं करेंगे और लिखकर ही अपना निर्वाह ही नहीं करेंगे अपने को स्थापित भी करेंगे । लेकिन उन दिनों पत्रकारिता से आमदनी के रास्ते आज की तरह खुले नहीं थे । उनके समकालीन लेखक प्रेमचंद, वृन्दावनलाल वर्मा, यशपाल, जैनेन्द्र, उपेन्द्रनाथ अश्क आदियों ने शुरू में नौकरियाँ की या फिर प्रकाशन से ही शुरू किया । रांगेय राघव के साथ ऐसी कोई सुविधा नहीं थी । "उन्होंने जान-बूझकर अपने को एक ऐसी अंधेरी गली में बन्द कर लिया था जो दूसरी ओर से बन्द थी हो, उसमें घुस जाने

---

1. साहित्य संदेश - जनवरी-फरवरी अंक - 1963 - पृ. 337-38

के बाद लेखक ने आहत स्वाभिमान के कारण उसके पहले छोर पर स्वयं काँटेदार बाड खडी कर दी थी । पूरे जीवन उसी में घुटते और लहू-लुहान होते रहे क्योंकि वैकल्पिक रास्तों की तलाश में उनका विश्वास कम था ।"[1] स्वाभिमान और आदर्श-सिद्धांत ने उन्हें इतना दुस्साहसी बनाया कि टूट जाएँ, किन्तु न झुके ।

"समृद्ध एवं श्रीमन्त परिवार होने के बावजूद कोर्ट ऑफ वार्ड्स होने की वजह से रांगेय राघव के घर में धन का अभाव रहता था ।"[2] आर्थिक असुरक्षा ने रांगेय राघव के जीवन को अस्तव्यस्त कर दिया । इसी तनाव में बहुत कम पैसों में वे प्रकाशकों के हाथ अपनी पुस्तकें बेचते थे । "कब तक पुकारूँ" केवल पन्द्रह सौ रुपए में बेची गई थी । इस प्रकार जीविका के लिए वे पुस्तक का कॉपीराइट बेच डालते थे । इसी आर्थिक संकट से उबरने के लिए वे अनुवाद करते थे या समाजशास्त्र आदि पर पुस्तकें लिखते थे । पारिवारिक संकट से उबरने के लिए उन्हें अपनी पत्नी के आभूषणों को बेचना पडा । बीमारी के इलाज के लिए मुम्बई जाते समय, पैसे के अभाव में शादी में मिले चाँदी के बर्तनों को बेच दिया गया था । इन सबका संकेत सुलोचना जी ने अपने संस्मरण में दिया है ।

आर्थिक समस्याओं और असुरक्षा की भावना से ग्रस्त रहने के कारण ही वे असामान्य श्रम करते थे जो अन्ततः उनके लिए जान-लेवा साबित हुआ । लंबी बीमारी के बाद 12 सितंबर, 1962 को मुम्बई में उनका देहांत हुआ ।

---

1. मधुरेश - भारतीय साहित्य के निर्माता रांगेय राघव - पृ. 18-19
2. सुलोचना रांगेय राघव - संस्मरण - पृ. 15

लेखन का आरंभ

लिखने का अभ्यास तो उन्हें बचपन से ही था । कविता और कहानियाँ लिखकर रांगेय राघव ने सबसे पहले साहित्यिक जगत में पदार्पण किया । किसी भी विश्वविद्यालय में अध्यापन के लिए पूर्ण और उच्चतम शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी उन्होंने उस ओर ध्यान नहीं दिया । सन् 1937 में "साप्ताहिक विश्वामित्र" में प्रथम रचना के रूप में प्रकाशित उनके एक गीत ने अनजाने ही उनकी नियति तय कर दी थी । सारे परिणामों और स्वतंत्र लेखन के संकट को भली-भाँति पहचान कर उन्होंने लेखन-कार्य को आगे बढाया ।

उनकी एकमात्र महत्वाकांक्षा एक लेखक के रूप में प्रतिष्ठित होने की थी । कम से कम इस दिशा में उन्हें निराश नहीं होना पडा । अपने छात्र जीवन में ही "घरौंदा" से शुरू करके बहुत थोडे समय में उन्होंने साहित्य की सभी विधाओं में अपने को प्रतिष्ठित कर लिया । रांगेय राघव ने हिन्दी के लिए अपने जीवन को न्यौछावर कर दिया है । लिखना उनके जीवन का परम लक्ष्य था । वे दिन-रात लिखते थे । एक ही साथ वे 5-7 ग्रंथों की रचना में तल्लीन रहते थे । यह उनकी एकनिष्ठ जागरूकता और सचेतन व्यक्तित्व का द्योतक है । "यह एक आश्चर्य की ही बात है कि उपन्यास-लेखन में वे जिस तन्मयता से संलग्न रहते थे, उसी तल्लीन भावना से सृजन के प्रेरणा-दीप्त क्षणों में वह इतिहास और राजनीति जैसे शुष्क विषयों के ग्रंथों की रचना भी करते थे । कभी ऐसा नहीं हुआ कि राजनीति के बीहड पथ पर भटकते-भटकते उनके लेखक ने अपने उपन्यासों के पात्रों की कथा का सूत्र ही छोड दिया हो ।"[1]

---

1. क्षेमचन्द्र सुमन - रेखाएँ और संस्मरण - पृ. 170

रांगेय राघव के लेखन के संबंध में भारत भूषण अग्रवाल ने लिखा है कि "सच पूछिए तो हम लोगों की गोष्ठि में उसके बारे में यह मज़ाक बराबर प्रचलित रहता था कि वे तोलकर लिखते हैं । कलम तोल कर नहीं कागज़ तोलकर और गिन कर शब्द लिखनेवाले । हम लोगों को उसकी यह दुर्दम अभिभूत किए रहती थी ।"[1] रांगेय राघव प्रत्येक कार्य को व्यवस्थित रूप में करना पसन्द करते थे । रचना विशेष की अपेक्षित संख्या निर्धारित करके वे उनका अध्यायगत वर्गीकरण कर लेते हैं । उनके अनुसार "मुझे किसी पुस्तक विशेष की रूपरेखा बनाने में देरी लग सकती है, पर लिखने में तो समय नहीं लगता ।"[2] राजेन्द्र अवस्थी से बातचित के दौरान में रांगेय राघव ने कहा कि "अच्छा साहित्य हमेशा हीरे की तरह चमकता रहता है । मुझे विश्वास है कि मेरी रचनाएँ अभी नहीं मेरे मरने के बाद सिर पर उठाई जाएँगी। मैं ने खुन पसीना बहाकर लिखा है, खेल नहीं किया है ।"[3]

रांगेय राघव की साहित्यिक मान्यताएँ

सर्जक साहित्यकार के अतिरिक्त रांगेय राघव उच्चकोटि के शोधकर्ता और चिन्तक हैं । उनके ग्रंथ अनेक विषयों से संबंधित हैं और विषय क्षेत्र अत्यंत व्यापक हैं । सैद्धांतिक चर्चा के लिए उन्होंने स्वतंत्र ग्रन्थ लिखे हैं । साहित्य के स्वरूप संबंधी उनका अपनी स्पष्ट मान्यताएँ थीं ।

---

1. साहित्य संदेश - जनवरी-फरवरी अंक 1963 - पृ. 338
2. वही - पृ. 343
3. वही - पृ. 343

रांगेय राघव के अनुसार "साहित्य एक सामाजिक धरोहर है । जहाँ एक ओर वह समाज की देन है, दूसरी ओर वह समाज के स्वरूप का निर्माण करता है ।"[1] असल में साहित्य वह कलात्मक साधन है जो समाज की परिस्थितियों को भावों के माध्यम से प्रतिबिंबित करता है । आगे बढकर वह राजनीति के वस्तु-सत्य को मनोवैज्ञानिक ढंग से व्यक्ति और व्यक्तियों के सुख-दुःख के ताने बाने में पिरोकर प्रस्तुत करने में समर्थ है । साहित्यकार जीवन के यथार्थ को लेकर काव्य को भाव के माध्यम से शक्ति प्रदान करता है और जनकल्याण की ओर प्रेरित करके व्यक्ति का उत्तरदायित्व बढाते हुए उदात्त बनाकर व्यापकतम बनाता है । रांगेय राघव की इसी मेधा के आधार पर विश्वंभर-नाथ उपाध्याय ने उन्हें "कलासिक्त लेखक" की संज्ञा दी है -"रांगेय राघव "विराट" के स्रष्टा लेखक थे, "लघु" के अन्वेषक नहीं । इसीलिए उनका विश्वबोध, "क्लासिक" किस्म का है । वस्तुओं और घटनाओं को, उनकी समग्रता में देखने की शक्ति "क्लासिक" लेखकों में अधिक थी ।"[2]

रांगेय राघव उपयोगितावादी साहित्य के प्रबल समर्थक हैं । इसलिए ही वे कलावादी संप्रदाय के पक्षधर नहीं है । "कला कला के लिए" सिद्धांत उन्हें मान्य नहीं रहा । उनके अनुसार "कला मनुष्य के लिए" होना चाहिए । रांगेय राघव ने युग के प्रति ईमानदारी को साहित्यकार की सफलता के लिए अनिवार्य माना है । उसी प्रकार साहित्य पैम्फलेटों की भाँति परिवर्तित परिस्थिति में व्यर्थ नहीं हो जाता । "साहित्य को

---

1. रांगेय राघव - काव्य, यथार्थ और प्रगति - पृ. 106
2. विश्वंभरनाथ उपाध्याय - बिन्दु प्रतिबिन्दु, समकालीन आलोचना - पृ. 112

रांगेय राघव ने दो भागों में विभाजित किया है - एक रंजक जो हल्का, एक गंभीर जो भारी है ।"[1] अन्यत्र उन्होंने साहित्य के अनेक प्रयोजनों में से एक प्रयोजन मनोरंजन को भी स्वीकार किया है ।

"प्रतिभा" संबंधी रांगेय राघव का दृष्टिकोण विशेष उल्लेखनीय है । जैसे कि "सीखने की शक्ति मनुष्य में नैसर्गिक है, किन्तु साधारणत: यह शक्ति सामान्य ही होती है । समाज व्यक्ति पर अपना प्रभाव डालता है । समाज के प्रभाव को व्यक्ति ग्रहण करता है और इसी प्रक्रिया में व्यक्ति और समाज के द्वन्द्व में व्यक्ति की चेतना में गुणात्मक परिवर्तन होता है । वह परिवर्तन व्यक्ति का निरन्तर विकास करता है । विकास के क्रम में वह एक विशेषत्व प्राप्त कर लेता है जिसकी संज्ञा "प्रतिभा" है ।"[2] तात्पर्य यह है कि प्रतिभा पूर्ण रूप से व्यक्तिपरक होते हुए भी अन्ततोगत्वा अपने आरंभ से अंत तक समाजगत है । लेकिन "जब प्रतिभा अपनी व्यक्तिपरकता में इतनी डूब जाती है कि उसका समाज से संबंध विच्छिन्न हो जाता है, तब उसका स्रोत रुक जाता है और उसका विस्तार भी रुक जाता है ।"[3] रांगेय राघव ने इस प्रकार अन्तश्चेतनावादियों और मनोविश्लेषणवादियों की त्रुटियों को भी संशोधन किया और दृष्टिकोण में सर्वांगीणता और समग्रता पर ज़ोर दिया । आगे चलकर संपूर्ण यथार्थ की जो प्रवृत्ति प्रतिफलित हुई उसका प्रारंभ भी उन्होंने ही किया । नरेन्द्र कोहली के शब्दों में "रांगेय राघव का प्रतिभा संबंधी दृष्टिकोण संपूर्ण

---

1. रांगेय राघव - पाँच गधे - भूमिका - पृ. 4
2. रांगेय राघव - काव्य, कला और शास्त्र - पृ. 3
3. वही - पृ. 5

सामाजिक तो है ही, मौलिक और नवीन भी है । संस्कृत तथा हिन्दी की संपूर्ण काव्यशास्त्रीय परंपरा में प्रतिभा को इस प्रकार की व्याख्या उपलब्ध नहीं है ।"[1]

साहित्य का उद्देश्य व्यक्ति का विकास है और व्यक्ति का असली विकास उसके समस्त वातावरण का विकास है । इसी को जन-कल्याण की भावना कहते हैं । मानवीयतावाद ही साहित्य का मूल प्राण है । अतः जनता ही साहित्य की कसौटी है । रांगेय राघव के अनुसार "साहित्य व्यक्ति-वैचित्र्य का अखाडा नहीं है । वह तो व्यक्ति के उदात्तीकरण की साधना है । यह साधना व्यक्ति को खंड रूप में नहीं देखती उसे समाज के समस्त तारतम्यों से रखकर देखती है ।"[2]

रांगेय राघव के अनुसार "हिन्दी में प्रगतिशीलता का आन्दोलन कई भ्रामक आधारों पर बल देता रहा है । लेकिन सच्ची प्रगतिशीलता संकीर्ण मतवाद में न होकर जीवन के समग्र और यथार्थ दर्शन में है । स्वयं मार्क्स का भारत संबंधी ज्ञान अपूर्ण था । अतः भारत संबंधी उनकी मान्यताएँ सही नहीं है ।"[3] रांगेय राघव के इन प्रयत्नों का ही यह फल हुआ कि प्रगतिवाद अपनी जडता को त्यागकर एक स्वस्थ समाजवादी यथार्थपरकता की ओर उन्मुख हुआ । प्रचार आन्दोलन का रूप त्यागकर एक जीवन-दर्शन का स्तर पा सका ।

---

1. नरेन्द्र कोहली - हिन्दी उपन्यास सृजन और सिद्धांत - पृ. 78
2. रांगेय राघव - काव्य, यथार्थ और प्रगति - पृ. 107
3. भारत भूषण अग्रवाल - हिन्दी उपन्यास पाश्चात्य प्रभाव (1971)-पृ. 22।

प्रगतिशील साहित्य संबंधी रांगेय राघव का दृष्टिकोण विशेष उल्लेखनीय है । जैसे कि "प्रगतिशील साहित्य और उसके मानदंड केवल राजनीति में समाप्त नहीं हो जाते, परन् मनुष्य जीवन की व्यापकता का स्पर्श करते हैं । प्रगतिशील साहित्य ही मनुष्य की गौरवशील गाथा है, जिसमें जीवन का सत्य ही उसके समस्त सौंदर्य का आधार होता है ।"[1] प्रगतिशील साहित्य पुराना मानवतावाद नहीं है जो समन्वय करता था, वह नया मानवतावाद है जो दूध का दूध और पानी का पानी करके दिखाता है ।"[2] "प्रगतिशील साहित्य समाज की जघन्य शोषण प्रवृत्तियों की उन ढँकी हुई वास्तविकताओं को उघारता है जो विश्वमानव के प्रेम में व्याघात डालती हैं ।"[3] "प्रगतिशील विचारक किसी को ईश्वर की शक्ति में विश्वास करने से रोकता नहीं । वह स्वयं भी उसकी शक्ति को मान सकता है, परन्तु वह शोषण के उस न्याय को नहीं मानता जो ईश्वर के नाम पर चालू रखा जाता है ।"[4] रांगेय राघव की ये मान्यताएँ विश्वसनीय और मूल्यवान हैं । प्रगतिवाद के संकीर्ण दायरे से मुक्त उनकी मान्यताएँ मुक्तिकामी चेतना से ओतप्रोत हैं ।

रांगेय राघव की राजनीतिक मान्यताएँ

अपने युग की प्रमुख राजनैतिक घटनाओं से रांगेय राघव सीधे जुड़े रहे । विद्यार्थी जीवन काल में ही वे क्राँतिकारी एवं प्रगतिशील

---

1. रांगेय राघव - प्रगतिशील साहित्य के मानदंड - भूमिका - पृ. ।
2. वही - पृ. 18-19
3. वही - पृ. 19
4. वही - पृ. 25

विचारों से प्रभावित रहे । वे अपने घर में ब्रिटिश सरकार विरोधी पैम्फलेट्स तैयार करवाकर बँटवाते भी थे । स्वतंत्रता-पूर्व युग की प्रमुख घटनाओं में जनता की साम्राज्य विरोधी चेतना और स्वाधीनता आन्दोलन में उनकी सक्रिय हिस्सेदारी सर्वोपरि महत्व रखती है । भारत में यह वामपंथी चेतना के उद्भव और प्रसार का काल था । वामपंथी विचारधारा और कम्युनिस्ट पार्टी के सांस्कृतिक मोर्चे पर रांगेय राघव निरंतर सक्रिय रहे । रांगेय राघव रचनाकार की राजनीतिक चेतना को बहुत महत्व देनेवाले हैं पर पार्टी से उसके सीधे जुड़ाव के पक्ष में नहीं हैं । उनका मानना है कि ऐसा करने पर उसकी रचनात्मक स्वतंत्रता और निर्णय क्षमता बाधित होती है । परन्तु अपने समय की प्रगतिशील और क्रॉतिकारी शक्तियों से वे सदैव जुड़े रहे ।

रांगेय राघव के अनुसार मार्क्सवाद उत्कृष्ट मानव-मूल्यों (समता, अशोषण, भ्रातृत्व, स्वतंत्रता) पर आधारित है । इन मानव-मूल्यों के लिए आदमी शुरू से ही लड़ता आया है । रांगेय राघव इस लड़ाई में दिलचस्पी रखते थे । "साम्यवाद से रांगेय राघव ने दृष्टि, पद्धति और मानव प्रेम लिया था । लेकिन साम्यवादी नमूने (मॉडल) की समाज व्यवस्था के कई पक्षों पर वह क्रुद्ध रहते थे तथा रूस में "वीरपूजा" और लेखन चिंतन की स्वतंत्रता के अभाव पर वे अक्सर खीझा करते थे । वे कहते थे, वर्ग-वर्णहीन समाज में स्वतंत्रता न होने से मानव विकास में बाधा पड़ती है ।"[1] आजीवन उन्होंने स्वतंत्र लेखन पर ज़ोर दिया है । राजनीतिक नेताओं से मुक्त हो पाने के कारण ही रांगेय राघव ने केवल साम्यवादी दल के साहित्य को

---

1. विश्वंभरनाथ उपाध्याय - बिन्दु प्रति बिन्दु - पृ. 106-107

प्रगतिशील साहित्य न मानकर ऐसी रचनाओं को प्रगतिशील माना है "जिनमें शोषण का विरोध हो, शोषितों के जीवन के दयनीय चित्र हों, शोषकों के स्वार्थ-रक्षा के घृणित प्रयत्नों का चित्रण हो और मानवतावादी विचारधारा के वैज्ञानिक विकास पर बल दिया हो ।"[1] वे शोषण के विरोधी और मानवता के पुजारी रहे । उन्होंने समूची मानव-जाति के विकास को रेखांकित करने की कोशिश की है ।

रांगेय राघव की सामाजिक मान्यताएँ

रांगेय राघव शुरू से ही व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि को महत्त्व देते रहे हैं । सामाजिक कल्याण ही उनका परम ध्येय रहा है । वे हमेशा कहा करते थे कि "मैं किसी पार्टी का सदस्य नहीं हूँ अतः जनता के प्रति ही ज़िम्मेदार हूँ, पार्टियों के प्रति नहीं ।"[2] वे भी मानवता के पुजारी थे । मानवीय व्यवहारों में किसी प्रकार की ज़ोर-ज़बरदस्ती को वे अमानवीय कहते थे । व्यष्टिवादी सुख-दुःखों से परे होकर वे समष्टि की कल्याण-कामना करते हैं । उनके शब्दों में -"मेरे सामने इतिहास है, जीवन है, मनुष्य की पीडा है और वह मनुष्य की चेतना जो निरंतर अंधकार से लड रही है और इससे बढकर अभी तक कोई सत्य मेरे सामने नहीं आया है । व्यर्थ की समस्याएँ मुझे नहीं आतीं और वह भी व्यक्तिवादी टूँटपूँजियेपन की ।"[3]

---

1. रांगेय राघव - प्रगतिशील साहित्य के मानदंड - पृ. 18
2. वही - भूमिका ।
3. रांगेय राघव - उपन्यास कैसे लिख गए - साहित्य संदेश, जुलाई-अगस्त अंक 1956 - पृ. 87

समाजशास्त्रियों और अन्य आचार्यों के समान रांगेय राघव भी यह मानते हैं कि समाज की आर्थिक व्यवस्था का परिवर्तन ही मूल परिवर्तन है । आर्थिक ढाँचे पर ही समाज के समस्त अंग निर्भर रहते हैं, उसी से सब पर प्रभाव पडता है । जब समाज का आर्थिक आधार बदलता है तब दर्शन, धर्म, राजनीति इत्यादि भी बदलने लगते हैं । समाज की मूल विकृति है संपत्ति के उत्पादन और वितरण में असमानता और शोषण । धन के माध्यम से जो आज सारे संबंध नियंत्रित हैं वह मनुष्य की सबसे बडी विकृति है । धन तो आज व्यक्तिगत स्वतंत्रता देता है, न सामाजिक । इन सबके अतिरिक्त रांगेय राघव का मत है कि "समाज केवल आर्थिक आधारों से निर्मित नहीं होता, उसके और भी अनेक आधार होते हैं । जिन्हें सांस्कृतिक, दार्शनिक परंपरा, वर्णभेद की परंपरा इत्यादि के रूप में देखा जा सकता है ।"[1] सामाजिक अस्मिता की कई आधार-शिलाएँ मौजूद हैं । आर्थिक आधार इसका अभिन्न अंग बन चुकी है ।

रांगेय राघव का प्रबल विश्वास है कि संसार भर के धर्म ने जन-समाज को दबाए रखने का काम किया है । ईश्वर का विभिन्न रूप गढकर मनुष्य ने जो विभिन्न सामाजिक प्रणालियों को शोषण भरा बनाकर न्याय कहा है, वह असत्य है । अत: ईश्वर के नाम पर जो ठगी चल रही है, वह बन्द होनी चाहिए ।

रांगेय राघव मानते है कि "एक युग का "उदात्त" दूसरे युग का नहीं होता, आज गाँधीवाद व्यर्थ है । नए समाज में नए आदर्शों

---

1. रांगेय राघव - प्रगतिशील साहित्य के मानदंड - पृ. 243

की माँग है । अब समन्वयवाद का युग नहीं है । आज मज़दूर क्राँति भी कालोचित नहीं है । अभी संयुक्त मोर्चे का युग है जो साम्राज्यवाद, सामन्तवाद और बडे पूँजीपतियों का विरोध करता है ।[1] रांगेय राघव सिर्फ जीवन का सर्वेयर नहीं हैं, अपने किए गए सर्वेक्षण के आधार पर उन्होंने कुछ निष्कर्ष भी निकालने का प्रयत्न किया है । साहित्य सृजन के द्वारा वे समाज के इन गतिशील शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करना वांछित समझते हैं ।

रांगेय राघव के कृतित्व के विभिन्न आयाम

अपनी अप्रतिम और विलक्षण सृजनात्मक प्रतिभा के बल पर रांगेय राघव ने हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं को समृद्ध किया है । वे उपन्यासकार, कहानीकार, कवि, नाटककार, प्रगतिशील रिपोर्ताज लेखक, इतिहासकार, प्रगतिशील समीक्षक और अनुवादक हैं । इन पक्षों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकरण में वांछित है ।

उपन्यासकार रांगेय राघव

एक उपन्यासकार के रूप में रांगेय राघव का पदार्पण "घरौंदा" के साथ हुआ । "घरौंदा", "शेखर एक जीवनी" से केवल एक वर्ष पश्चात् प्रकाशित हुआ था । रांगेय राघव प्रेमचन्दोत्तर दशक के स्मरणीय एवं प्रतिभाशाली उपन्यासकारों में से एक हैं । परिमाण तथा गुणात्मक मूल्य दोनों दृष्टियों से हिन्दी उपन्यास के विकास में उनका महत्वपूर्ण स्थान है ।

---

1. रांगेय राघव - प्रगतिशील साहित्य के मानदंड - पृ. 268

रौंदा" से "आखिरी आवाज़" तक रांगेय राघव ने एक लंबा रास्ता तय या है । उन्होंने लगभग अठतीस उपन्यास लिखे हैं । इन उपन्यासों को र श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है - (1) सामाजिक (2) ऐतिहासिक (3) जीवन चरितात्मक और (4) आँचलिक ।

मामाजिक उपन्यास

"घरौंदा" (1946) रांगेय राघव का प्रथम सामाजिक न्यास है । नागरिक कॉलेज जीवन का इतना ब्योरेवार चित्रण करनेवाला न्दी का एकमात्र उपन्यास है "घरौंदा", जिसमें रांगेय राघव ने भगवती ाद नामक ग्रामीण युवक को केन्द्र में रखा है । उपन्यास का प्रमुख विषय ाहिक चुनाव और युवक-युवतियों के प्रेममय जीवन का सुनहरा स्वप्न है । लोच्य उपन्यास सहशिक्षा के दुष्परिणाम, प्राध्यापकों के चारित्रिक पतन, दरियों के कुचक्र, वेश्यावृत्ति आदि कई समस्याओं को उजागर करता है । क ने इसमें सामाजिक शोषण के उन्मूलन का मार्ग भी प्रशस्त किया है ।

"विषाद मठ" (1946) में रांगेय राघव ने बंगाल के कर दुर्भिक्ष से प्रपीडित मानवों की अत्यंत दयनीय दशा का चित्रण किया । भूख की ज्वाला किस प्रकार मानव के सारे नैतिक मूल्यों को नष्ट करती जिसको उन्होंने उपन्यास का विषय बनाया है । इसमें एक ओर भूखे ी-पुरुष एवं बच्चों की करुण पुकार है तो दूसरी ओर स्वार्थ पूँजीपतियों हरकतें हैं । "विषाद मठ" में महाकाल के कारण सामान्य जनजीवन की

अकथनीय पीडाओं और परेशानियों के समीक्षण में लेखक की जनवादी दृष्टि स्पष्ट झलकती है ।[1]

"सीधा सादा रास्ता" (1951) रांगेय राघव ने भगवती चरण वर्मा के "टेढे मेढे रास्ते" के उत्तर में लिखा है । इसमें स्वतंत्रता पूर्व की सामाजिक पृष्ठभूमि तथा जीवन दर्शन का चित्रण हुआ है । "हुज़ूर" (1952) में सामाजिक शोषण, दरिद्रता और पराधीनता के बंधन में जकडे मानव जीवन का यथार्थमूलक चित्रण मिलता है । इसमें अंग्रेज़ी की शासन नीति, उनके अत्याचार, विलासिता, सामाजिक वैमनस्य, निम्न वर्ग की कुंठा आदि समस्याओं का जीवंत चित्रण है । रांगेय राघव के उपन्यासों में "हुज़ूर" शैली और शिल्प का नूतन उदाहरण है । लेखक ने एक क्षुद्र किन्तु स्वामिभक्त कुत्ते को पात्र बनाया है जिसके माध्यम से शोषितवर्ग की मर्मस्पर्शी अवस्था को अंकित किया है । शोषित-वर्ग इतना स्वामिभक्त है कि उनका जीवन निराशा और अवसाद में डूबा हुआ है । दबे-कुचले इन्सान की आवाज़ों में नए स्वर भरने की दृष्टि के कारण रांगेय राघव ने इस उपन्यास को व्यंग्यात्मक शैली में लिखा है ।

"उबाल" (1954) में शहरी और ग्रामीण जीवन पद्धतियाँ भिन्न भिन्न स्तरों पर वर्णित है । मनुष्य अपने यौवनकालीन जोश या उबाल में शुभाशुभ कर्म करता है । रांगेय राघव ने इसमें प्रेम की महत्ता के

---

1. डॉ. बदरीप्रसाद - प्रगतिवादी हिन्दी उपन्यास - पृ. 130

अतिरिक्त नारी जीवन तथा सामाजिक कुरीतियों पर भी प्रकाश डाला है । डॉ. इन्द्रनाथ मदान के शब्दों में "उबाल का अंजाम भाप होता है लेकिन कोई नहीं जानता कि ज़िन्दगी की तपिश के लिए पानी कहाँ-कहाँ से इकट्ठा होता है ।"[1] मार्मिक घटनाओं और पात्रों से यह उपन्यास एकदम आकर्षक बन गया है ।

"बौने और घायल फूल" (1957) का वर्ण्य विषय नारी समस्या, विधवा विवाह, दलित और पीड़ित व्यक्तियों के जीवन की समस्याएँ आदि हैं । सेनानियों के बलिदान की घटनाओं के कारण कथानक मार्मिक बन गया है । "राई और पर्वत" (1958) उपन्यास के द्वारा कुत्सित यथार्थ में आदर्श की किरण को चमकाना लेखक का लक्ष्य रहा है । अर्थलोलुपता, सैद्धांतिक शून्यता, शुद्ध प्रेम के प्रति समाज की घोर रूढ़िवादिता, जाति-प्रथा जैसी समस्याओं को इसमें उठाया गया है । "राई और पर्वत" एक ओर भारतीय ग्राम्य जीवन का चित्र उपस्थित करता है तो दूसरी ओर रांगेय राघव की उपन्यास कला का एक नया आयाम उद्घाटित करता है । डॉ. सुरेश सिन्हा के शब्दों में "यह उपन्यास राई के समान लघु है, पर इसका कैन्वास पर्वत के समान विराट है ।"[2] "बन्दूक और बोन" (1958) उपन्यास का प्रमुख विषय युद्ध और प्रेम है । प्रेम और शक्ति ही मानवीय संस्कृति के विकास की नींव है तथा युद्ध की जड़ मनुष्य का अहंकार है । इस तथ्य को उपन्यास द्वारा प्रकाश में लाने में रांगेय राघव सफल हुए हैं । सैनिक जीवन के चित्रण की दृष्टि से यह उनका पहला उपन्यास है ।

---

1. डॉ. इन्द्रनाथ मदान - आज का हिन्दी उपन्यास - पृ. 77
2. डॉ. सुरेश सिन्हा - हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास - पृ. 494

"छोटी सी बात" (1959) पत्रात्मक शैली का सामाजिक उपन्यास है । सच पर झूठ का स्याह पर्दा डालनेवाली सच्चाई को "छोटी सी बात" में कलात्मक ढंग से चित्रित किया है । राज और शिवपुरी के चरित्रों के माध्यम से नारी जागृति के सवाल को भी उभारा गया है । "पथ का पाप" (1960) में कथानायक किशनलाल के माध्यम से रांगेय राघव ने चरित्र-भ्रष्ट, नीच और स्वार्थी व्यक्ति की प्रगति समाज में प्रतिष्ठा के अधिकारी बन जाने का वर्णन किया है । वह अपनी सारी व्यक्तिगत तथा सामाजिक बुराइयों के बावजूद समाज के सबसे अधिक सुखी और सफल व्यक्ति है । उपन्यास के अंत तक वह अपनी असली चेहरे को छिपाकर रहता है । "दायरे" (1961) लघुकाय परन्तु विचारप्रधान सशक्त औपन्यासिक कृति है । रांगेय राघव ने इसमें मानव सभ्यता और संस्कृति के अविरोधी स्वरूप का चित्रण किया है । इसके विरोध में अविरोध, अनेकता में एकता, विग्रह में अविग्रह और घृणा में प्रेम आदि भारतीय संस्कृति की उत्कृष्ट मानव-मूल्यों पर बल दिया गया है ।

"कल्पना" (1961) उपन्यास का मुख्य विषयवस्तु स्त्री-पुरुष संबंधों की समस्याएँ हैं । आधुनिक नारी के जीवन से जुडे प्रश्नों को रांगेय राघव ने "नीला" के माध्यम से उभारा है । अनमेल विवाह की समस्या का समाधान भी प्रस्तुत किया गया है । "कल्पना" उपन्यास आत्म-कथात्मक शैली में लिखा गया है । "आग की प्यास" (1961) उपन्यास की विषयवस्तु यौन-अतृप्ति और अभाव से जन्मी ईर्ष्या से संकलित है । इसमें रांगेय राघव ने मध्यवर्गीय समाज की विविध समस्याओं का उद्घाटन किया है । आलोच्य उपन्यास अभावग्रस्त जलते जीवन की मार्मिक कहानी है । "पराया" (1962)

उपन्यास पूँजीवादी प्रवृत्ति का घृणित एवं तीखा चित्र उपस्थित करता है । "पूँजीवादी समाज में मनुष्य का उत्थान वास्तव में उसका चारित्रिक पतन है । वह जितना ही धन के कारण सम्मान पाता है उतनी ही उसकी आत्मा मरती जाती है । लालच की मिट्टी डाल कर वह अपनी आत्मा की लाश को ढँकता जाता है ताकि वह भीतर ही सड़ती रहे, बाहर बदबू न दे ।"[1]

"प्रोफेसर" (1962) एक वैचारिक उपन्यास है । इसमें उच्च और निम्न वर्ग के जीवन की समस्याएँ अंकित है । मुख्यत: भिखारियों के जीवन की समस्याओं को दर्शाया गया है । रांगेय राघव ने इसमें सुख-दुःख को दार्शनिक दृष्टिकोण से देखा-परखा है । "पतझर" (1962) शहरी जीवन से संबंधित उपन्यास है । इसमें मनोवैज्ञानिक आधार पर जाति-पाँति रूपी जीर्ण पात्रों के पतन को दर्शाया गया है । आलोच्य उपन्यास प्रतीकात्मक भी है । "आखिरी आवाज़" (1962) रांगेय राघव की अंतिम रचना है । उपन्यास का मुख्य उद्देश्य देहाती जीवन की दलबन्दी, स्वार्थपरता, मुकदमेबाजी तथा राजनीतिक दलों की कार्य-विधियों पर प्रकाश डालना है । "आखिरी आवाज़" गाँव के नैतिक स्खलन और पंचायतों की व्यर्थता का पर्दाफाश करता है ।

सामाजिक पृष्ठभूमि पर आधारित रांगेय राघव के औपन्यासिक कृतियाँ काफी सप्राण एवं जीवन्त बन पडी है । उनके प्रत्येक सामाजिक उपन्यास में सत्य का एक नवीन स्तर उद्घाटित होता है ।

---

1. रांगेय राघव - पराया - पृ. 104

साथ ही साथ इनमें नवीन जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति प्रेषणीय है । जीवन के यथार्थ के समावेश में उनके सामाजिक उपन्यास सफल हुए हैं । रांगेय राघव के इन उपन्यासों में पूँजीवाद, शोषण एवं बुर्जुवा मनोवृत्ति का तीव्र विरोध द्रष्टव्य है । वर्ग-विषमता, मानवीय कुरूपता, सामाजिक विकृतियों और अत्याचारों पर उन्होंने मारक व्यंग्य कसा है ।

ऐतिहासिक उपन्यास

"मुर्दों का टीला" (1946), "चीवर" (1951), "अँधेरे के जुगनू" (1953), "राह न रुकी" (1958), "पक्षी और आकाश" (1958) आदि रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यास हैं । ये हिन्दी के इने-गिने प्रामाणिक ऐतिहासिक उपन्यास हैं । इन उपन्यासों का इस प्रकरण में विश्लेषण अपेक्षित नहीं है ।

जीवनचरितात्मक उपन्यास

जीवनचरितात्मक उपन्यास रांगेय राघव की मौलिक देन है । इसके पूर्व कतिपय ऐतिहासिक उपन्यासों में जीवनचरितात्मक उपन्यासों के लक्षण दिखलाई पड़ते हैं, किन्तु उनमें ऐतिहासिक वातावरण जीवन्त है । इसलिए वे जीवनचरितात्मक उपन्यास के बदले में ऐतिहासिक उपन्यास की कोटि में आते हैं । जोवनचरितात्मक उपन्यासों में उपन्यासकार की दृष्टि ऐतिहासिक परिस्थितियों को अपेक्षा कथानायक पर अधिक रहतो है । ऐतिहासिक उपन्यासों में अधिकांश पात्र और घटनाएँ इतिहास पर दबाव डालनेवाली हैं तो इन उपन्यासों में युग का कोई विशिष्ट पुरुष,

लोकनायक या कवि ले लिया गया है । जीवनचरितात्मक उपन्यास जीवनी से भी भिन्न होकर उपन्यास के तत्वों के आधार पर निर्मित है । जैसा कि जीवनी में कथानायक के जन्म से लेकर मृत्यु तक का क्रमिक विकास वृत्तान्त रूप में मिलता है । लेकिन जीवनचरितात्मक उपन्यास की शैली में कथा-गठन और वर्णन मिलता है । "देवकी का बेटा" से लेकर "भारती का सपूत" तक रांगेय राघव के कई जीवनचरितात्मक उपन्यास प्रकाशित हुए हैं ।

"देवकी का बेटा" (1954) रांगेय राघव का प्रथम जीवनचरितात्मक उपन्यास है । यह उपन्यास महाभारतकालीन कथ्य संदर्भों पर आधारित है । इसमें रांगेय राघव ने कृष्ण के व्यक्तित्व को युग की सान्दर्भिकता के साथ प्रस्तुत किया है । इसलिए उपन्यास में सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थितियाँ भी उभर आई हैं ।

"लोई का ताना" (1954) रांगेय राघव का एक सफल जीवन चरितात्मक उपन्यास है । इसमें कबीर को विशिष्ट पुरुष और लोकनायक के रूप में चित्रित किया गया है । अपने युग की सीमाओं के बीच कबीर का विद्रोह तथा निम्न-वर्ग के प्रति उनकी संवेदना को इस उपन्यास में प्रमुख स्थान दिया गया है ।

"यशोधरा जीत गई" (1954) एक लघुकाय जीवनचरितात्मक उपन्यास है । इसमें गौतम बुद्ध की जीवन-यात्रा के विभिन्न मोडों और परिवर्तनों को मनोवैज्ञानिक संदर्भों में चित्रित किया गया है । इस उपन्यास

में गौतम बुद्ध का व्यक्तित्व अलौकिक चमत्कारों तथा सांप्रदायिक संदर्भों से अलग होकर पूर्णत: मानवीयता के धरातल पर अवस्थित है । रचनाकार की दृष्टि मात्र गौतम बुद्ध का ही शील निरूपण नहीं करती वरन् यशोधरा के विद्रोह का उद्घाटन भी करती है । नारी जागरण के साथ इसमें रांगेय राघव ने तत्कालीन युग के धार्मिक-सांस्कृतिक पहलुओं को भी उजागर किया है ।

"रत्ना की बात" (1954) तुलसीदास के व्यक्तित्व पर आधारित जीवन-चरितात्मक उपन्यास है । इसमें रत्ना को तुलसी की प्रेरक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित की गई है । "भारती का सपूत" (1954) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जीवन-चरित्र को लेकर लिखा गया है । रांगेय राघव ने इसमें भारतेन्दु के व्यक्तित्व का उद्घाटन सफलता से किया है । उपन्यास में 19 वीं सदी के सामन्ती जीवन को उतारा गया है । "प्रतिदान" (1956) द्रोणाचार्य के जीवन-चरित्र पर आधारित उपन्यास है । इसमें द्रोणाचार्य का व्यक्तित्व, विचारधारा, उनके जीवन-संघर्ष आदि को रेखांकित किया गया है । रांगेय राघव ने इसमें महाभारत के प्रारंभिक काल का चित्रण किया है ।

"लखिमा की आँखें" (1957) उपन्यास में विद्यापति के जीवन की घटनाओं, उस युग की सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों को भी चित्रित किया गया है । उपन्यास की ऐतिहासिक एवं सृजनात्मक पृष्ठभूमि अत्यंत व्यापक है । जाति-पाँति, लूटमार, बाल-विवाह जैसी समस्याओं के साथ-साथ तत्कालीन युग-जीवन के यथार्थ चित्रण होने के कारण

यह कृति महत्वपूर्ण बन गई है । "धुनी का धुआँ" (1958) दसवीं शताब्दी से संबंधित उपन्यास है । गोरखनाथ के जीवन-चरित्र को लेकर लिखे गए इस उपन्यास में समकालीन परिस्थितियों का चित्रण भी है । नारी को फिर से प्रतिष्ठित करने का प्रयास आलोच्य उपन्यास की महत्वपूर्ण उपलब्धि है । "जब आवेगी काली घटा" (1958) में योगी चर्पटनाथ तथा इनके योगी समूहों के अलाउद्दीन खिलजी के साथ हुए संघर्ष का वर्णन हुआ है । भारतीय जीवन की अराजकता, विश्रृंखलता, नैतिक पतन आदि का विवेचन इस कृति में है । "नाथों ने भारत में पारस्परिक वैमनस्य को दूर करने के प्रयास किए । नामदेव ने निराश जनता में भविष्य की आशा जगाई ।"[1] "मेरी भवबाधा हरो" (1960) रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि बिहारी के जीवन-चरित्र पर आधारित जीवन-चरितात्मक उपन्यास है । इसमें सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों पर भी अत्यंत हल्का प्रकाश डाला गया है ।

अपने जीवन-चरितात्मक उपन्यासों के माध्यम से रांगेय राघव ने उन महान सर्जकों और युगनायकों की साधारण जीवनियाँ ही नहीं प्रस्तुत की है अपितु उन्हें अपने ऐतिहासिक परिवेश में भी देखा है । युग की सीमाओं के बीच उनके संघर्ष को देखते हुए मानवता के विकास में साहित्यिक-सांस्कृतिक अवदान का मौलिक मूल्यांकन भी रांगेय राघव ने किया है । इन उपन्यासों में सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का युग-सापेक्ष और प्रासंगिक वर्णन उल्लेखनीय है । नारी-पीडा और नारी-धर्म के संघर्षों के साथ ही नारी जागरण पर भी ज़ोर दिया गया है ।

---

1. रांगेय राघव - जब आवेगी काली घटा - पृ. 13

सामाजिक अन्तर्विरोधों की ऐतिहासिक व्याख्या उनके प्रत्येक जीवन-चरितात्मक उपन्यास में मुखरित है । यही युग-युग से विद्रोह का मूल बना है । संक्षेप में रांगेय राघव के जीवन-चरितात्मक उपन्यास हिन्दी साहित्य-क्षेत्र में एक अनूठा प्रयोग हैं ।

आँचलिक उपन्यास

रांगेय राघव ने वृजमंडल के सन्निकट बसे हुए राजस्थानी रियासती प्रदेशों के परिवेश को आधार बनाकर अपना प्रख्यात उपन्यास "कब तक पुकारूँ" (1957) लिखा है । इसको गणना हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ आँचलिक उपन्यासों में की जाती है । "कब तक पुकारूँ" के पश्चात् सन् 1961 में उनका दूसरा आँचलिक उपन्यास प्रकाशित हुआ - "धरती मेरा घर" । ये दोनों उपन्यास जन-जातियों की लोक-संस्कृतियों को आधार बनाकर लिखे गए हैं । इसीलिए उनमें उत्तम आँचलिक उपन्यासों के बहुत से गुण निहित हैं । उपर्युक्त दोनों उपन्यासों के अतिरिक्त "काका" भी उनका आँचलिक उपन्यास है । सन् 1954 में इस उपन्यास का प्रकाशन हुआ । इसमें मथुरा के पंडों के कर्म-काण्ड का वर्णन किया गया है । मथुरा के वातावरण में पंडों का यात्रियों के प्रति शोषण और ब्राह्मणों के कर्मकाण्ड ने रांगेय राघव के मन में घृणा पैदा कर दी थी । इसकी अभिव्यक्ति "काका" उपन्यास में की गई है । इसमें मथुरा के जन-जीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है ।

"कब तक पुकारूँ" उपन्यास आँचलिक शैली में एक मौलिक नूतनता का समावेश करता है । इसमें करनटों की जनजाति के नर-नारियों

तथा उनके परिवेश और रहन-सहन की बडी ही हृदयग्राही झाँकियाँ ही प्रस्तुत की गई हैं । इनमें यौन-संबंधी कोई नैतिकता नहीं है । मर्द औरत को वेश्या बनाकर उनके द्वारा धन कमाते हैं । चोरी करने के अतिरिक्त ढोल मँढना, हिरन की खाल बेचना आदि इनका व्यवसाय है । इनका खानाबदोश समाज बहुत उत्पीडित है । ये लोग हिन्दुओं के देवी-देवताओं को मानते हैं । करनट नटों की उपजाति है किन्तु नट इन्हें अपने से नीचा समझते हैं । "धरती मेरा घर" में लोहपीटों अथवा गाडिया लुहारों के खानाबदोश जीवन का अन्तरंग चित्रण है । जाति-प्रथा, नेताओं का नैतिक पतन आदि समस्याएँ इसमें है । उपन्यास में प्रेम का महत्ता, नैतिक मूल्य के स्तर पर प्रस्तुत है ।

रांगेय राघव के आँचलिक उपन्यास वैर, बरोला, डुगलपुर, हसनपुर, जहाँगीरपुर, रमोला, मुह, अमोलपुर आदि गाँवों पर रचे गए है । अंचलों का यथार्थवादी जनजीवन अपने संपूर्ण सुख-दुःख और समूचे राग-विराग के साथ उनके उपन्यासों में चित्रित है ।

महायात्रा गाथा

सन 1942 में राहुल सांकृत्यायन का "वोल्गा से गंगा" नामक ग्रन्थ मानव के विकास को चित्रित करने के उद्देश्य से लिखा गया । इसमें उन्होंने 6000 ई. पू. से 1942 ई. तक मानव-समाज की सर्वांगीण प्रगति का इतिहास अनेक गाथाओं में आबद्ध किया है । इसकी प्रेरणा से रांगेय राघव ने भी मानव की विकास-यात्रा को "महायात्रा गाथा" "अंधेरा रास्ता" और "रैन और चंदा" में अंकित किया है । "महायात्रा गाथा", "अंधेरा रास्ता" में आदि से जनमेजय तक का इतिहास सरसठ गाथाओं

में बाँधा गया है । "महायात्रा गाथा, रैन और चंदा" में 1500 ई.पू. से लेकर 1200 ई. तक की गाथा वर्णित है । मनुष्य की इस विकास-यात्रा को रांगेय राघव ने भारतीय परिवेश में अंकित किया है । इतिहास को रोचक बनाने के लिए संपूर्ण विकास-क्रम को गाथाओं का रूप दे दिया गया है । इसलिए दोनों ग्रंथ इतिहास न रहकर कथा-साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है । यद्यपि इन ग्रंथों को उपन्यास की कोटि में नहीं रखा जा सकता ।

कहानीकार

वास्तव में अपने साहित्यिक जीवन में पदार्पण करते समय रांगेय राघव ने कहानियाँ ही लिखी थीं । प्रगतिशील हिन्दी कथाकारों में उनका महत्व सर्वोपरि है । उन्होंने सामान्य लोगों के दुःख-दर्द को उनकी अनुभूतियों पर खुद को आरोपित किए बिना सीधी सरल किन्तु प्रभावशाली भाषा में व्यक्त किया है । अपने पात्रों और उनके परिवेश से रांगेय राघव का परिचय सहज किताबी और सतही नहीं है । मधुरेश के शब्दों में - "समूचे प्रगतिवादी दौर में रांगेय राघव अकेले ऐसे कहानीकार ठहरते हैं जो शैली, शिल्प और रचना-तंत्र की दृष्टि से, कहानी में अपनी प्रयोग-बहुलता के कारण, कहानी के उपलब्ध चौखटे को झकझोरते और तोड़ते दिखाई देते हैं ।"[1] अपनी कहानियों में उन्होंने मध्यवर्ग की विभिन्न समस्याओं का यथार्थवादी वर्णन किया है ।

"देवदासी", "तूफानों के बीच", "साम्राज्य का वैभव", "जीवन के दाने", "अधूरी सूरत", "समुद्र के पेन", "अंगारे न बुझे",

---

1. मधुरेश - रांगेय राघव - पृ. 69

"इन्सान पैदा हुआ", "पाँच गधे", "ऐयाश", "मेरी प्रिय कहानियाँ" आदि रांगेय राघव के कहानी संग्रह हैं । प्राचीन यूनानी कहानियाँ, प्राचीन रोमन कहानियाँ, प्राचीन ट्यूटन कहानियाँ, प्राचीन ब्राह्मण कहानियाँ, संसार की प्राचीन कहानियाँ, प्राचीन प्रेम और नीति की कहानियाँ, अन्तर्मिलन की कहानियाँ, ईरानी कथाएँ, फारसी कथाएँ, फ्रेंच कथाएँ, यूरोपीय कथाएँ, एशियायी कथाएँ, हैलनिक कथाएँ आदि रांगेय राघव की प्राचीन विश्व कहानियों के संग्रह हैं ।

कवि

रांगेय राघव कविता लेखन की दिशा में भी अग्रसर हुए । उनकी प्रकाशित काव्य-कृतियों के क्रम में "अजेय खंडहर" पहली पुस्तकाकार प्रकाशित रचना है जिसका प्रकाशन 1944 में हुआ । इसके पूर्व और बाद में लिखी गई अनेक स्फुट रचनाओं का संकलन "पिघलते पत्थर" 1946 में आया । जयशंकर प्रसाद की "कामायनी" की प्रतिस्पर्द्धा में लिखा गया चिंतन प्रधान काव्य "मेधावी" 1947 में आया और स्फुट कविताओं का ही एक और संकलन "राह के दीपक" 1948 में । महाभारत के कुछ प्रमुख पात्रों को आधुनिक संदर्भ में देखने की इच्छा के परिणामस्वरूप खंडकाव्य "पांचाली" 1955 में आया । इसके बाद स्फुट कविताओं का ही एक और संकलन "रूप छाया" 1956 में आया । फिर अपने जीवन के अन्तिम छह वर्षों में काव्य के क्षेत्र में वे आंशिक रूप से सक्रिय रहे थे । "अजेय खंडहर" नामक खंडकाव्य हिन्दुस्तानी एकेडमी द्वारा पुरस्कृत किया गया है ।

नाटककार

नाट्यकला के क्षेत्र में भी रांगेय राघव को अभूतपूर्व सफलता मिली है । उनका "विरूढक" बौद्धकालीन कथा पर आधारित ऐतिहासिक नाटक है । जयशंकर प्रसाद के "अजातशत्रु" नाटक से इसका कथ्य मेल खाता है । "रामानुज" रांगेय राघव का दूसरा ऐतिहासिक नाटक है जिसमें रामानुजाचार्य के जीवन-चरित्र को चित्रित किया गया है । रांगेय राघव ने इसमें एक ओर इतिहास के अप्रकाशित अंशों को प्रकाशित करने की चेष्टा की है तो दूसरी ओर युगीन समस्याओं को भी उठाया है । इस प्रकार अतीत और वर्तमान के बीच सामाजिक समस्याओं की पुनरावृत्ति मानते हुए उन्होंने मानव की निर्बाध क्रियाशीलता पर ज़ोर दिया है । सन् 1951 में रचित "स्वर्ग-भूमि का यात्री" भी रांगेय राघव का ऐतिहासिक नाटक है । इसकी कथा महाभारत के अंतिम दिनों से आरंभ होती है याने पांडव विजयी होते चले जा रहे हैं । यह जीवन के मूलभूत प्रश्नों से जुड़ी हुई संवेदनात्मक नाटक है ।

"हातिम मर गया" रांगेय राघव का एकांकी नाटक है । इसमें समकालीन युग-जीवन की समस्याओं को उजागर किया गया है । बेईमानी, घूसखोरी, ऊपरी चमक-दमक, साम्राज्यवादी नीति, दौलत, अत्याचार आदि हमारी संस्कृति को खोखला बना रहे हैं । एकांकीकार ने इन्हीं तथ्यों को कथानक में स्थान दिया है । "कथासार" रांगेय राघव का एक पौराणिक एकांकी है ।

रांगेय राघव की नाट्य कृतियों में व्यक्तिगत, सामाजिक, ऐतिहासिक, राष्ट्रीय एवं वैश्विक स्तर की समस्याओं को उठाया गया है । उन्होंने अपने नाटकों में सांस्कृतिक पक्षों को ही उभारा है । नैतिक आदर्श, छुआछूत का विरोध, सामाजिक कर्तव्य, सांस्कृतिक आदर्श, त्याग, सौहार्द आदि जीवन-मूल्यों का समावेश उनके नाटकों में द्रष्टव्य है । उनकी जीवन-दृष्टि प्रगतिशील चेतना से जुड़ी हुई है । इसलिए ही उनके नाटकों में वर्ग-संघर्ष और मूल्य संघर्ष को नई अभिव्यक्ति दी गई है तथा उपेक्षित और अनाहत के प्रति उदात्त दृष्टि रखी है ।

रिपोर्ताज लेखक

सन् 1942 में बंगाल में अकाल के समय उस भयंकर विभीषिका से आक्रांत प्रदेश की पदयात्रा करके रांगेय राघव ने हिन्दी साहित्य में जो रिपोर्ताज लिखे हैं उनका सानी मिलना दुर्लभ है । "हिन्दी साहित्य में यदि सर्वप्रथम सफल रिपोर्ताज लेखक होने का श्रेय किसी विद्वान को दिया जा सकता है, तो वह रांगेय राघव को ही प्राप्त है ।"[1] उनके रिपोर्ताज "हंस" नामक पत्रिका में समय-समय पर प्रकाशित होते रहे । इसके बाद हिन्दी में रिपोर्ताज की एक परंपरा-सी चल पड़ी । "तूफानों के बीच" नामक रांगेय राघव के रिपोर्ताज में अकाल से पीड़ित बंगाल का दुर्भिक्ष और नर-कंकालों का मार्मिक जीवन अंकित है ।

समीक्षक

व्यावहारिक समीक्षा के क्षेत्र में भी रांगेय राघव की

---

1. साहित्य संदेश - जनवरी-फरवरी अंक, 1963 - पृ. 32।

लेखनी चली है । उनके द्वारा लिखित सैद्धांतिक और व्यावहारिक समीक्षा के ग्रंथ उनकी गहन अन्वेषी प्रवृत्ति और सूक्ष्म-दृष्टि का परिचायक हैं । उनकी ऐसी कृतियों में "आधुनिक हिन्दी कविता में विषय और शैली," "काव्य कला और शास्त्र", "काव्य, यथार्थ और प्रगति", "समीक्षा और आदर्श", "महाकाव्य विवेचन", "प्रगतिशील साहित्य के मानदंड", "तुलसीदास का कथाशिल्प" आदि विशेष उल्लेखनीय हैं ।

इतिहासकार

इतिहास जैसे गंभीर विषय पर भी उनकी तूलिका चली हैं । "प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास" तथा "भारतीय चिंतन" जैसे ग्रंथ उनके गंभीर इतिहास ज्ञान के परिचायक हैं । इनमें से "प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास" नामक ग्रन्थ पर उन्हें कई पुरस्कार भी प्राप्त हुए हैं । इस ग्रंथ पर उन्हें सन् 1954 का "हरजीमल डालमिया" पुरस्कार मिला था ।

अनुवादक

अनुवाद के क्षेत्र में भी रांगेय राघव सक्रिय रहे हैं । संस्कृत रचनाओं का हिन्दी, अंग्रेज़ी में अनुवाद तथा विदेशी साहित्य का हिन्दी में अनुवाद से उन्होंने बहु-भाषिक अधिकार का समान परिचय दिया है । हिन्दी में कदाचित् वे ही सबसे पहले लेखक थे जिन्होंने शेक्स्पीयर के प्राय: सभी नाटकों का सरल और सुबोध शैली में हिन्दी अनुवाद किया है ।

संस्कृत के अमर ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करने की दिशा में भी रांगेय राघव ने सराहनीय कार्य किया है । उनके "ऋतुसंहार", "मेघदूत", "दशकुमार चरित", "मृच्छकटिक", "मुद्राराक्षस" आदि ग्रन्थों के अनुवाद हमारे साहित्य की अमूल्य निधि हैं । उनके द्वारा प्रस्तुत "गीत गोविन्द" का अनुवाद भी उनकी समर्थ अनुवाद शक्ति का परिचायक है ।

पुरस्कार प्राप्ति

रांगेय राघव हिन्दुस्तानी अकादमी पुरस्कार (1947), डालमिया पुरस्कार (1954), उत्तरप्रदेश सरकार पुरस्कार (1957 व 1959), राजस्थान साहित्य अकादमी पुरस्कार (1961) तथा मरणोपरांत (1966) महात्मा गाँधी पुरस्कार आदि से सम्मानित हुए हैं ।

निष्कर्ष

यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि रांगेय राघव का व्यक्तित्व अपूर्व है । बाह्य आकर्षण से लेकर उनके अध्यवसायी स्वभाव तक यह अपूर्वता छायी हुई है । उन्होंने हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं में अपनी लेखन-दक्षता का परिचय दिया है । साहित्य के क्षेत्र में वास्तव में उन्होंने साहसिकता का ही परिचय दिया है । असुरक्षा और असुविधा के बीच में रहकर साहित्य के प्रति समर्पित होनेवाले रांगेय राघव के व्यक्तित्व को सदैव अपूर्व ही कहा जाएगा ।

प्राय: यह कहा जाता है कि रांगेय राघव की मेधा-शक्ति विभिन्न प्रकार के लेखन-कार्यों में बँटने के कारण शिथिल हो गई है । यह सही भी है । उन्होंने प्रतिष्ठित लेखकों के विरोध में या कभी उनके अनुकरण पर ऐसी बहुत-सी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं जिनमें उनकी मौलिकता का दर्शन नहीं होते हैं । लेकिन उनकी मेधा-शक्ति की अपनी रंगस्थली भी रही है । उदाहरण स्वरूप उनका औपन्यासिक क्षेत्र । हिन्दी उपन्यास विधा को रांगेय राघव का योगदान इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि उनकी प्रतिभा उनमें मौलिक दिखाई पडती है । जहाँ तक लेखन-कार्य के विस्तार का पक्ष है उसमें एक बात यह देखी जा सकती है कि रांगेय राघव का रचना-व्यक्तित्व पूरी तरह समर्पित था । उन्होंने लेखन कार्य को अपना पेशा बनाया । उसमें उनकी साहसिकता के साथ साथ प्रखरता का परिचय भी मिलता है । अपने कर्म को उन्होंने आंशिक तौर पर नहीं लिया है । अपने को लेखन के बीच में पाना और उसके लिए न्यौच्छावर हो जाना रांगेय राघव के संदर्भ में शाब्दिक इच्छा भर नहीं है बल्कि उनका कार्य रहा है । इसलिए शिथिल रचनाओं के बीच में सुगठित रचनाएँ देने में समर्थ होने के कारण उनकी उपलब्धियों को कम महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जा सकता है ।

रांगेय राघव एक वैचारिक लेखक भी हैं । राजनीति के साथ भी उनका सीधा संबंध था । मार्क्सवाद ने उनकी चिन्तन-शक्ति को प्रखर भी बना दिया है । इतने पर भी उन्हें कहीं-कहीं मार्क्सवादी आलोचकों और रचनाकारों का विरोध करना पडा । उनके सहयात्रियों ने उन पर भी आरोप लगाए हैं । परन्तु यह एक बडा सच है कि रांगेय राघव के पास जो वैचारिक क्षमता थी उसको उन्होंने विचार के अधीन में रखा नहीं । अपनी मौलिक प्रतिभा से उन्होंने विचारों और दर्शनों को नए सिरे से सँवारा है ।

रांगेय राघव के व्यक्तित्व का एक अनूठा पक्ष यह है कि वह सब कुछ जानने के लिए तत्पर था । इतिहास, संस्कृति, कला, साहित्य, चिन्तन आदि सभी क्षेत्रों से संबंधित बातों को जानने-समझने का कार्य वे निरन्तर करते रहे हैं । उनके शोधार्थी और रचनाकार का समन्वय इसमें देखा जा सकता है । साथ ही साथ हर क्षेत्र में मौलिकता का परिचय भी वे देना चाहते थे । ज्ञान-पिपासु रचनाकार के रूप में ही रांगेय राघव जाने जाएँगे ।

रांगेय राघव हिन्दी के उन इने-गिने रचनाकारों में से हैं जिन्होंने अपनी एक परंपरा चलाई हैं । प्रत्येक रचनाकार की सार्थकता इस बात में है कि वह अपनी परंपरा चला सके । अपने में अंकुरित तथा अपने में विकसित स्वत्व का आभास ऐसे रचनाकार सदैव देते रहते हैं । रांगेय राघव ने भी अपनी विपुल सर्जनात्मकता के माध्यम से ऐसा ही आभास दिया है ।

अध्याय : दो

रांगेय राघव की इतिहास-दृष्टि

प्राचीन भारतीय इतिहास

भारतीय इतिहास की प्राचीनता को देशी-विदेशी इतिहासकारों ने एकमत से स्वीकारा है । प्राचीन भारतीय इतिहास संबंधी ज्ञान प्राप्त करना दुर्गम है क्योंकि मौर्यकाल के कुछ पूर्व तक ही भारत का तिथि, स्थान और घटनापुष्ट प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध होता है । उसके पहले का इतिहास अपनी असंदिग्धता के बावजूद बिखरा पड़ा है जिसे कई स्रोतों से बटोरना पड़ता है । वेद, उपनिषद, पुराण, जैन-बौद्धकालीन ग्रंथ, ताम्रपत्र आदि विभिन्न स्रोत है जिनके माध्यम से प्रागैतिकालीन इतिहास को रेखांकित करना पड़ता है । विभिन्न अध्येताओं ने भी प्राचीन भारतीय इतिहास को विश्लेषित करने का कार्य किया है । सभ्यता और संस्कृति के विकास को समाजशास्त्रीय ढंग से विश्लेषित करने के लिए ये प्राचीन ग्रंथ उपयोगी है । रांगेय राघव ने भी अपने ढंग से भारतीय इतिहास को विश्लेषित करने का कार्य किया है ।

रांगेय राघव यद्यपि साहित्यकार के रूप में जाने जाते हैं फिर भी उनका इतिहासकार पक्ष भी महत्वपूर्ण है । उनकी मेधा-शक्ति का मुखर रूप इतिहास-अध्ययन में ही उपलब्ध होता है । राहुल सांकृत्यायन के समान वे मूलत: इतिहास-चिन्तक हैं । इसलिए उन्होंने भारतीय इतिास की बारीकियों को लेकर वस्तुपरक चिंतन किया है । "प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास" नामक इतिहास ग्रंथ रांगेय राघव की मौलिक एवं उल्लेखनीय उपलब्धि है । इसमें उन्होंने ऐतिहासिक यथार्थवादी दृष्टि से प्रागैतिहासिक भारत का भौगोलिक विवेचन तथा विभिन्न जातियों के सामाजिक-सांस्कृतिक विकास को रेखांकित किया है । खुदाई से प्राप्त वस्तुएँ मनुष्य की अनेक जातियों, उनके रहन-सहन के तौर-तरीकों, उनके रीति-रिवाज़ों और निवास-स्थानों पर प्रकाश डालती है । साथ ही साथ ये जातियाँ

सभ्यता की किस सीमा पर थीं, उनका संसार कौन-कौन सी जातियों से संबंध था आदि की सूचनाएँ भी प्राप्त होती हैं । इस प्रकार नई-नई जातियाँ जब एक दूसरे से मिलीं तो उनका परस्पर संबंध हुआ। समाज किस प्रकार बढा, राजन्य वर्ग कैसे उत्पन्न हुए आदि इस ग्रंथ के विषय हैं । अतीत के तमाम उतार-चढावों, उत्पादन संबंधों और वर्ग-विभाजन के मामलों का अध्ययन इसमें प्रस्तुत किया गया है । आलोच्य ग्रंथ में इतिहास की व्याख्या अपनी संपूर्ण जटिलताओं के साथ साकार हो उठी है । इतिहासकार की पैनी दृष्टि और व्याख्याकार की विश्लेषण-क्षमता रांगेय राघव में होने के कारण प्रस्तुत ग्रंथ एक ऐसा प्रामाणिक दस्तावेज़ के समान है जिसमें उल्लेखित अतीत की संभावनाएँ त्याज्य नहीं है ।

रांगेय राघव ने "प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास" नामक अपने इतिहास ग्रंथ को दस अध्यायों में विभाजित किया है । जैसे -

1. प्रागैतिहासिक काल
2. आग्नेय युग -द्रविडों से पहले
3. पूर्व प्राचीन काल - द्रविड-युग
4. किरात-देव-असुर-युग
5. देव - असुर - किरात - युग
6. सत्ययुग
7. त्रेता युग
8. द्वापर युग
9. कलियुग
10. गणनास्तिक युग ।

इसके अतिरिक्त इस ग्रंथ में परवर्ती इतिहास का संक्षिप्त रेखाचित्र भी दिया गया है । इसके प्रत्येक अध्याय में एक-एक युग की सामाजिक-सांस्कृतिक, धार्मिक-जातिगत, राजनीतिक और ऐतिहासिक महत्व का विकास-क्रम अंकित है । रांगेय राघव का मानना है कि प्रागैतिहासिक काल की अंधकारमय स्थिति में युग-निर्णय तथा तिथि-निर्धारण सरल नहीं है । यहाँ तिथि निर्णय एक आधार के लिए किया गया है जिससे केवल समय सामीप्य प्रकट हो जाएँ । बुद्ध से ऐतिहासिक विवेचना करनेवाले इतिहासकार निश्चित तिथियों का प्रयोग करते हैं । इसीलिए महाभारत के बाद का इतिहास बौद्ध ग्रंथों की सहायता से अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक माना जाता है । रांगेय राघव ने पार्जिस्टर से बहुत सहायता ली है जबकि आज के इतिहासकार पुरातत्व और भाषाविज्ञान को ही निर्णायक मानते हैं । इसके संबंध में रांगेय राघव का कहना है कि "जो केवल पुरातत्व पर विश्वास करते हैं, वे एकांगी अध्ययन करते हैं । हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के 1947 ई. के इतने बडे नरमेध का पुरातत्व के लिए क्या चिन्ह रह जाएगा ? लाहौर बन जाएगा, शायद बन चुका होगा । दिल्ली में तो कोई चिन्ह नहीं प्रकट होता । साहित्य ही इसका एकमात्र आधार रह जाएगा । फिर अभी भारत में खुदाई ही कितनी हुई हैं ? हडप्पा और मोअन-जो-दडो को ही नीचे मंजिलों में कितनी खोज हुई है ? बयाना, आगरा, मथुरा की कितनी कायदे की खुदाई हो सकी है ? सब जातियों की परंपराओं को एकत्र करके अभी कौन-सा वैज्ञानिक कार्य और अध्ययन किया गया है ?"[1] इसीलिए रांगेय राघव इस ओर अग्रसर हुए । उन्होंने पार्जिस्टर के राजवंश की तालिकाओं की सहायता ली । "भारतीय इतिहास पुरातत्व से जहाँ समर्थित नहीं हुआ है वहाँ रांगेय राघव ने "परंपरा" से

---

1. रांगेय राघव - महायात्रा गाथा - अंधेरा रास्ता - पृ. 149

इतिहास का दोहन करने का प्रयत्न किया है । स्पष्टत: इस कार्य में उन्हें भूलें होने की आशंका है और भूलें हुई भी हैं । किन्तु उनके प्रयत्न से इतिहास और परंपरा के प्रति भौतिकवादी दृष्टिकोण स्पष्ट और पुष्ट हुआ है ।[1]

रांगेय राघव ने प्रागैतिहासिक काल को निम्न प्रकार से तिथियों में बाँधा है -

1. आग्नेय युग	- 6500 ई.पू.	(लगभग)
2. द्रविड युग	- 5000 ई.पू.	( )
3. आर्य युग	- 3500 ई.पू.	( )
4. खण्ड प्रलय	- 3500 ई.पू.	( )
5. सत्य युग का अंत	- 2700 ई.पू.	( )
6. त्रेता युग	- 2000 ई.पू.	( )
7. महाभारत युद्ध	- 1600 ई.पू.	( )

रांगेय राघव के अनुसार "अधिक तथ्यों के उपस्थित होने पर इनमें विद्वान अवश्य तरमीम करेंगे । जितनी गवेषणा हो वही इतिहास के लिए श्रेयस्कर है ।"[2] उपर्युक्त तथ्यों की पुष्टि के लिए आलोच्य ग्रंथ के सभी अध्यायों का संक्षिप्त परिचय अनिवार्य है ।

---

1. विश्वंभरनाथ उपाध्याय - साहित्य संदेश - जनवरी-फरवरी अंक 1963 - पृ. 301.
2. रांगेय राघव - प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास - भूमिका ।

1. प्रागैतिहासिक काल

विद्वानों के अनुसार संसार में मनुष्य का विकास इस काल में हुआ था । अब यह सर्वमान्य है कि मनुष्य की उत्पत्ति संसार में विभिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न समय में हुई है । भारतवर्ष की पुरानी जगहों की खुदाई में मिली कुछ चीज़ें "प्रि-चिलियन इओलिथिक" कल्चर की है । राँगेय राघव मानते हैं कि प्राचीन काल में अनेक जातियों के मिलन से इनके बीच साम्य मिलते हैं । उत्पादन की प्रणालियाँ सामाजिक विकास की विविध मंज़िल हैं और आदमी के औजार उसकी सामाजिक सभ्यता के निदर्शन हैं ।

प्राचीन पैलियोलिथिक काल में भारत की जातियों में हब्शी आदिम पाषाण युग के वासी थे । इनके अतिरिक्त निषाद, कोल, भील, संथाल, मुण्डा आदि जंगली जातियाँ भी मौजूद थीं । प्रागैतिहासिक काल की इन जातियों के बाद हमें आस्ट्रिक जातियों का पता मिलता है । आस्ट्रिक को हिन्दी में आग्नेय कहते हैं ।

अनेक जातियों के सम्मिश्रण के बावजूद खुदाइयों में भारत में निम्नलिखित क्रम विकास से प्राचीन हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं -

1. हब्शी
2. द्रविड पूर्व (आस्ट्रेलियावाले तथा वेड्डा)
3. द्रविड
4. लंबे डोलिको सिफैलिक
5. डेलिको सिफैलिक आर्य और
6. ब्रैकीसीफैलिक हिन्दी यूरोपीय ।

2. आग्नेय युग - द्रविडों से पहले

जातियों के आवागमन और पारस्परिक संबंध जो प्रागैतिहासिक काल में हुए हैं उनका तिथि निर्धारण अत्यंत कठिन है । इसीलिए रांगेय राघव ने जातियों के विकासक्रम पर अधिक ज़ोर दिया है । जैसे कि हब्शियों को आग्नेय जातियों ने परास्त किया है । इनमें कोल, भील, संथाल, मुंडा आदि जातियाँ अब तक शेष हैं ।

आग्नेय जातियों ने भारत में गहरा प्रभाव छोड़ा है । सभ्यता की दृष्टि से इन जातियों ने पाषाण-काल से धातु-काल तक विकास तय किया है । इनमें "टॉटेम उपासना"[1] प्रचलित थीं ।

3. पूर्व प्राचीन काल - द्रविड युग

आग्नेय जातियों को द्रविडों ने पराजित किया । बाद में द्रविड आग्नेयों के साथ घुल मिल गए । द्रविड भिन्न-भिन्न सामाजिक स्तर के थे । रांगेय राघव का मानना है कि उनका समाज मातृसत्तात्मक अवस्था से पितृसत्तात्मक अवस्था तक विकास कर चुका था । इस युग में

---

1. प्राचीन काल में ही नहीं, दक्षिण भारत में अभी भी अनेक जातियाँ हैं जिनका नाम ही जन्तुविशेष का नाम है जिसकी वे उपासना करते हैं । गरुड और नाग ऐसी जातियाँ हैं ।
   रांगेय राघव - प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास, 1990 - भूमिका ।

भारत के उत्तर में ऋक्ष, वानर, असुर, दैत्य, मानव, राक्षस, गंधर्व, किन्नर आदि जातियाँ थीं । इन जातियों में दासप्रथा प्रचलित थी । इनमें टॉटेम उपासक जातियाँ थीं जिन्हें परवर्ती काल में पशु-पक्षी मान ली गई है ।

रांगेय राघव मानते हैं कि भारत में द्रविड-आर्य आगमन में बहुत समय का अन्तर नहीं है । परन्तु द्रविड आर्यों से कुछ समय पहले यहाँ आ गए थे । "द्रविड मोअन-जो-दडो के वासी हो सकते हैं । द्रविड संस्कृति का विराट प्रसार उस सामाजिक अवस्था तक पहुँच चुका था, जिसमें दासप्रथा थी और बाज़ार का विकास हो चुका था ।"[1] द्रविड संस्कृति का समृद्ध रूप आर्यों के आगमन से पूर्व ही मिलता है । "भारत में सभ्यता का वास्तविक आरंभ द्रविडों ने किया है । उन्होंने यहाँ कृषि का विकास और समुद्र-यात्रा की परंपरा शुरू की । सिंचाई के लिए नदियों को बाँध दिया गया । बड़े-बड़े मंदिरों और भवनों के निर्माण से नगर-सभ्यता की नींव डाली ।"[2]

4. किरात - देव - असुर युग

रांगेय राघव ने वैदिक संस्कृत भाषी आर्यों को देव कहा है । भारत में देवों का संबंध सबसे पहले पिशाच, राक्षस, यक्ष, गंधर्व, किन्नर वानर, ऋक्ष आदि जातियों से हुआ । देवों ने यहाँ से कृषि-व्यवस्था अपना ली । भारत में आर्य जब आए तो वे मातृसत्तात्मक अवस्था में रहे होंगे ।

---

1. रांगेय राघव - प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास - पृ. 48
2. रामधारीसिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय 1962 - पृ. 14

रांगेय राघव ने ईरानी असुरों और आर्यों का जो संबंध स्थापित किया है वह सर्वमान्य है । निस्संदेह आर्यों के देवता अन्य जातियों से भी लिए गए हैं । जैसे कि रुद्र शिव निर्विवाद रूप से राक्षसों जैसी आर्येतर जातियों का देवता था । देवों में यज्ञ के आदिम रूप को रांगेय राघव ने "आदिम साम्यवाद" का प्रतीक माना है । असुर और देव अग्निपूजक थे । अग्नि मनुष्य की प्रारंभिक सभ्यता का चिन्ह है । देव ही यज्ञ करते थे, अन्य सब जातियाँ प्राय: तप करती थी । असुर देवों के यज्ञ में बाधा उपस्थित करते थे ।

5. देव - असुर - किरात युग

भाषा वैज्ञानिकों के मतानुसार वैदिक संस्कृत, लैटिन तथा फारसी एक ही मूल से निकली हैं । "राहुल सांकृत्यायन ने इन भाषा-भाषियों को "शकार्य" कहा है । उनका कहना है कि कहीं वोल्गा के पास एक जनसमूह था, जिसके दो विभाग हो गए । पश्चिम की ओर जो मुड गया शक था, दूसरा आर्य जो भारत की ओर आ गया ।"[1] रांगेय राघव के विचार से भारत आगमन के पूर्व ही आर्य-द्रविड परिवार का परस्पर संबंध हुआ था ।

रांगेय राघव की दृष्टि में किरात और द्रविड परिवार में सांस्कृतिक समानताएँ मिलती हैं । धार्मिक विश्वासों में वे एक दूसरे के निकट हैं । दोनों में लिंगोपासना प्रचलित थी । "देव जाति गण-गोत्र कबीलों का एक ऐसा समूह था जैसे परवर्ती काल में इबेर (गुजेर) या श्वेत हूण थे या शक थे ।"[2] रांगेय राघव ने देव युग का प्रारंभ 5000 ई.पू. माना है

---

1. रांगेय राघव -"प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास" से उद्धृत - पृ. 9
2. वही - पृ. 121

उस समय ताम्रयुगीन सभ्यता में संभवतः मध्य बर्बर युग था । भारत का यह युग अभी तक इतिहासज्ञों के सामने नहीं है ।

जयशंकर प्रसाद के समान रांगेय राघव ने भी यह स्वीकारा है कि प्रलय ने देव जाति को नष्ट कर दिया । कुछ विद्वान लोग इसे बाईबिल के नूह के युग में आया प्रलय मानते हैं । यह तो 3500 ई.पू. से 3000 ई.पू. के बीच में माना जाता है । यही समय मोअन-जो-दड़ो की सभ्यता का समय है । आर्यों का भारत आगमन इस काल में समझा जाता है ।

आर्यों का विकास ही रांगेय राघव का मुख्य विषय है । क्योंकि आर्यों के विषय में प्रचलित रूप से अनेक भ्रम उपस्थित हैं जैसे कि आर्य एक जाति नहीं, अनेक कबीले या छोटी-छोटी जातियों का दल है । आर्य विदेशी थे । ये प्रारंभ में ईरान में आकर बसे और यहीं द्रविड और किरात परिवारों से इनका संबंध हुआ । महाप्रलय के बाद इनका दक्षिण की ओर प्रस्थान हुआ । इनके साथ ही अन्य जातियाँ दक्षिण की ओर भिन्न-भिन्न समय पर स्वतंत्र रूप से चलीं । इनमें वानर, राक्षस, गंधर्व, नाग, आदि मुख्य थीं । इस प्रकार प्रागैतिहासिक काल में भारत में ये जातियाँ इधर-उधर घूमती रही हैं । रांगेय राघव के अनुसार घूमना तो हमने पाकिस्तान बनाते समय देखा है । उसी प्रकार अन्य कारणों से जातियाँ प्राचीन काल में भी घूमा करती थीं ।

6. सत्ययुग (पूर्व वैदिक काल)

रांगेय राघव ने स्पष्ट किया है कि प्रलय की घटना देवासुर संग्राम के बाद की है जिसका उल्लेख अन्य जातियों ने भी किया है । जैसे कि अथर्ववेद और शतपथ ब्राह्मण के अतिरिक्त प्रलय का वर्णन निम्नलिखित कथाओं में मिलता है -

1. बैबिलोनिया की गिलगैमिस कथा ।
2. बैबिलोनियन बेरोसिस कृत वर्णन ।
3. मिश्र की प्रलय कथा, जिससे तेम-मनुष्यों के पिता का संबंध ।
4. ग्रीक्स के क्लासिकल वर्णन ।
5. नूह के बाइबिल के वर्णन ।

रांगेय राघव का अनुमान है कि प्रलय के बाद मनु का कबीला ही फला-फूला उनकी सन्तान "मानव" कहलाई । इसके बाद वैदिक युग में भारत में अनेक जातियाँ मिलती हैं । जैसे "शिवक्न, निषाद, पश्चिम के स्पर्श, वश, मारगार, कैवर्त, पौंजिष्ट, दाश तथा मैनाल, कीकट, नैचाशाख, पुण्ड्र, किरात, चाण्डाल, पर्णक, शिम्यु, आन्ध्र, शबर, पुलिंद, मृतिब आदि ।"[2] ये जातियाँ आर्यों को भारत में आने पर एक साथ ही नहीं मिल गई । इनमें अधिकांश जातियों से आर्यों को यहाँ युद्ध करना पड़ा । कालान्तर में इनसे संपर्क स्थापित हुआ । आर्य पहले पश्चिमोत्तर में आए । पूर्व में अयोध्या में

---

1. रांगेय राघव - प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास - पृ. 138
2. वही - पृ. 142

आर्यों का सुदृढ शासन जम गया । इस प्रकार धीरे-धीरे भारत में आर्यों का चतुर्दिक प्रसार होने लगा "आर्य दलों में आए और प्रत्येक दल में भाषा के भेद थे जो पहले कम और बाद में अधिक हो चले । पंजाब से पश्चिम फारस तक भाषा का एक प्रकार था । पश्चिमी बोलियाँ (हिन्दी-आर्य) कुछ विषयों में ईरानी से मिलती है ।"[1]

रांगेय राघव का मानना है कि मनु के कबीले में वर्ण-व्यवस्था के आदिम चिन्ह दृष्टव्य हैं । मनु-युग में वर्णों का उदय हुआ । "वर्णों का उदय पहले काम के बंटाव के अनुसार हुआ । इस समय वर्ण जाति के बाधक नहीं होकर केवल पेशे का इंगित करते थे ।"[2] इस युग को उन्होंने "मध्यप्राचीन युग" कहा है । मध्य-बर्बर युग तक समाज में व्यक्तिगत संपत्ति नहीं थी । मनु के समय में वह प्रारंभ हुई । परन्तु एकदम व्यक्तिगत संपत्ति सर्वस्व नहीं हो गई ।

तत्कालीन समाज में पशु-पालन इत्यादि से संपत्ति बढ़ी । लोगों ने अलग-अलग धंधे लिए । आदान-प्रदान शुरू होने से समाज में धन आया । आदमी पर धन हावी होने से दासप्रथा कायम रहा । जैसे कि "हत्या की जगह अब दास बना लिया जाता था । पहले तो केवल पुरुषों को मारा जाता और स्त्रियों को भोग्य वस्तु के रूप में रख लिया जाता था ।

---

1. रांगेय राघव - प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास - पृ. 145
2. वही - पृ. 137-38

आगे चलकर दोनों को दास बनाया जाने लगा । दास को खाना देना पड़ता था । दास बहुत बढने से उनकी विभिन्न जातियों का भेद न देखकर उन्हें शूद्र कहा जाने लगा । शूद्र को खाना देने की जिम्मेदारी नहीं थी ।"[1]

संसार में अन्य देशों में भी पुरोहित, योद्धा, किसान तथा दास थे । किन्तु कहीं भी जाति-प्रथा ऐसी नहीं बनी रही जैसा भारत में दिखाई देती है । रांगेय राघव की दृष्टि में "भारत में वर्गभेद आर्यों को सामाजिक व्यवस्था का भीतरी नियम था । वर्ग भेद वाला तो आर्येतर समाज से बाहर आकर आर्यों में मिला । वे ही शूद्र और दास हुए । इन लोगों पर शासन करने के लिए आर्यों ने वर्ण-व्यवस्था को धीरे धीरे जाति-व्यवस्था में बदल देना चाहा । इसीलिए उन्होंने "रक्त" की नींव पर शुद्धि का प्रचार किया ।"[2] वास्तव में यह सब उच्च वर्गों का प्रयत्न था । यह ज़ारी होने से आर्यों के उच्चवर्गों में अधिकार के लिए संघर्ष छिड गया । संगठित सैन्य और शासक जनता से अलग हुआ । बाद में ब्राह्मण-क्षत्रिय संघर्ष हमारी परंपरा में विख्यात है । रांगेय राघव का निष्कर्ष है कि इस संघर्ष से आर्येतरों को लाभ हुआ है । क्योंकि उन्हें ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों की आवश्यकता थी । इसीलिए आर्य-अनार्य एकता बढ़ी । उत्पादन के क्षेत्र में अनार्यों की भूमिका निर्णायक होने से उन्हें शत्रु रूप में नहीं माने जाने लगे । अब आर्यों के स्वयंवरों में भी अनार्य आने लगे ।

---

1. रांगेय राघव - प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास - पृ.160
2. वही - पृ. 171

7. त्रेतायुग (उत्तर वैदिक काल)

त्रेतायुग में ब्राह्मण-क्षत्रिय संघर्ष थम गया । इस समय आर्यों में छोटे-मोटे युद्ध तो होते रहते थे । जो जाति जितनी कड़ी टक्कर लेती थी उसे उतना ही समाज में नीचा दर्जा दिया जाता था । रांगेय राघव के शब्दों में "पूर्व के पासी मंतुरी के पास पुराने समय में रहनेवाले चण्डाल सब इसी दर्प के शिकार हुए । निषाद मज़बूत थे । वे नहीं दबे तो उन्हें पाँचवाँ वर्ण तक माना गया ।"[1] बाद में निषादों से समझौता किया गया । इस प्रकार निषादों से आर्यों का संबंध रहा । मनु ने परवर्ती काल में उन्हें ब्राह्मण पिता और शूद्रा माता की संतति माना है ।

इस युग में क्षत्रियों ने ब्राह्मणों को दबा दिया और समाज में अपना अधिकार जमाया । अब ब्राह्मण धर्म संचालक तथा दान पर चलने लगे । अनार्य धनी भी दान देकर स्तुति पाने लगे । इस समय आर्यों के साथ साथ अनार्य शासन अपने दासप्रथा के ढाँचे को लेकर खड़े रहे । आर्य उन्हें जीत नहीं सके तो उनसे समझौता किया । इस प्रकार आर्य और अनार्य पारस्परिक घृणा छोड़कर घुल-मिलने लगे । दास से शूद्र का दर्जा कुछ ऊँचा था । रांगेय राघव की दृष्टि में शूद्र वे लोग थे जो आर्य अधीनता को स्वीकार करते थे । महाभारत युद्ध के बाद शूद्र उठे । द्वापर में शूद्र को संपत्ति के कुछ अधिकार मिले, पर दास को नहीं ।

---

1. रांगेय राघव - प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास - पृ. 186

तत्कालीन युग में अनार्य चिन्तन ताम्रयुगीन सभ्यता के ह्रासकालीन दासत्व से "अभावात्मक" हो गया था । यह तो परवर्ती शैव संप्रदायों में प्रखर है । इसकी साधना का पथ एकांतिक ही रहा है । रांगेय राघव की दृष्टि में इन आर्य जातियों ने आकर उस शांति को तोड दिया जिसमें जय-पराजय को भूलकर द्रविड रूकने लगे थे । उनके समाज में गतिरोध आने से ही वे हार गए ।

आर्य चिन्तन की गंभीरता पर विचार करते हुए रांगेय राघव की मान्यता है कि "निस्सन्देह जहाँ तक दर्शन की उडान है, और सृष्टि के रहस्य को खोज निकालने का प्रयत्न है, वेद संसार की सुन्दर काव्य-कृतियों में स्थान पाती है । यह एक महान खोज थी, एक विराट जिज्ञासा थी । परन्तु यह उसका निराधार रूप मात्र था, शून्य हुआ ब्रह्म ।"[1] परवर्ती युग में आर्य का ब्रह्म दुरूह होता गया । समाज के विषम हो जाने के कारण सृष्टि-क्रम को समझना कठिन हो गया । इस दौर में अनार्य अभावात्मक चिन्तन (पराजय का चिन्तन, गुलाम का चिन्तन) अपना प्रभाव बढाता गया ।

संपत्ति के व्यक्तिगत अधिकारों ने यहाँ नए प्रकार के दर्शन को जन्म दिया है । उच्च वर्गों ने निम्न वर्गों को बहकाया है कि "कर्म कर, सौ बरस जी, पर कर्म से अलग रह । गरीब ने पूछा कि "भाग्य की बात है

---

1. रांगेय राघव - प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास - पृ. 207

तो मैं क्यों जिऊँ ? धनि ने कहा कि जी और सौ बरस तक काम किए जा, यह मत समझ की तू कर रहा है । करनेवाला और है, तू बीच का एक माध्यम मात्र है ।[1] समाज अच्छा है, इसका मतलब था - उच्च वर्ग के लिए अच्छा है । इस प्रकार परवर्ती काल में जीवन भार हो गया और योग की नीरसता ने संसार से घृणा करा दी ।

रांगेय राघव ने इशारा किया है कि प्राचीन काल में युवक और युवतियाँ जनेऊ (यज्ञोपवीत) पहनते थे । कालान्तर में स्त्रियों से जनेऊ छीन लिया गया और उनके लिए वेद का द्वार बंद हो गया । इस प्रकार स्त्री को शूद्र बना दिया गया ।

8. द्वापर युग

इस युग में उच्च वर्ग के आन्तरिक विरोध और दासप्रथा के द्वारा उत्पन्न विषमता के कारण तत्कालीन समाज-व्यवस्था का संपत्ति - असंपत्ति के रूप में विभाजित वह विघटन का युग है । द्वापर युग आर्यों के एक युग समूह का अंत था । इसके बाद आर्यों ने यह मान लिया कि जो कुछ था वह सब समाप्त हो गया । द्वापर युग में मूलाधार कुटुम्ब पैतृक व्यवस्था में ग्राम रहा, फिर प्रदेश बने । गणों से और गोत्रों से विकास होते-होते राजतंत्र बना और उसको सफलता साबित हुई । परन्तु वह दास-प्रथा के कारण लड़खड़ा गया । फिर अवश्य उठा तब तक दासप्रथा शिथिल

---

1. रांगेय राघव - प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास - पृ. 215

होकर किसान प्रथा आ गई । यह तो इतिहास के अगले पग में हुआ । "इस समय बली (कर) प्रजा से ली जाती थी । पुरोहित शासन धीरे धीरे घटता गया । यहाँ तक धीरे धीरे न्याय का विकास याने व्यक्ति के अधिकारों का विकास हुआ । यज्ञ लूट से मिला फिर शक्तिहीन होने लगा । स्त्री के अधिकार धीरे धीरे छिनते चले गए । इसी से पुत्र की उत्पत्ति हर्ष का कारण बनती चली गई ।"[1]

द्वापर युग तक माँस और मदिरा स्वतंत्रता से प्रचलते थे । इस युग के अंत में ब्राह्मण सुरा को बुरा मानने लगे (सुरा अन्न से बनानेवाला एक तीव्र मादक पानीय था)। पुरोहित वर्गों ने अपना दृष्टिकोण बदल दिया, यही इस घृणा का कारण है । अतः उन पर आर्येतरों का असर पड़ने लगा था । जैन संप्रदाय जो मूल में आर्येतरों का संप्रदाय है और उत्तर के पाञ्चरात्र अहिंसक संप्रदाय ने भी उन पर अपना प्रभाव छोड दिया है । रांगेय राघव के मतानुसार द्वापर युग के अंतिम काल में सति-प्रथा बहुप्रचलित बन गई थी । आर्यों में खान-पान की छुआ-छुत का चक्कर अभी बढा नहीं था । विवाह के नियम अब जटिल होने लग गए थे ।

यहाँ तक पुरों का स्थान धीरे धीरे नगर लेने गए थे । कृषि व्यवस्था में उन्नति हुई । शिकारी, मछुए, हलवाहे, रंगाई करनेवाले, नाई, जुलाहे, कसाई, सुनार, नट, जहाज़ी लोग आदि धीरे धीरे अलग अलग

---

1. रांगेय राघव - प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास - पृ. 307

बढने लगे । अब ये मेहनतकश जातियाँ बनकर रूढियों में बंधने लगे । व्यापारी अलग दिखाई देते हैं । यही लोग थे जो इतिहास को आगे बढा ले गए ।

9. कलियुग

यहीं भारतीय इतिहास का मध्य-प्राचीनकाल समाप्त होता है तथा उत्तर प्राचीन काल का प्रारंभ होता है । राँगेय राघव की दृष्टि में हमारे प्राचीन इतिहास का उत्तर प्राचीन काल अत्यंत महत्वपूर्ण है । क्योंकि इस युग में अनेक बातें हुई । जैसे कि -

1. सांख्य और दर्शनों की नींव पडी ।
2. राज्य सर्वोपरि का भाव बढा ।
3. दासप्रथा को रखने को कुल गणों ने अन्तिम प्रयत्न किया । तीन बार के ऐसे गण स्थापित करने के व्यर्थ प्रयत्न हुए । आर्य "जातीय" आधार पर "विश" को मिलाकर "दास" का शोषण रखने को पैतृक परंपरा के राज्य समाप्त किए गए ।
4. उत्पादन का साधन तो न बदला, पर व्यापार और नगर बढने से व्यापार का संतुलन बदला ।
5. ब्राह्मण क्षत्रिय से मिलने के यत्न हुए, पर नहीं मिले । वर्ण व्यवस्था को "दिव्य" बनाने की चेष्टा हुई, रूढियों का ज़ोर बढा ।
6. वैश्यों और शूद्रों ने उठने का यत्न किया । भागवत पांचरात्र ने नई समानता अहिंसा फैलाई ।
7. जैन धर्म ने ब्राह्मण विरोध किया । परन्तु जैन बौद्धों की भाँति आगे दासप्रथा के समर्थक नहीं बने । उन्होंने प्रश्न को छुआ ही नहीं । तभी वे बचे रह गए ।

8. अनार्य प्रभाव और शैव मत बढे ।

9. दासप्रथा लडखडा गई । भूमिबद्ध किसान उठने लगे ।

10. अनार्य और शूद्र राजा होने लगे ।

11. वैश्य बढे, नागरिक सभ्यता बढी ।

12. उत्पादन के वितरण में भेद हुआ ।

13. आभीर आदि नई जातियों के हमले हुए ।

14. दासों को पैतृक संपत्ति का अधिकार मिला । निरंकुश राज्यों का समय उठा । सामंतवाद प्रारंभ हुआ इत्यादि ।

अब अनार्य समूह जो पहले अलग-अलग कबीले थे जातियों के रूप में ही अधिकांश करके शूद्रों में समा गई । जो उच्चस्तर की नाग आदि जातियाँ थीं वे ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्णों में मिल गई ।

10. गण-नास्तिक युग

बौद्ध युग को रांगेय राघव "गण-नास्तिक युग" कहते हैं । क्योंकि ब्राह्मण प्रभुत्व को सबसे अधिक चुनौती इस युग में मिली थी । कौटिल्य के समय में "आर्यत्व" एक नागरिकता के समान हो गया । पहले जो जातिवाचक था, वह कुछ "अधिकारों" का वाचक हो गया । कौटिल्य ने दासप्रथा को केवल म्लेछ-प्रथा बताया है । ब्राह्मण चाणक्य ने भी दास-प्रथा का तीव्र विरोध किया है । रांगेय राघव की मान्यता है कि दासप्रथा

---

1. रांगेय राघव - प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास - भूमिका

धन से छूटने लगी । धन मनुष्य के ऊपर आ गया । अब व्यापार बढ़ने के कारण मनुष्य को दास बनाने में पहले जैसा लाभ नहीं था । अब "आर्यत्व" अपने सीमित अर्थ के दायरे से परे होकर "स्वतंत्र नागरिक" का पर्याय बन गया । दासप्रथा का अंत और भूमिबद्ध किसान प्रथा से ही इतिहास का आधार बदला है । पूर्व मध्यकाल में सामन्तवाद अपने प्रगतिशील रूप में था, उत्तर मध्यकाल में अपने ह्रासकालीन रूप में । अतः स्वाभाविक रूप से गतिरोध अधिक दिखाई देता है ।

रांगेय राघव का मानना है कि बुद्ध भौतिकवाद के विरुद्ध थे । वे ब्रह्मचर्य और समाधि मानते थे । आत्मा है या नहीं इसे वे स्वयं समझा नहीं सकते थे । बुद्ध का दर्शन सर्वज्ञता को नहीं मानता था । परन्तु कर्मवाद का विचार और पुनर्जन्म बौद्ध धर्म को पीछे हटानेवाले सिद्धांत है जो दास-प्रथा के मददगार हो गए । अतः बौद्ध क्षत्रिय तत्कालीन समाज-व्यवस्था में दलितों का साथी नहीं था । "बौद्ध धर्म बुद्ध के बाद, समय बदल जाने के साथ बदल गया । क्षत्रियों ने ब्राह्मण विरोध में नया दर्शन निकाला । वे रक्त गर्व के आधार को नहीं छोड़ना चाहते थे । किन्तु मज़बूर होकर उन्होंने म्लेच्छों तक को स्वीकार कर लिया । यह बुद्ध और महावीर का प्रभाव था ।"[1] बौद्ध धर्म का पतन छोटे-छोटे राज्यों के युग में ही हुआ ।

रांगेय राघव के दृष्टिकोण में षड्दर्शन का प्रभाव केवल उच्चवर्गों मे ही सीमित रह गया । इसकी अपेक्षा बौद्ध और जैन संप्रदाय

---

1. रांगेय राघव - प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास - पृ.432.

जनसाधारण पर प्रभाव डालने में समर्थ हो गए । दोनों धर्म क्षत्रिय-विरोध पर अटल रहे । "जैनों में एक विशेषता सदैव रही कि उन्होंने विदेशी की सहायता से ब्राह्मण स्वदेशीय को नष्ट करने के कुचक्र नहीं किए । जैसे कि सांस्कृतिक एकता में विश्वास और विदेशी की बर्बरता में उन्हें सदैव अविश्वास बना रहा ।"[1]

इतिहास अध्ययन के संबंध में रांगेय राघव का मत

रांगेय राघव की राय में इतिहास के निष्पक्ष अध्ययन से ही हम मनुष्य के विकास को रेखांकित कर सकते हैं । उसकी अनथक-यात्रा को समझने के लिए हमें पूर्वग्रहों से मुक्त और तटस्थ होना चाहिए । इतिहास को विचित्रताओं के प्रति हमें खुले दिमाग से जागरूक रहना है । रांगेय राघव के मतानुसार हमारे मध्यकालीन मुस्लिम इतिहासकारों ने जनता के विषय में कुछ नहीं लिखा है । इन लोगों ने केवल राजवंशों के विषय में लिखा है । उनका ध्येय अपने अन्नदाताओं की प्रशंसा रहा है । उनकी स्तुति में बहुत कुछ बढा-चढाकर लिखा गया है । अपने बादशाहों की पराजय को भी विजय में बदल दिया गया है । इसके अतिरिक्त हमारे मध्यकालीन इतिहासकार सर्वत्र जिसे शांति कहते हैं, वह दमन है । इसीलिए हमें उनके अन्तर्साक्ष्य भी नहीं मिलते हैं । इसी भाँति रीतिकालीन कवियों ने भी कोई साक्ष्य नहीं छोडा है । परन्तु संतों और भक्त कवियों के जीवन-चरित्र तथा कथाओं और साहित्य में जनजीवन का आभास अवश्य मिलता है ।

---

1. रांगेय राघव - प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास - पृ. 479

रांगेय राघव मानते हैं कि भारतीय जीवन, उसकी सभ्यता एवं संस्कृति अपने मूल्यों में यूरोप से भिन्न है । अतः भारतीय जीवन को समझने के लिए भारतीय दृष्टि ही अपेक्षित है । भारत में प्रागैतिहासिक काल में जंगली जातियाँ थीं, इनमें हब्शी, निषाद, कोल, भील, संथाल, मुंडा आदि जातियाँ आती हैं । इनके बाद द्रविड आए । रांगेय राघव का अनुमान है कि द्रविडों में जातीयता का विकास नहीं हुआ था । जैसे कि मुसलमानों की कई जातियों ने भारत पर आक्रमण किया, बाद में वह "मुसलमान" एक ही कोटि में मान ली गई । प्रारंभिक जीवन में द्रविडों का आपसी संघर्ष इस तथ्य को पुष्ट करता है । उनके दृष्टिकोण में "भारत का प्राचीन इतिहास अत्यंत जटिल है । उसे किसी वाद के आधार पर सिद्ध नहीं करना चाहिए । पहले तथ्यों को एकत्र करके फिर उन पर दृष्टिपात करना चाहिए । वही नए-नए तथ्यों पर प्रकाश डाल सकता है, वही आगे बढा सकता है ।"[1] इसके अतिरिक्त "इतिहास के अन्तर्गत जातियों के क्रिया-कलापों के विवेचन में किसी प्रकार का पूर्वाग्रह और पक्षपात दिखाना अन्याय है । आर्य अच्छे थे या द्रविड अच्छे थे ऐसा सोचना अवैज्ञानिक है । क्योंकि उस समय की जातियाँ इस मानदंड पर नहीं देखी जा सकती । इतिहास में तो आर्य या द्रविड जाति के व्यवस्था-विशेष को देखना उचित है । अनार्य दासप्रथा के समाज की विषमता या उनके राजा की निरंकुशता को तोडनेवाले आर्यों को अनार्य समाज में पूज्य माना गया है । दूसरी ओर पुराने इतिहास में दूसरों की स्वतंत्रता छीननेवाले रावण और जरासन्ध को बुरा कहा गया है । क्योंकि वे दूसरों को दबाते थे ।"[2] इतिहास की गहराइयों में न जाने से भूलें होना स्वाभाविक है । दक्षिण का आर्यविरोधी आन्दोलन इसका

---

1. रांगेय राघव - प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास - भूमिका
2. रांगेय राघव - महायात्रा गाथ - अंधेरा रास्ता - पृ. 478

उदाहरण है । रांगेय राघव की दृष्टि में दक्षिण का सारा ब्राह्मण वर्ण जो आर्य कहला रहा है, वह आर्य नहीं है । दक्षिण के ब्राह्मण वर्ण आर्य और द्रविड पुरोहितों के मिल जाने से बना है । अन्तर्भुक्ति की विराटता में रक्त-शुद्धि विनष्ट हुई है । इसीलिए द्रविड कज़कम का आन्दोलन ठोस बुनियादों पर नहीं है । यह बिलकुल एक राजनीतिक अवसरवाद है । किन्तु "उत्तर, पूर्व और पश्चिम के अतिरिक्त दक्षिण का भी एक महत्वपूर्ण स्थान है । जब हम दक्षिण के संबंध में आते हैं तो अनेक प्रागैतिहासिक तथ्यों, जातियों और उनके धर्म तथा वर्ग जीवन के विषय में जानकारी प्राप्त होती है ।"[1]

रांगेय राघव मानते हैं कि भारतीय इतिहास के विकास की कुछ निजी मंजिलें हैं । क्षेत्र संबंधी विशेषताएँ इनमें मुख्य हैं । भारत में एक ही समय विकास के विभिन्न सोपान देखा जा सकते हैं । जैसे कि पूँजीवाद आने पर उसका सम विकास नहीं हुआ । मार्क्स ने भी "एशियाटिक" इतिहास को युरोपीय इतिहास से कुछ भिन्न माना है । संसार के अन्य देशों में जंगली, बर्बर दास-प्रथा समाज के समाज-सभ्यता अवस्था तथा प्रजा सामन्त अवस्था को जल्दी जल्दी पार किया । वहाँ पूँजीवादी समाज और आगे कहीं-कहीं समाजवाद की भी स्थापना हो गई । किन्तु भारत में एक-एक युग बहुत धीरे-धीरे बदला । रांगेय राघव इसके दो कारण मानते हैं । एक ओर भारत में उत्पादन के साधन धीरे ही बदले । दूसरी ओर जातियों की जटिल समस्या से उत्पन्न जाति-समस्या और वर्ण-व्यवस्था । "भारतीय

---

1. रांगेय राघव - प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास - भूमिका

समाज में निरन्तर वर्ग-संघर्ष होता रहा है । किन्तु उसका स्पष्ट स्वरूप वर्ण-संघर्ष के रूप में भारत में प्रकट हुआ है ।"[1] रांगेय राघव ने इसे और भी स्पष्ट किया है कि "जब जब भारत में वर्ग-संघर्ष अपने प्रकट या प्रच्छन्न रूप में तीव्र हुआ, उच्च वर्णों ने जातीय समस्या खडी की और जनता को भरमाया । इसका अंतिम उदाहरण है हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का विभाजन ।"[2]

धर्म के संबंध में रांगेय राघव का वक्तव्य है कि कोई भी धर्म शाश्वत नहीं है । धर्म राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों में उठी हुई विचारधाराओं का नाम है, वह सदैव बदलनेवाली चीज़ हैं । ईश्वर-अनीश्वर, आत्मा-परमात्मा, जन्म-पुनर्जन्म, ये सब मनुष्य के माने हुए विचार हैं । परन्तु ये सब विचार समयानुसार अपने स्वरूप को परिस्थिति के अनुसार बदलते रहे हैं । भारतीय चिंतन ने इसे स्वीकारा है । यहाँ विचार स्वातंत्र्य दिया गया है । इसलिए ही इतनी विचारधाराएँ मौजूद हैं । वेद और कुरान के पीछे धरती के मेहनतकशों को अनदेखा करना मानवता के साथ धोखा करना है । धर्म जब तक उपासनापक्ष में व्यक्तिपरक हो तब तक वह कोई नुकसान नहीं करता । किन्तु जब वह किसी वर्ग-स्वार्थ का पोषण करनेवाला, शोषण करनेवाला राजनीतिक रूप धारण करता है तब अवश्य हानिकारक सिद्ध होता है । धर्म ने रूढीवाद के ऊपर मानवतावाद को रखा है वहीं उसने मनुष्य का कल्याण किया है । इस पैमाने पर रांगेय राघव की इतिहास-दृष्टि व्यापक एवं उदात्त है । उनके शब्दों में "भारतीय इतिहास की वास्तविकता न हिन्दू काल और मुस्लिम काल के गौरव गाने में

---

1. रांगेय राघव - प्रतिदान - भूमिका ।
2. रांगेय राघव - प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास - भूमिका

है न उस समाज की वास्तविकता को छिपाने में । हमें जनता का सुख-दुःख सामने रखकर देखना चाहिए । हमने यही दृष्टिकोण अपनाया है ।"[1]

रांगेय राघव की इतिहास दृष्टि पर इतिहासकारों का आरोप

रांगेय राघव की इतिहास-दृष्टि पर कई इतिहासकारों और आलोचकों ने कडी दृष्टि डाली है । संक्षेप में आरोपों के मुख्य तथ्य इस प्रकार हैं -

1. एक ओर यदि रांगेय राघव के सारे इतिहास पर द्रविड दृष्टि से देखने का आरोप लगाया गया है तो दूसरी ओर उन पर इतिहास के स्थान पर परंपरा को प्रतिष्ठित करने और पुनरुत्थानवादी होने का दोषारोपण भी किया गया है ।
2. यह भी विवादास्पद है कि आर्यों में दास-प्रथा घरेलू दास-प्रथा को छोडकर कभी उस पैमाने पर प्रयुक्त हुई थी, जिस पैमाने पर वह ग्रीस और रोम में प्रयुक्त हुई । किन्तु रांगेय राघव इस बिन्दु पर नवीनतम कृतियों में भी दासप्रथा का अस्तित्व भारत में मानते रहे । वह भी उस रूप में कि दासप्रथा उत्पादन विधि में पर्याप्त रूप से सहायक थी ।
3. "प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास" का मज़ाक बनाया गया है कि वह अव्यवस्थित पुस्तक है यानी वह जल्दबाज़ी के लेखन का अद्वितीय उदाहरण है ।[2]

---

1. रांगेय राघव - महायात्रा गाथा - रैन और चंदा - पृ. 834
2. साहित्य संदेश - जनवरी-फरवरी अंक, 1963 - पृ. 301

रांगेय राघव अपनी इतिहास-परिकल्पना में पूर्वग्रहों से मुक्त है । किन्तु दौर्भाग्यवश उनकी इतिहास-दृष्टि पर्याप्त विवादास्पद रही है । उन्होंने कहीं भी नस्लवादी दृष्टि से इतिहास को नहीं देखा है । यहाँ परंपरा को प्रतिष्ठापित करना भी उनका ध्येय नहीं रहा है । अन्य इतिहासकार पुरातत्व और भाषा-विज्ञान को ही निर्णायक तत्व मानते हैं । इनके अतिरिक्त रांगेय राघव ने साहित्य और परंपरा पर भी अधिक ज़ोर दिया है । यह इसलिए है कि वह विभिन्न जातियों के विकास क्रम को अंकित कर सकें । यहाँ उन्होंने वेद, उपनिषद, पुराण, महाभारत, रामायण आदि हमारे प्राचीन ग्रन्थों को भी आधार बनाया है । इसे उनकी पुनरुत्थानवादी दृष्टि नहीं कहा जा सकता । क्योंकि वे भाववादी और राष्ट्रीयतावादी इतिहासकार नहीं है । उनकी इतिहास-दृष्टि ऐतिहासिक यथार्थवादी है । रांगेय राघव ने प्रागैतिहासिक काल से लेकर भारत के विभिन्न जातियों के आवागमन, उनके विकास-क्रम, उनकी जातीय-संस्कृति, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था, धार्मिक विश्वास और विभिन्न जातियों की अंतर्भुक्ति को ही रेखांकित किया है । यहाँ इनके सामाजिक-संस्कृति के विभिन्न अन्तर्विरोधों को भी खूब उकसाया गया है । इसलिए ही "प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास" में प्रस्तुत भारत के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विकास नकारात्मक है ।

इतिहास के संदर्भ में रांगेय राघव ने दास-प्रथा को उत्पादन के क्षेत्र में अधिक सहायक माना है । किन्तु दास-प्रथा के संबंध में उनकी दृष्टि अत्यंत संवेदनशील और मानवतावादी रही है । उन्होंने यह तो व्यक्त किया है कि "जब मैं कहता हूँ कि फराऊन ने संसार की आश्चर्यजनक

पिरैमिड बनाई तब यह मत भूलना कि उस महान निर्माण का श्रेय दासों के उस नौ बटे दसवें हिस्से को है, जो कि उन अतिकाय पत्थरों को उठाने में मर गया था । मैं मानता हूँ कि उस युग में दासप्रथा इतिहास के दौर में आई थी । उस समय यदि दास न होते तो आज का संसार इस विकसित अवस्था को कभी प्राप्त न होता ।"[1]

भारतीय दास-प्रथा के संबंध में रांगेय राघव का मानना है कि "यहाँ प्रारंभ मे सब अनार्य दास थे । फिर दास रोटी-पानी पाने वाले रहे । खेतो और मज़दूरी करनेवाले अनार्य शूद्र कहलाए । वे बहुत थे । आर्यों ने उनकी अंदरूनी सामाजिक पंचायत-प्रणाली को नहीं छुआ, पर दर्जा नीचे दिया । वह जब चाहे जान से मारा जा सकता था । द्वापर में शूद्र के अधिकार बढे । संपत्ति के अधिकार भी मिलने लगे । उसके बाद दास भी उठने लगे । कलि में शूद्र काफी बढ गया । गण-नास्तिक युग में दासप्रथा भी टूट गई । चाणक्य के बाद भूमिबद्ध किसान दिखाई देते हैं ।"[2] इसप्रकार वेदकाल में दासप्रथा अखंड रही, बाद में ही टूटी । वैदिक संस्कृत के अध:पतन और लौकिक संस्कृत के उदय तक याने उत्थान तक बनी रही । बाद के लौकिक संस्कृत के युग में वह शिथिल हो गई । यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि भारत में दासप्रथा का भिन्न-भिन्न रूप से विभिन्न जातियों में विविध स्थानों पर विकास हुआ है । रांगेय राघव ने भारतीय दासप्रथा के जिन रूपों को स्वीकार किया है उनसे अन्य मार्क्सवादी लोग और

---

1. रांगेय राघव - महायात्रा गाथ - अंधेरा रास्ता - पृ. 623
2. रांगेय राघव - प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास - भूमिका ।

पुरातत्वशास्त्री भिन्न मत रखते हैं । उनके अनुसार दासप्रथा महाभारत युग में उत्पादन के क्षेत्र में निर्णायक नहीं प्रमाणित होती ।

रांगेय राघव के शब्दों में "प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास की व्याख्या करने का मेरा ही प्रथम प्रयास है । इसमें मुझे भूलें हो जाना आश्चर्य नहीं, किन्तु विद्वानों को मेरी भूलें ढूँढने के उद्देश्य से नहीं, विचार के नए क्षेत्र में प्रवेश करने के दृष्टिकोण से मुझे सहायता देनी चाहिए । क्योंकि मैं ने इतिहास के क्षेत्र में किसी पूर्वाग्रह को नहीं स्वीकारा है । मेरा उद्देश्य मनुष्य की इस महायात्रा को देखना है और भविष्य के मनुष्य को उसकी परंपरा से अवगत कराके उसे काल के निर्माण के प्रति सजग बनाना ही है ।"[1] भारत में राजवंशों से परे भी जीवन की एक शून्य सत्तात्मक सत्ता समझी जाती है । समाज में यह भयानक दरिद्रता थी कि उसका ऐतिहासिक दृष्टिकोण नहीं था । इसी कारण युगों तक भारतीय समाज अपनी ही परिधि में हाथ पाँव पटकता रहा । उसे उससे बाहर निकलने की न तो कोई राह सूझी और न वह निकल ही सका । इसलिए ही रांगेय राघव का यह प्रयत्न सराहनीय है । आर्यों की पृष्ठभूमि को समझाने के लिए ही उन्होंने आलोच्य ग्रंथ में आर्यों के पहले के प्रागैतिहासिक आग्नेय युग, द्रविड युग तथा किरात युग का परिचय दिया है । आगे चल कर इन युगों का भारतीय इतिहास पर गहरा प्रभाव पडा है । बाद के युगों में विभिन्न जातियों की पारस्परिक अन्तर्भुक्ति को यथार्थतावादी दृष्टि से परखा गया है । रांगेय राघव ने यह भी कहा है कि "मुझे न ब्राह्मण से द्वेष

---

1. रांगेय राघव - महायात्रा गाथा - अंधेरा रास्ता - पृ. 695.

है, न क्षत्रिय से । मैं इन सब भेदों को गतयुग की वस्तु मानता हूँ ।"[1]

समग्र इतिहास के प्रति वस्तुपरक और वैज्ञानिक रूख अपनाते हुए इतिहास का विश्लेषण करना, यही रांगेय राघव का ध्येय रहा है । किसी समय का इतिहास एक अर्थ में पूरे सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक संदर्भों का दस्तावेज़ होता है । इसलिए ही रांगेय राघव ने ऐतिहासिक तथ्यों के साथ तद्युगीन सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक स्थितियों का भी अध्ययन किया है । "दरअसल, इतिहास की अपनी गति होती है, जिसके आधार पर, किसी देश अथवा काल की स्थितियों का विकास होता है, फिर, यह गति देशकाल और परिस्थिति के कारण निरंतर बदलती रहती है, जिसका प्रामाणिक अध्ययन वैज्ञानिक दृष्टि-संपन्न इतिहासकार ही कर पाता है ।"[2] रांगेय राघव ने भारतीय समाज के प्रत्येक पहलू पर युग-सापेक्ष दृष्टि डाली है । उनकी मान्यता है कि विभिन्न युगों में मनुष्य का सत्य बदलते रहते हैं । इसीलिए उन्होंने व्यक्ति को देश-काल और युग-सापेक्ष रखकर देखा है । जैसे कि इतिहास के लंबे पट खोलकर देखने पर वहाँ अत्याचार का पक्ष और प्रतिपक्ष भी है । क्लाइव और वॉरनहेस्टिंग्ज़ अपने राष्ट्र के लिए वीर थे, जबकि हमारे लिए वे अत्यंत जघन्य और घातक थे ।

---

1. रांगेय राघव - काव्य - यथार्थ और प्रगति - पृ.8।
2. रामनिहाल गुंजन - नवजागरण और इतिहास चेतना { "पहल" द्वारा प्रकाशित} में लेखन - पृ. 69

रांगेय राघव की इतिहास-दृष्टि राहुल सांकृत्यायन से भी अधिक वस्तुगत एवं तटस्थ है । राहुल जी ब्राह्मणवाद के पुराने आलोचक हैं । ब्राह्मण साम्राज्यवादियों की भर्त्सना करते वक्त वे पूर्वाग्रह से मुक्त नहीं है । लेकिन रांगेय राघव सर्वत्र तटस्थ रहते हैं । उनका ध्यान सामाजिक शक्तियों और तदनुरूप व्यक्तियों पर रहता है । इसीलिए वे राहुल जी की आलोचना करते हैं । इसी तरह वे रामचन्द्र शुक्ल जी के ब्राह्मणवाद पर भी चोट करते हैं । क्योंकि शुक्ल जी ने कबीर, दादू, नानक अथवा सिद्ध संत परंपरा के साथ न्याय नहीं किया है । रांगेय राघव के अनुसार विदेशी संस्कृतियों को ऊपर रखनेवाले साम्राज्यवाद के विरुद्ध भारतीय जनता को एक करनेवाले कबीर, रैदास, नानक, दादू आदि प्रगतिशील हैं । तुलसीदास को भी रांगेय राघव ब्राह्मणवाद का समर्थक मानते हैं । उनके अनुसार तुलसीदास का ब्राह्मणवाद को फिर से जागृत करने का यत्न प्रतिगामी था । इन बिन्दुओं पर रामविलास शर्मा से भी उनका घोर मतभेद रहा है । शर्मा जी ने योग-सिद्ध-संत परंपरा की विद्रोहिणी प्रवृत्ति को तुलसीदास के जनवाद से अधिक महत्व नहीं दिया है । इस प्रकार ह्रासकालीन सामंतकाल में जनवादी आन्दोलनों को कुचलना बिलकुल प्रतिगामी है । रांगेय राघव ने ऐतिहासिक संदर्भों में जनवादी चेतना पर अधिक ज़ोर दिया है । वर्ण-व्यवस्था और जाति-प्रथा के विरुद्ध जन-आन्दोलन को उन्होंने मानवीय दृष्टि से देखा है । रांगेय राघव ने यह स्पष्ट किया है कि "हम इतिहास में निष्पक्ष हैं । हम किसी संप्रदाय के बंधन में बद्ध नहीं है । हम किसी प्रकार की ऐसी भीति में विश्वास नहीं रखते कि अमुक संप्रदाय इससे नाराज़ हो जाएगा ।"[1]

---

1. रांगेय राघव - महायात्रा गाथा - रैन और चंदा -भाग-2 - पृ. 231-3

इतिहास-चिन्तन के क्षेत्र में रांगेय राघव का महत्व असन्दिग्ध रूप से प्रतिष्ठित है । उन्होंने अपने उपन्यासों में खासकर ऐतिहासिक उपन्यासोंमें- "मुर्दों का टीला", "चीवर", "अंधेरे के जुगनू", "पक्षी और आकाश", "राह न रुकी" आदि के ज़रिए अपनी इतिहास-चेतना के साथ सर्जनात्मकता का भी परिचय दिया है । "महायात्रा" जैसी कृतियाँ भी उनकी चेतना और दृष्टि की ही उपज है । इतिहास के अध्ययन के दौरान उन्होंने कुछ निष्कर्ष भी ढूँढ निकाले हैं । उनमें कुछ ऐतिहासिक आधारों से युक्त हैं और कुछ कल्पनाश्रित हैं । पर उन विचारों के मूल में दरअसल मानवीय चिन्ता का पक्ष प्रबल है । दासप्रथा, युद्ध और शाँति जैसे मुद्दों पर कथा विकसित करते समय रांगेय राघव के मन में ऐसी ही भावना थी । अतीत को चुनकर वे अतीतोन्मुखी नहीं हो रहे थे । मानवीय संस्कृति की यह खोज वास्तव में सांस्कृतिक मूलाधारों की खोज है । इतिहास लेखन में उनकी खोजी प्रवृत्ति प्रकट होती है जो मानवीय चिन्ता से युक्त है । उन्हीं परिदृश्यों के आधार पर जब उन्होंने उपन्यास लिखे तो वे उनकी सृजनात्मक प्रतिभा के प्रस्फुटन के रूप में सामने आए हैं ।

अध्याय : तीन

रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास और कल्पना

ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास का आभास पैदा करता है । किन्तु इतिहासकार के तथ्यपरक विवेचन से हटकर ऐतिहासिक उपन्यासकार का लक्ष्य ऐतिहासिक तथ्यों का सहारा लेकर वर्तमान को उजागर करना है । ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास एवं कल्पना-तत्वों का विभिन्न अनुपातों में संगम है । इस कारण से ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास की गहराई, इतिहास और कथा की समर्थ पारस्परिकता, मिथकों का प्रयोग, विश्वासोपार्जन की क्षमता, विषयगत संपन्नता, समृद्ध मानवीय दृष्टि आदि गुण विद्यमान रहते हैं । ऐतिहासिक उपन्यास इस दृष्टि से अलग-अलग प्रकार के भी होते हैं क्योंकि कहीं-कहीं कुछ तत्व हावी रहते हैं तो कुछ गौण । वस्तुतः इतिहास और कल्पना का समावेश, चाहे अनुपात जैसा भी हो, अत्यन्त आवश्यक है ।

इतिहास और कल्पना

ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना का महत्वपूर्ण स्थान है । इतिहास को उपन्यास का आधार बनाकर जब ऐतिहासिक उपन्यासकार अपने कलात्मक कार्य में प्रवृत्त होता है तब वह अनुमानों की अपेक्षा कल्पना पर आधारित संभाव्य सत्य को ही प्रश्रय देता है । कल्पना की महत्वपूर्ण भूमिका उपन्यास को गति देती है और अन्ततः इच्छित दृष्टि तक ले भी चलती है । "साहित्यकार की व्यक्तिगत कल्पना से जो इतिहास के असाध्य, सूत्रहीन घटनाओं के धागे मिलाने के लिए होती है, ऐतिहासिक उपन्यास की सृष्टि होती है ।"[1] उपन्यासकार मानव-स्वभाव, उसके भावलोक और उसकी अन्यान्य विशिष्टताओं पर दृष्टि रखकर इतिहास सत्य के चारों ओर एक ऐसे

---

1. मक्खनलाल शर्मा - ऐतिहासिकता और हिन्दी उपन्यास - प्र.सं.-पृ.44

कथानक की रचना करता है जिससे पाठकों को आस्वादन की एक नयी भावभूमि प्राप्त हो जाती है । डॉ. जगदीश गुप्त के शब्दों में "ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास और कथा की पुरातन समीपता की नूतन समन्वयात्मक अभिव्यक्ति है, जिसके पीछे युग-युग के अतीतोन्मुखी संस्कार निहित है । उसकी उत्पत्ति विगत आत्मविस्तार की आन्तरिक मानवीय वृत्ति से हुई है । कथा की कोई भी कल्पना विगत अथवा ऐतिह्य से उसी प्रकार अपने को सर्वथा मुक्त नहीं कर सकती, जिसप्रकार इतिहास अपने को कल्पना से पृथक नहीं कर सकता ।"[1] जगदीश गुप्त का कथन इसलिए सही है कि इतिहास को काल्पनिक स्थितियों पर उनका ज़ोर है । जीवन का कोई भी प्रसंग "विगत या ऐतिह्य से मुक्त नहीं है" - जगदीश गुप्त के इस कथन में ऐतिहासिक उपन्यास संबंधी कई बातें गुंफित हैं । अपने विषय की चयन-रीति में ऐतिहासिक उपन्यासकार अपना विकल्प ही ढूँढता है । कल्पना उसके विकल्प का आधार है । यहाँ कल्पना का भी विश्लेषण आवश्यक है । उपन्यास में कल्पना उपन्यासकार की मौलिक उद्भावना है ; अर्थात् निजी है । एक प्रकार से मौलिक है । लेकिन तभी वह प्रासंगिक और मूल्यवान है जब वह इतिहास के चयन के अनुकूल हो । वह एकदम विच्छिन्न होकर अग्रसर नहीं हो सकती । अर्थात् इतिहास से विलगित होकर कल्पना टिक नहीं सकती । इतिहासाश्रित कल्पना वैभव का महत्व ही दरअसल ऐतिहासिक उपन्यास के लिए वांछित है । कल्पना ही उपन्यास को इच्छित दिशा की ओर ले चलती है ।

इतिहास का मानवता के साथ अटूट संबंध है । सभ्यता के आरंभ के साथ हमारा इतिहास भी शुरू होता है । इसीलिए संपूर्ण मानवजाति

---

1. डॉ. जगदीश गुप्त - आलोचना विशेषांक अक्तूबर 1954 - पृ. 78

इतिहास में शामिल है । इतिहास राष्ट्र की स्मरण शक्ति है क्योंकि राष्ट्र के अतीत का साक्षी इतिहास होता है । आदिकाल से भिन्न भिन्न जातियाँ, धर्म और विचारधाराएँ किस प्रकार कार्य करती आ रही थीं और वे उज्ज्वल भविष्य के लिए कैसे जागरूक हैं इनका संकेत इतिहास देता है । "निस्संदेह इतिहास मानवता का एक उज्ज्वल देवालय है, जहाँ जनता, राजवंश, घटनाएँ, राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाएँ, उनका आदर्श, संस्कृति, रहन-सहन आदि मूर्तिवत स्थान पाते हैं ।"[1] इतिहास से हम विभिन्न प्रकार की प्रेरणाएँ प्राप्त कर सकते हैं । क्योंकि इतिहास में हम मनुष्य के कार्यकलापों, व्यवहारों, आचार-विचारों तथा चिन्तनशीलता और चेतना-शक्ति का प्रकटीकरण पाते हैं । यही इतिहास ऐतिहासिक उपन्यासकार की वास्तविक ज़मीन है । लेकिन वहीं खड़े रहकर उपन्यास अपनी एक अलग ज़मीन तलाशने लगते हैं जहाँ वह अपनी मौलिक प्रतिभा का प्रदर्शन कर सके । इसके लिए उसे अपनी कल्पना शक्ति का भरपूर प्रयोग करना पड़ता है ।

कल्पना ऐतिहासिक उपन्यास का उदात्त तत्व है । क्योंकि ऐतिहासिक उपन्यास वर्तमान परिस्थितियों में किया गया अतीत का पुनर्निर्माण या काल्पनिक पुनर्जीवन प्रक्रिया है । याने इसमें अतीत का प्रत्यक्षीकरण कल्पना द्वारा ही संभव है । कल्पना का सीधा संबंध संवेदना से है । इसीलिए संवेदनानुभूति, रागात्मकता और साहित्यिक सौष्ठव के दर्शन केवल ऐतिहासिक उपन्यास में हो सकते हैं, इतिहास में नहीं । इतिहास में ऐतिहासिक तथ्यों का एक विशेष क्रम रहता है । इतिहास के संदर्भ में उसकी

---

1. रमेश कुन्तल मेघ - नागरी प्रचारिणी पत्रिका 1964 - पृ. 51

संरचनात्मकता भी है । लेकिन वह सृजनात्मक नहीं है । ऐतिहासिक उपन्यास जो संसार रचता है वह सृजनात्मक है भले ही उसमें कल्पना की अधिकता क्यों न हो । यह उसके सृजनात्मक विधा होने का प्रमाण है । अतः ऐतिहासिक उपन्यासों में जीवनोन्मुख कल्पना का प्रयोग होता है । इसमें उपन्यासकार की कल्पना उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है । यद्यपि ऐतिहासिक उपन्यास में कल्पना-समावेश का पर्याप्त गुंजाइश है फिर भी यह विवेच्य युग के देश-काल से अनुशासित होती है । श्रेष्ठ कलात्मक सर्जना सृष्टा से कल्पनात्मक तटस्थता की मांग करती है ।

ऐतिहासिक उपन्यासों के प्रकार

कल्पना और इतिहास के प्रयोग के आधार पर ऐतिहासिक उपन्यासों के तीन प्रकार हो सकते हैं । यथा:

1. इतिहासप्रधान
2. इतिहासाश्रित और
3. कल्पनाप्रधान ऐतिहासिक उपन्यास ।

§1§ इतिहासप्रधान ऐतिहासिक उपन्यास

इतिहासप्रधान ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास की प्रधानता होती है और कल्पना गौण रहती है । इनमें ऐतिहासिक तथ्यों के विशेष संग्रह का प्रयत्न द्रष्टव्य है । इनमें ऐतिहासिक घटनाओं, पात्रों और परिस्थितियों का पूर्ण उपयोग होता है । हिन्दी में ऐसे उपन्यास कम

मिलते हैं । वृन्दावनलाल वर्मा का "झाँसी की रानी", जयशंकर प्रसाद का "इरावती" और प्रतापनारायण श्रीवास्तव का "बेकसी का मज़ार", रांगेय राघव का "चीवर" आदि ऐतिहासिक उपन्यासों को इस कोटि में रखा जा सकता है । जब इतिहास का अधिक आश्रय लिया जाता है तब उसमें परिवर्तन की संभावनाएँ कम होती हैं । लेकिन यह संभव है कि इतिहास के पुनर्विश्लेषण के माध्यम से इतिहास की गति में आए परिवर्तनों और उस समय के सामाजिक कार्यकलापों को प्रस्तुत करके इतिहास के अन्दर एक और इतिहास रचा जा सकता है । प्राय: इसप्रकार के उपन्यासों में यही होता है । यहाँ ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए इतिहास-ज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टि का समान महत्व है । कल्पना के कम प्रयोग के कारण उसमें इतिहास को पुनर्रचित करने की प्रवृत्ति बलवती रहती है ।

§2§ इतिहासाश्रित ऐतिहासिक उपन्यास

इतिहासाश्रित ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास और कल्पना को समतुल्य स्थान मिलता है । ऐसे उपन्यासों में कुछ घटनाएँ, पात्र एवं स्थितियाँ ऐतिहासिक होते हैं और कुछ काल्पनिक । इस प्रकार के उपन्यासों की सफलता इतिहास एवं कल्पना के आपसी समन्वय, द्वन्द्व और उनके अनुपात पर आश्रित है । जिस उपन्यास में इतिहास और कल्पना-तत्व परस्पर पूरक एवं समन्वित हो वह उतना ही प्रभावशाली बन जाता है । इस प्रकार के ऐतिहासिक उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रेणी में सबसे महत्वपूर्ण और सफल समझे जाते हैं । रांगेय राघव का "राह न रुकी", वृन्दावनलाल वर्मा का "मृगनयनी", चतुरसेन शास्त्री का "वैशाली की नगरवधू",

यशपाल का "अमिता", राहुल सांकृत्यायन का "सिंहसेनापति" आदि इस कोटि में आते हैं । इनमें इतिहास की रचनात्मक स्थिति और कल्पना का आनुपातिक विकास देखने को मिलते हैं । दोनों पक्षों में विभेद करना काफी मुश्किल होता है । इसीलिए ऐसी रचनाओं के प्रमुख पात्र या कुछ कथा-प्रसंग इतने मूल्यवान हो जाते हैं कि वे साहित्य के मानक उदाहरण भी हो जाते हैं । ऐसे पात्र निरंतर चर्चा में आते हैं जिनमें ऐतिहासिक और अनैतिहासिक का कोई भेद नहीं है । कथा-प्रकरण भी इस प्रकार चर्चित बन सकते हैं ।

§3§ कल्पनाप्रधान ऐतिहासिक उपन्यास

कल्पनाप्रधान ऐतिहासिक उपन्यास में ऐतिहासिक वातावरण का भ्रम पैदा करके काल्पनिक पात्रों और घटनाओं के माध्यम से कथानक का विकास किया जाता है । उनमें उपन्यासकार की कल्पनाशीलता को यथेष्ट विचरण करने की छूट है । जब ऐतिहासिक घटनाओं और सत्यों के सूत्र का पता नहीं चलता, समय की मर्यादाओं ने उन्हें ओझल कर दिया हो, ऐसी स्थिति में उपन्यासकार अपनी कल्पना का भरपूर प्रयोग ऐतिहासिक उपन्यासों में करता है । इस प्रकार उपन्यासकार भूले हुए या खोये हुए इतिहास का पुनःसृजन करता है । रांगेय राघव के "मुर्दों का टीला", "अंधेरे के जुगनू" तथा "पक्षी और आकाश", चतुरसेन शास्त्री का "वयं रक्षामः", हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का "बाणभट्ट की आत्मकथा" आदि इसप्रकार के उपन्यास हैं । इन उपन्यासों के लेखन के कुछ उद्देश्य भी होते हैं । उद्देश्य पूर्ति की विशिष्टता ऐसे कल्पनाप्रधान ऐतिहासिक उपन्यासों के पीछे कार्यरत रहती है । इन्हीं विशिष्ट सामाजिक परिकल्पनाओं या राजनीतिक वातावरणों या ऐसे अनेक इच्छित आदर्शों के अपने महत्त्व भी हैं । यशपाल का प्रसिद्ध ऐतिहासिक

उपन्यास "दिव्या", राहुल सांकृत्यायन का "जय यौधेय" आदि इसके अंतर्गत आते हैं । दोनों उपन्यास मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित हैं ।

ऐतिहासिक उपन्यासों में चाहे इतिहास के परिदृश्य अधिक मुखर हो या कल्पना का या दोनों का समन्वय का, उनका प्रत्यक्षीकरण कई संदर्भों में होता रहता है । अर्थात् ऐतिहासिक उपन्यासकार अपनी औपन्यासिक वस्तुओं में, वस्तु के विभिन्न प्रकरणों में इतिहास का या कल्पना का उपयोग करता है ।

तथ्य चयन का परिदृश्य

ऐतिहासिक तथ्यों के अंतर्गत शिलालेख, ताम्रपत्र, मुद्रा, प्राचीन पत्र और प्रामाणिक ग्रंथ आदि आते हैं । इनके सहारे धारावाहिक इतिहास बनाने में इतिहासकार को कल्पना का भी आश्रय लेना पडता है । यह कल्पना ऐतिहासिक उपन्यासकार की कल्पना से एकदम भिन्न है । इतिहासकार की कल्पना प्राप्त सामग्रियों और दस्तावेज़ों के अनुकूल सूत्रहीन इतिहास को श्रृंखला-बद्ध करने के लिए होती है । लेकिन ऐतिहासिक उपन्यास की रचना में उपन्यासकार अनुमानों की अपेक्षा कल्पना पर आधारित संभाव्य सत्य पर अधिक ज़ोर देता है । उपलब्ध ऐतिहासिक तथ्यों को समेटकर वह एक ऐसे कथानक का निर्माण करता है जिससे पाठकों का गंभीर मनोरंजन हो सके । इतिहासकार की भाँति वह नवीन तथ्यों की खोज में ज्ञानोत्सुक नहीं रहता । क्योंकि उसका दायित्व ऐतिहासिक तथ्यों का विवरण देना नहीं है ।

वह इतिहास में से कुछ ऐसे व्यक्ति, घटनाएँ और वातावरण संबंधी तथ्य जुटाकर अपनी सृजनात्मक कल्पनाशक्ति एवं प्रतिभा के बल पर उपन्यास का सृजन करता है । आचार्य चतुरसेन शास्त्री के शब्दों में - "ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास और कल्पना का समन्वय है, तथापि इसमें कल्पना का अस्तित्व इतिहास से बढकर है । एक श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास का इतिहास औपन्यासिक प्रवृत्तियों पर आधारित होता है । अत: उपन्यास में इतिहास-रस की खोज करनी चाहिए न कि इतिहास की ।"[1] श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास सदा उपन्यास के अधीन में होता है, उपन्यास इतिहास के नहीं । अत: उपन्यासकार को ऐतिहासिक तथ्यों के बलात् समावेश से बचना है । ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक तथ्यों की प्रामाणिकता अपरिहार्य नहीं है । इनमें कल्पना तथा सक्षम सर्जनात्मक प्रतिभा ही अधिक वांछित है । इसीलिए ऐतिहासिक उपन्यास की सीमाएँ अधिक व्यापक है । इतिहासकार उपलब्ध तथ्यों को घटा या बढा नहीं कर सकता । याने वह तथ्यों की उपेक्षा या उसे बदलने का साहस नहीं कर सकता है । उसमें बुद्धि और विचार की प्रेयता है भावना और कल्पना की नहीं ।

तथ्यान्वेषण में उपन्यासकार कवि-हृदय को लिए रहता है तो इतिहासकार वैज्ञानिक-दृष्टि को स्वीकारता है । इसीलिए उपन्यासकार ऐतिहासिक तथ्यों के मानवीय पक्षों के आग्रही होते हैं । एक विशेष तथ्य को वह अपनी प्रातिभिक्त सीमा के अनुकूल विकसित कर सकता है जिसमें वह इतिहास को झुठलाने का प्रयास नहीं करता है बल्कि इतिहास को एक कथा-परिप्रेक्ष्य ला खडा करता है । साथ ही वह इतिहासेतर तथ्यों की परिकल्पना से रचनात्मक सौंदर्य को अक्षुण्ण बनाता है । ऐतिहासिक तथ्यों की चयन-प्रक्रिया

---

1. आचार्य चतुरसेन शास्त्री - वैशाली की नगरवधू - भूमिका ।

में वह इतिहासकार की अपेक्षा अधिक सचेतन है । यहाँ उसकी प्रतिभा अधिक मुखरित होती है । ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास के कालबद्ध तथ्यों को चिरकालीन सत्यों के रूप में परिवर्तित करता है । इसीलिए उपन्यास का महत्व और प्रासंगिकता बनी रहती है । उपन्यास अपनी विधायक परिधि में ये सब करता है, चाहे वह इतिहास का नया विकास हो या इतिहास की कांट छाँट । तथ्यों का अनादर वह नहीं करता है ।. उपन्यास की परिधि में तथ्यों का चयन करता है ।

रांगेय राघव का "मुर्दों का टीला" सिन्धु घाटी की सभ्यता और संस्कृति पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास है । इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में काल्पनिक कथानक की प्रमुखता है । सन् 1921 में पंजाब के मोअन-जो-दडो और हडप्पा प्रदेशों की खुदाई से प्राप्त भग्नावशेषों से यह पता चला कि प्राचीन काल में वहाँ नगर-सभ्यता कायम थी । विद्वानों के मतानुसार "ईसा से 3500 वर्ष पूर्व सिन्धु नदी के तटवर्ती प्रदेशों में द्रविड सभ्यता अपने चरम सीमा पर थी ।"[1] रांगेय राघव ने उपन्यास में इसका उल्लेख किया है -"ईसा से साढे तीन हज़ार वर्ष पूर्व महानद सिंधु तीर पर मोअन-जो-दडो का महानगर अपने वैभव और अभिमान से मदमत्त-सा चुनौती देता-सा आकाश की ओर देखकर उपेक्षा से मुस्करा देता था । आज अनेक वर्षों के बाद श्रेष्ठि मणिबन्ध अपनी अर्जित संपत्ति के साथ लौट रहा था । उसके हृदय में आनन्द संकुल प्रताडित-सा फूत्कार कर रहा था ।"[2] "मोअन-जो-दडो की महानागरिक-सभ्यता का पतन प्रामाणिक एवं ऐतिहासिक है ।

---

1. भगवतशरण उपाध्याय - प्राचीन भारत का इतिहास, 1948 - पृ. 17
2. रांगेय राघव - मुर्दों का टीला - पृ. 1

उपन्यास में महा-स्नानागार का उल्लेख भी इतिहासकारों द्वारा स्वीकृत है ।"[1] इसके पहले वैदिक सभ्यता को ही भारत की प्राचीन सभ्यता मानते थे । रांगेय राघव ने उपन्यास के कथानक की प्रस्तुति में ऋग्वेद आदि से भी सहायता ली है -"कुछ विद्वानों का मत है कि महानागरिक वास्तव में आर्यों से युद्ध करनेवाले असुर थे । मूर्तिपूजा न जानने वाले आर्य जब इस देश की भूमि पर आए उन्होंने अनेक जातियाँ पाई जिनका ऋग्वेद के 1-9 मंडल में वर्णन है - जिनमें कीकट, पाणीय, किरात आदि थे । प्रारंभ में ही जो मिले वे उत्तर में ही रहे होंगे । निस्संदेह इनका धर्म और संस्कृति उस काल के सबसे अधिक प्रभावशाली प्रदेश मोअन-जो-दडो के असर में रहा होगा । मैं ने आर्यों के आक्रमण के विषय में कोई कल्पना नहीं की ।"[2]

ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि के लिए इतिहास पुष्ट अन्य तथ्यों का समावेश भी उपन्यास में किया गया है । उपन्यासकार ने "मुर्दो का टीला" में ऐतिहासिक तथ्यों की रक्षा के साथ सृजनात्मक कल्पना का सार्थक प्रयोग भी किया है । जैसे कि मिश्र के कठोर शासक फराऊन ने वहाँ की विख्यात पिरेमिड बनाया था । इस समय दासप्रथा कायम थी । उपन्यासकार ने इस ऐतिहासिक तथ्य के साथ कल्पना को इसप्रकार जोड दिया है कि उपन्यास में मणिबंध अपनी मिश्री दासी से कहता है -"उन कठोर पाषाण में जो मरकर भी जीवित का अभिमान करके रहेगा वह न जाने किस जीवन की छलना में घोर यातना भोग रहा है ।"[3] इसप्रकार उपन्यास में ऐतिहासिक

---

1. डॉ. राधाकृष्ण चौधरी - प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास - 1974 - पृ. 30
2. रांगेय राघव - मुर्दो का टीला - भूमिका
3. वही - पृ. 4

वातावरण को पुनजीर्वित करने में ऐतिहासिक तथ्यों के साथ कल्पना का योगदान भी सराहनीय है ।

"चीवर" शीर्षक उपन्यास की प्रमुख घटनाएँ ऐतिहासिक हैं । जैसे - मालवराजा देवगुप्त का छल से गृहवर्मा की हत्या करना तथा राज्यश्री को बन्दी बनाना, राज्यवर्द्धन का देवगुप्त पर आक्रमण और उसका वध करना, शशांक द्वारा छल से राज्यवर्द्धन की हत्या राज्यश्री का बन्दीगृह से पलायन कर विन्ध्या के जंगलों में चिता सजा कर जल मरने का प्रयत्न और अचानक हर्षवर्द्धन का वहाँ पहुँचकर उसे वापस लाना, हर्ष का शशांक पर आक्रमण करना और शशांक का भाग जाना, अंत में राज्यश्री और हर्ष का बौद्ध धर्म स्वीकार करना आदि इतिहासविदित है । इन ऐतिहासिक तथ्यों को जीवन्त बनाने के लिए उपन्यास में काल्पनिक घटनाओं और पात्रों का भी आश्रय लिया गया है । उपन्यासकार ने "चीवर" में देवगुप्त को विलासी और विषय-लोलुप बनाया है - "देवगुप्त की तृष्णा एक लपट है । वह सतीत्व की आग की ऊष्मा से भयभीत नहीं होती ।"[1] सामन्तों के द्वारा अपने गुप्तचर भण्ड की सखी पद्मा को उठा लाना, गुप्त संदेश देने आए भण्ड से देवगुप्त के भोग में बाधा उपस्थित होना, भण्ड को परिवार समेत मृत्युदंड देना, राज्यश्री के अपरूप सौंदर्य से मोहित होकर गृहवर्मा की हत्या करने के लिए मदनिका की सहायता लेना और उससे देवगुप्त का प्रणय-व्यापार आदि काल्पनिक घटनाओं से कथानक को विकसित करके उपन्यास में ऐतिहासिक तथ्यों को अधिक जीवन्त बनाया गया है ।

---

1. रांगेय राघव - चीवर - पृ. 19

"राह न रुकी" में "दधिवाहन और शतानिक का संघर्ष, अंग देश को मगध में मिलाना, वसुमति का चन्दनबाला नाम से जैनमत स्वीकार करके प्रसिद्ध होना आदि प्रामाणिक ऐतिहासिक तथ्य हैं ।"[1] दधिवाहन, शतानिक, बिंबसार जैसे ऐतिहासिक नरेशों के बीच के पारस्परिक स्पर्द्धा और राजनीतिक छल-कपट को रांगेय राघव ने उपन्यास का आधार बनाया है । इसमें उन्होंने ऐतिहासिक तथ्यों के साथ कल्पना को भी जोड दिया है । उपन्यास में शतानिक श्रेष्ठि धनवाह से कहता है -"बात यह है कि अंग की रानी धारिणी हमारी मृगावती की बहिन है । मेरा इरादा अंग को जीतने का है, दधिवाहन और धारिणी को नष्ट करने का नहीं । इस समय यदि दधिवाहन मेरे कहने में चले तो हम मगध और वैशाली के इस दंभ को तोड सकते हैं । परंतु राजा कभी बिना शक्ति के नहीं झुकते । छोटा-सा राज्य है । सीधे जाकर राजधानी पर हम आक्रमण नहीं करेंगे । सीमाप्रांत पर लोगों को डरायेंगे । अंग समर्पण करेगा । न करेगा तो करेगा क्या ? ऐसा तो हो नहीं सकता कि वह युद्ध में हमसे जीत ले । ज़रा-सा झुकते ही हम अंग का शासन अपने हाथ में न लेकर दधिवाहन के ही हाथ में रखेंगे । बहनें हैं रानियाँ, और तब मगध को देखा जाएगा । यह काँटा मेरी आँखों में बहुत गड रहा है धनवाह । अवन्ति से मैं नहीं चौंकता, क्योंकि महासेन चण्डप्रद्योत वस्तुत: मूर्ख है । प्रसेनजित अपने कोसल को काशी जीतकर महाकोसल कहने लगा है और काशी को मगध को देकर उसने दोस्ती कायम कर ली है । फिर भी प्रसेनजित की मुझे चिंता नहीं । चालाक तो यह है बिंबसार । वैसे बडा मीठा है..."[2] रांगेय राघव ने अपनी सृजनात्मक कल्पना से विभिन्न स्थलों पर आवश्यक परिवर्तन के साथ उपन्यास की कथा को प्रस्तुत किया है । युद्ध के बदले में

---

1. एन.एन.घोष - प्राचीन भारत का इतिहास - पृ. 75
2. रांगेय राघव - राह न रुकी - पृ. 159-60

शाँति की स्थापना करना ही उपन्यासकार का लक्ष्य है । इसके उपयुक्त ऐतिहासिक तथ्यों और काल्पनिक घटनाओं को ही उपन्यास में स्थान दिया गया है ।

कालखंड का संदर्भ

ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास के किसी विशिष्ट काल-खंड पर आधारित होता है । इतिहास की तिथियाँ तथा वंशावलियाँ तब तक सजीवता प्रदान नहीं करती, जब तक उसमें कालविशेष का पूर्ण समायोजन न किया जाय । इसीलिए उपन्यासकार को अतीत के विशेष कालखंड का विशिष्ट अध्ययन करना ज़रूरी हो जाता है । अन्यथा वह पाठक को अतीत में विचरने की अनुभूति कराने में असफल हो जाता है । यही कारण है कि ऐतिहासिक उपन्यास की कल्पना युगीन परिस्थितियों के अनुकूल मिलती है और वह किसी युग विशेष की होती है ।

रांगेय राघव का "मुर्दों का टीला" प्रागैतिहासिक काल पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास है । इसमें 3500 ई.पूर्व के सिन्धुघाटी सभ्यता की काल्पनिक कहानी को प्रस्तुत किया गया है । "सिंधुनद के तीर पर आज से सहस्रों वर्ष पहले मोअन-जो-दडो व्यापार का एक बहुत बडा सुसभ्य केन्द्र था । उस समय सुदूर पश्चिम में मिश्र, उत्तर-पश्चिम में एलाम और सुमेरु, क्रीट में माइनोन सभ्यता, तथा उत्तर में हडप्पा थे ।"[1] उपन्यासकार ने

---

1. रांगेय राघव - मुर्दों का टीला - भूमिका

इन सभ्यताओं को मोअन-जो-दडो के समकालीन ठहराया है । उपन्यास में मोअन-जो-दडो के श्रेष्ठि मणिबंध के व्यापारिक संबंधों का भी वर्णन किया गया है -"यह महाश्रेष्ठि मणिबंध के पोत हैं । वे अभी हा-पी से व्यापार करके लौटे हैं । इन पोतों में रत्नों के ढेर हैं । यह किसी साधारण व्यक्ति की संपत्ति नहीं । जब इनका सार्थ चला था तो एक बार मिश्र के महासंपत्ति-शालियों ने असंख्य ऊँटों को देखकर दाँतों में उँगलियाँ दबा ली थीं ।"[1] उपन्यासकार ने फराऊन से मणिबंध का व्यापारिक संबंध स्थापित किया है - "फराऊन की वह कठोर मुखमुद्रा भी उसके रत्नों को देखकर एक बार विचलित हो गई थी..... उसने मणिबंध से याचना की थी । जिसका शब्द आज्ञा थी, जिसका मौन भयानक से भयानक कठोर कारावास से भी अधिक भयंकर था उसने कहा था -"मणिबंध ! हम तुमसे प्रसन्न हैं ।"[2] इस प्रकार उपन्यासकार ने एक प्रागैतिहासिक कालखंड का परिचय दिया है । उन्होंने इस कालखंड को अपने ढंग से आन्तरिक एवं बहिरंग विकास दिखाकर प्रस्तुत किया है -"पथ पर गोरखरों के टापों की प्रबल प्रतिध्वनि गूँज उठी । भीड अपने आप एक किनारे हो गई । भिखारी गंभीर हो गया । समस्त समुदाय का ध्यान उसकी ओर से हटकर उस ओर हो गया । दूसरे रथ में मिश्र के ऊँचे-ऊँचे धातु के शिरस्त्राण पहने चपटी दाढी वाले दो व्यापारी खडे होकर नगाम खींचे हुए थे । गोरखर सरपट भाग रहे थे । राह पर से लोग अपने आप इधर-उधर भाग रहे थे । कितने चमकीले थे वह रथ । दर्शक की आँखों में विस्मय काँप रहा था । काले दासों की एक भीड पीछे पीछे भाग रही थी । जैसे वे सब बैल थे । जब थक जाते तो दम तोडने से श्वास खींचने में हाँफने से लगते थे और उसके बाद फिर उसी प्रकार दौडने लगते थे ।"[3] ये सब वर्णन पाठक को

---

1. रांगेय राघव - मुर्दों का टीला - पृ. 9
2. वही - पृ. 3
3. वही - पृ. 11

अतीत युग में विचरण करने के लिए बाध्य कर देता है । अत: पाठकों के विश्वासोपार्जन और उपन्यास को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए "मुर्दों का टीला" में कालखंड का अनुकूल चित्रण किया गया है ।

"अंधेरे के जुगनू" में महाजनपद से भी पुराने समय का चित्रण किया गया है । "मुर्दों का टीला" की काल-गणना के समान इस उपन्यास के काल निर्णय पर भी ऐतिहासिक तिथियाँ नहीं के बराबर हैं । क्योंकि इतिहास में इस कालखंड को अंधकार युग कहा गया है । रांगेय राघव ने लिखा है कि "मेरे मतानुसार महाभारत युद्ध 1500 ई.पू. से 2000 ई.पू. के बीच कभी हुआ । बुद्ध का समय लगभग 600 ई.पू. का है । इस उपन्यास में मैं ने पाणिनी सूत्रकार के हिसाब से समय निकाला है । वह समय बुद्ध से 100 बरस पहले हुआ । यह काल महाभारत के सात सौ या आठ सौ वर्ष बाद बुद्ध से चार या पाँच सौ साल पहले का चित्रण है ।"[1] महाजनपद युग के पहले तीन बार गण की स्थापना करने के व्यापक प्रयत्न हुए, किन्तु तीनों बार ये प्रयत्न असफल हो गए । रांगेय राघव ने अंधेरे के जुगनू में इस ऐतिहासिक कालखंड का वर्णन किया है । उपन्यास में अमात्य प्रावृट सनगा से कहता है -"आभीर स्त्रियों और बालकों की निरीह हत्या कर रहे हैं । महानगर गया, राज्य गया, गण की आशा गई । जाने दो । पुरुवंशी सौवीरों पर सर्वनाश छाया हुआ है तो मैं क्या करूँ ? वयोवृद्ध आर्य सुहागे कहा करते थे कि सौवीरों में पहले सब समान थे । किन्तु आर्य जनमेजय के नागयज्ञ के बाद शिरीषक वंशीय नाग शिखण्ड ने सौवीरों को पराजित करके अपना कुलराज्य चलाया । उसे समाप्त करके सौवीरों ने गण स्थापित किया ; किन्तु शूद्रक कुल ने एक कुल

---

1. रांगेय राघव - अंधेरे के जुगनू - भूमिका

राज्य स्थापित किया । समय आया था फिर गण राज्य स्थापित होता किन्तु सौवीरों को आभीरों ने कुचल दिया ।"[1] इसप्रकार "अंधेरे के जुगनू" में एक विशिष्ट ऐतिहासिक कालखंड का चित्रण किया गया है । इसमें ब्राह्मण-क्षत्रिय संघर्ष, वर्ण-व्यवस्था, दासप्रथा आदि को भी साकार करके तत्कालीन वातावरण को जीवन्त बनाया गया है ।

"चीवर" हर्षकालीन भारतीय इतिहास पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास है । स्थानीश्वर में छठी शताब्दी के अन्त में प्रभाकरवर्द्धन का राज्य था । इस समय हूणों के आक्रमण हुए । उनका पुत्र राज्यवर्द्धन 604 ई. में हूणों के आक्रमण रोकने के लिए गया । रांगेय राघव ने "चीवर" में इसका वर्णन किया है -"हूणों की अंतिम शक्ति कभी-कभी प्रजा के असंतोष को ढँक देती थी । मिहिरगुल के उपरांत शक्ति क्षीण हो चुकी थी, वह इस समय उत्तर-पश्चिम से कुछ नए हूणों के आ जाने से फिर सिर उठाने लगी थी । प्रभाकरवर्द्धन ने अपने पुत्र राज्यवर्द्धन को उनसे युद्ध करने को भेज दिया था ।"[2] इसी बीच भयंकर रोग से 605 ई. में प्रभाकरवर्द्धन का देहांत हो गया - "घर कुछ स्वस्थ हुआ । उसने कहा : देव ! स्थाणीश्वर के महाराज प्रभाकरवर्द्धन का स्वर्गवास हो गया....."[3] गृहवर्मा की हत्या करके देवगुप्त ने राज्यश्री को उठा लिया । देवगुप्त के साथ युद्ध में गौडाधिपति शशांक ने छल से राज्यवर्धन की हत्या कर दी -"देव ! कुन्तल ने कहा, "जिस समय महाराजाधिराज राज्यवर्द्धन ने मालवराज देवगुप्त का वध किया, नितान्त क्रूरता से गौडराज

---

1. रांगेय राघव - अंधेरे के जुगनू - पृ. 34
2. वही - चीवर - पृ. 15
3. वही - पृ. 41

शशांक नरेन्द्रगुप्त ने छल से महाराजाधिराज की हत्या कर दी ।"[1] फिर 606 ई. में हर्षवर्द्धन को राज्य स्वीकार करना पड़ा । इस ऐतिहासिक कालखंड को रांगेय राघव ने उपन्यास में चित्रित किया है ।

सातवीं शताब्दी ई.पू. से चौथी सदी ई.पू. तक भारत में बौद्ध और जैन धर्म का बोलबाला रहा । इस युग को बौद्धकाल की संज्ञा दी जा सकती है । जैन और बौद्ध धर्म के प्रवर्तक वर्धमान महावीर और गौतम बुद्ध के समय में धार्मिक साहित्य के साथ ही धर्मेतर विषयों की रचना भी हुई थी । इनके अध्ययन से तत्कालीन इतिहास का पता चलता है । बौद्ध काल में भारत 16 जनपदों में विभक्त था । इनमें कुछ शक्तिशाली जनपद थे उज्जयिनी, मगध, वैशाली, कौशल, वत्स, अवन्ति आदि । "पथी और आकाश" का काल संदर्भ इन्हीं बातों से संबंधित है - चण्डप्रद्योत, बिंबसार, शतानिक आदि ऐतिहासिक नरेशों के शासन काल, बुद्ध और महावीर के व्यापक प्रभाव का काल आदि । उपन्यास का काल्पनिक पात्र धनकुमार संयोग से चण्डप्रद्योत का अमात्य बन जाता है । चण्डप्रद्योत उससे कहता है -"वह मूर्ख । अम्बपाली के पीछे, अभी तक डोल रहा है, बूढ़िया हो गई । जानते हो कौन ? बिंबसार । वैशाली से संबंध जोड़ने नगरवधू से टकराया था ।"[2] उज्जयिनी से पलायन करके धनकुमार मगध में आता है -"अंत में मैं राजगृह जा पहुँचा । यह थी मगध की भूमि । वही मगध जिसमें जरासंध था, जिसकी राजधानी गिरिव्रज के बाहर रखे मनुष्य की खाल के नगाड़े की चर्चा आज तक ग्रामीण किया करते हैं ।"[3] बिंबसार ने धनकुमार को जामाता बनाया है -"मुझे पता

---

1. रांगेय राघव - चीवर - पृ. 68
2. रांगेय राघव - पक्षी और आकाश - पृ. 96
3. वही - पृ. 122

भी न चला कि उस व्यक्ति ने मुझे कैसा बांध दिया..... बिंबसार के सामने चण्डप्रद्योत सचमुच बच्चा था । उधर जैनों में बिंबसार की जयजयकार हो रही है, उधर बौद्धों में । वज्जियों से पूछे तो बिंबसार भला । कोसलवालों से पूछो तो वह देवता ।"[1] इसप्रकार रांगेय राघव ने "पक्षी और आकाश" में एक विशेष ऐतिहासिक कालखंड को जीवन्त बनाया गया है । जहाँ उनके काल्पनिक पात्र भी ऐतिहासिक व्यक्ति का सा आभास देते हैं । उपन्यास में बुद्ध और महावीर को सजीवित व्यक्तियों के रूप में उतारा गया है ।

"राह न रुकी" उपन्यास की काल-गणना लगभग 500 ई.पू. है । रांगेय राघव ने उपन्यास की भूमिका में लिखा है कि "इसमें मैं ने बुद्ध-महावीर युग के उस पुनर्जागरण को प्रस्तुत किया है, जो हजारों साल के वैदिक युग के अंत में भारत में उपस्थित हुआ था । यह बात कितनी महत्व-भरी है कि आज हम एक नए पुनर्जागरण में हैं ।"[2] उपन्यास में महावीर वर्धमान चन्दनबाला से भिक्षा स्वीकार करने का वर्णन किया गया है - "चन्दनबाला राजपथ की ओर वाले भोंयरे के द्वार पर खड़ी है । उसका एक पाँव भीतर है, एक बाहर है । फटे और मैले कपड़ों में उसका वक्ष और शरीर झांक रहा है । आँखों में आँसू हैं, किन्तु होठों पर प्रशांत मुस्कान है और सामने असीम करुणा लिए खड़े हैं वर्धमान महावीर । भिक्षा ले रहे हैं श्रमण । दिगंबर । हड्डी-हड्डी निकल रही है । सड़क पर लोग चिल्ला रहे हैं, श्रमण ने पन्द्रह दिन का उपवास तोड़ा है, यह लड़की धन्य है जिससे इस तपस्वी ने भिक्षा ली है ।"[3] उपन्यास में दधिवाहन और शतानिक का संघर्ष, बिंबसार का राजनीतिक चाल आदि ने भी तत्कालीन ऐतिहासिक कालखंड को साकार किया है ।

---

1. रांगेय राघव - पक्षी और आकाश - पृ. 147
2. रांगेय राघव - राह न रुकी - भूमिका
3. वही - पृ. 167-68

ऐतिहासिक व्यक्ति बनाम पात्र

इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों का जीवन सबको प्रभावित करता है । अत: ऐतिहासिक उपन्यासों में इन व्यक्तियों की परिकल्पना होती है । कारण यह है कि इन व्यक्तियों ने इतिहास में राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परिस्थितियों के विपरीत अपने युग का निर्माण किया होगा । ये इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति पात्र बन कर उपन्यास को सजीवता प्रदान करते हैं । एक ओर उनका इतिहास सम्मत स्वरूप है और दूसरी तरफ उपन्यासकार द्वारा परिकल्पित काल्पनिक स्वरूप है । इसका द्वन्द्व ऐतिहासिक उपन्यासों में दिखाया जाता है । ऐतिहासिक, उपन्यासकार का दायित्व यह है कि अपने ऐतिहासिक पात्रों को ऐतिहासिक प्रतीक बनने से बचा लें । ऐतिहासिक व्यक्तियों के गुणों की रक्षा करते हुए भी वह अपने सृजनात्मक कल्पना से उन्हें उपन्यास का पात्र बनाता है ।

ऐतिहासिक उपन्यासों में उपन्यासकार जाने माने ऐतिहासिक व्यक्तियों के साथ सामान्य जन-जीवन को जोडता है । ऐतिहासिक उपन्यासकार का अपना जीवन-दर्शन है । वह अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनुकूल ऐतिहासिक व्यक्तियों, घटनाओं और अन्य स्थितियों का चयन करता है । इसकी सफलता के लिए उपन्यास में वह काल्पनिक पात्रों और घटनाओं का भी समावेश करता है जिन्हें वह ऐतिहासिक व्यक्तियों और घटनाओं के साथ जोडता है । ऐतिहासिक व्यक्तियों और घटनाओं में वह अपनी दृष्टि और विचारधारा का आरोप करता है । इसीलिए एक ही ऐतिहासिक व्यक्ति भिन्न-भिन्न उपन्यासों में भिन्न भिन्न भूमिकाओं में प्रस्तुत हो सकता है । इतिहास प्रसिद्ध पात्रों के साथ काल्पनिक-पात्र इतनी

बारीकी से जुड जाते हैं कि इन्हें अलग करना कठिन हो जाता है । कभी-कभी काल्पनिक पात्र इतिहास सम्मत पात्र से अधिक जीवन्त और गत्यात्मक नज़र आ सकते हैं । यह पारस्परिकता उपन्यास की कलात्मकता की सूझ-बूझ से संबंधित है । वास्तविक इतिहास में कोई पात्र नहीं होता है, वह व्यक्ति है । जीवित या अनुमानित । उपन्यास में वह पात्र की भूमिका में उतरता है । तब उसके जीवन का एक अलग परिदृश्य प्राप्त होता है । उसके साथ काल्पनिक-पात्र कभी कमज़ोर नहीं नज़र आ सकते । दोनों एक साथ चलते या अलग होते अपने अस्तित्व के साथ उभर आते हैं ।

"मुर्दों का टीला" में रांगेय राघव ने मिश्र के कठोर शासक फराऊन को उपन्यास के पात्र के रूप में चित्रित किया है । उसने मिश्र का विख्यात पिरेमिड बनाया है । फराऊन को वहाँ के लोग देवता का अंश मानते हैं । उपन्यासकार ने "मुर्दों का टीला" में फराऊन के साथ काल्पनिक पात्र मणिबंध के व्यापारिक संबंध का वर्णन किया है -"फराऊन की वह कठोर मुखमुद्रा भी उसके रत्नों को देखकर एक बार विचलित हो गई थी । अपनी स्वर्गीया माता की ममी के लिए उन्होंने उससे वह नील छाया स्नात रत्न माँगा था,..... जिसका शब्द आज्ञा थी, जिसका मौन भयानक से भयानक कठोर कारावास से भी अधिक भयंकर था उसने कहा था - "मणिबंध ! हम तुमसे प्रसन्न हैं ।"[1] उपन्यास में स्थान-स्थान पर फराऊन का उल्लेख किया गया है । मिश्री दासी नीलूफर मणिबंध से कहती है -"मनुष्य का हृदय पहचानने के लिए उसके महत्व को देखना चाहिए । फराऊन जैसा कठोर व्यक्ति भी तो अपनी पत्नी को प्यार करता होगा ?"[2] मणिबंध

---

1. रांगेय राघव - मुर्दों का टीला - पृ.3
2. वही - पृ.4

का मिश्री उपदेशक आमेन-रा उसे फराऊन के समान निरंकुश शासक बनाना चाहता है । इसप्रकार इस ऐतिहासिक व्यक्ति से "मुर्दों का टीला" की प्रभावात्मकता बढ गया है, जिसके सहारे से काल्पनिक पात्रों को भी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रदान करने में उपन्यासकार सफल हुए है ।

"चीवर" उपन्यास में राज्यश्री, हर्षवर्धन, राज्यवर्धन, प्रभाकरवर्धन, मालवराज देवगुप्त, गौडाधिपति शशांक, मौखरी नरेश गृहवर्मा, महाकवि बाणभट्ट, ह्वान च्वांग आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों को पात्र बनाया गया है । राज्यश्री को उपन्यास में अपूर्व सुन्दरी के रूप में चित्रित किया गया है -"राज्यश्री के कपोलों पर आकर्ण एक रक्ताभा काँप उठी और उसकी स्वर्ण की सी देह यष्टि नीलम से जल पर ऐसी प्रतीत हुई जैसे रात्रि के नीरव और गंधित अंधकार में दीपशिखा ऊपर की ओर लाल होकर चंचलता से काँप उठी हो ।"[1] मदनिका, मल्लिका, फेनिला आदि काल्पनिक पात्रों को राज्यश्री की दासियों के रूप में चित्रित किया गया है । देवगुप्त को स्वार्थी, विषय-लोलुप और कुटिल राजा के रूप में चित्रित किया है । गृहवर्मा की हत्या करके वह राज्यश्री को उठा लाता है । राज्यश्री के जहाँ मदनिका से देवगुप्त का प्रणय-व्यापार रांगेय राघव की औपन्यासिक कल्पना है -"छिः छिः, मदनिका ने लजा कर कहा, क्या कहते हैं आप ? मेरा जीवन क्या अब ऐसा पवित्र रहा है ? मदनिका नाम भी क्या कुलवधुओं का होता है ? और अभी तो आपका मोह है । इसके उतर जाने पर क्या होगा ? ब्राह्मण और क्षत्रियकुल विरोध करेंगे ?"[2] कथा को विकसित करने के लिए उपन्यासकार

---

1. रांगेय राघव - चीवर - पृ. 7
2. वही - पृ. 27

ने ऐतिहासिक व्यक्तियों और घटनाओं के साथ काल्पनिक पात्रों और घटनाओं को उपन्यास में चित्रित किया है । इससे औपन्यासिकता की रक्षा हुई है और उसमें सौंदर्यात्मकता और रोचकता बढ गई हैं । "चीवर" में प्रभाकरवर्धन, राज्यवर्धन, शशांक, बाणभट्ट, ह्वान च्वांग आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों को प्रमुख स्थान नहीं दिया गया है । राज्यश्री के चरित्र पर उपन्यासकार का ध्यान अधिक केन्द्रित रह गया है । इसीलिए हर्षवर्धन का चरित्र अधिक उभर नहीं आया है । हर्षवर्धन को बहिन के दुःख में आर्द्र और व्याकुल भावुक के रूप में प्रस्तुत किया गया है । वह वीर और सहृदय भी है । अंत में राज्यश्री के समान वह भी चीवर धारण करता है याने बुद्धमत को स्वीकारता है ।

"पक्षी और आकाश" में चण्डप्रद्योत बिंबसार, जरासंध, शतानिक आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों को उपन्यास के पात्र बनाए गए हैं । उपन्यास में महावीर वर्धमान, गौतम आदि ऐतिहासिक पात्र भी हैं । उपन्यास का काल्पनिक-पात्र धनकुमार इन ऐतिहासिक पात्रों मे अधिक जीवन्त बन गया है । उपन्यास के अन्य पात्र और सारी घटनाएँ धनकुमार से जुडा रहता है -"उज्जयिनी के महाराज चण्डप्रद्योत के बारे में मैं सुन चुका था कि वे बडे क्रोधी थे । उनके पास बडी सेना थी । परन्तु देखने का अवसर आज ही आया था ।"[1] इस प्रकार उपन्यास के अन्य ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं से भी उसका संबंध जोड दिया गया है -"मैं ने प्रणाम किया । शास्ता गौतम बुद्ध ने मेरी ओर देखा । गंभीर, करुणा भरे नयन । गौर वर्ण, उन्नत ललाट सिर पर सिंघाडे जैसे बाल । चीवर में से फूटता शरीर का गोरापन । सिंह के

---

1. रांगेय राघव - पक्षी और आकाश - पृ. 6।

समान बैठे थे वे ।..... मुझे आज्ञा दें तो मैं कुछ निवेदन करूँ ।"[1] धनकुमार के निवेदन के फलस्वरूप बुद्ध ने यह आज्ञा दी कि "आज से जो स्त्री अपने पति, पुत्र, पिता से, जो दास अपने स्वामी से, जो सैनिक अपने वेतनदाता से, जो ऋणी अपने ऋणदाता से सविनय आज्ञा लेकर स्व मुक्त होकर नहीं आता, उसे प्रव्रज्या मत दो ।"[2] इसप्रकार उपन्यासकार ने ऐतिहासिक पात्रों की अपेक्षा काल्पनिक-पात्र धनकुमार को अधिक गतिशील बनाया है । उपन्यास के काल्पनिक कथानक और पात्रों को ऐतिहासिकता का आभास देने के लिए ही उपन्यासकार ने इन ऐतिहासिक व्यक्तियों को पात्र बनाए हैं ।

"राह न रुकी" में अंगनरेश दधिवाहन, कोसाम्बी नरेश शतानिक, मगध सम्राट बिम्बसार, भगवान महावीर वसुमति {चन्दनबाला} आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों को उपन्यास के पात्रों के रूप में स्वीकार किया गया है । शतानिक भरतवंशीय राजा था । चम्पा नरेश दधिवाहन की पुत्री चन्दनबाला थी । वह जैन तीर्थंकर महावीर का समकालीन थी । उपन्यास में दधिवाहन को विचारशील और शाँतिप्रिय पात्र के रूप में चित्रित किया है । वह मानवतावादी और अधिक संवेदनशील है । जब शतानिक का बर्बर आक्रमण होता है तब परिषद् के सभी सदस्य और प्रजा एक साथ युद्ध के बदले युद्ध चाहते हैं । दधिवाहन कहता है -"किन्तु हिंसा का अंत कहाँ है सभ्यगण ! पशुत्व का उत्तर क्या पशुत्व है ? शतानिक की बर्बरता क्या इस तरह कुचली जा सकती है ? अंगराज्य निर्बल नहीं है, वीरों की खान है । अंग ने पहले भी वत्स के अभिमान को खंडित किया है । वीर ही ऊँचे प्रयोग

---

1. रांगेय राघव - पक्षी और आकाश - पृ. 231
2. वही - पृ. 233

कर सकते हैं । अतः यदि हिंसा का पथ न अपनाए जाए तो ।"[1] युद्धभूमि में अकेले जाकर वह शतानिक से कहता है -"लोक में बलप्रयोग से न आज तक कभी शाँति स्थापित हुई है, न कभी होगी । याद रखो कि जब तक खड्ग का प्रयोग होता रहेगा, तब तक घृणा इस पृथ्वी पर जीवित बनी रहेगी । जिसमें निरीह प्रजा को हत्या होगी, उसमें कभी विश्वास अपनी जड नहीं जमा सकेगा ।"[2] युद्ध भूमि में दधिवाहन अपने आप मृत्यु का वरण कर लेता है । इस बीच बिंबसार अंगदेश पर कब्जा कर लेता है तो शतानिक को लौट जाना पडता है । अंत में चंदनबाला महावीर से प्रव्रज्या स्वीकार करती है । इसप्रकार उपन्यास में युद्ध और शाँति की शाश्वत समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने के लिए ही उपन्यासकार ने इन ऐतिहासिक व्यक्तियों को पात्र बनाया है । इनके साथ जीमूतवाहन, रुद्रवर्मा, नन्दक, विरजा, मंगला, सुनामा आदि काल्पनिक पात्रों को भी उपन्यास में स्थान दिया गया है । अन्य काल्पनिक घटनाओं और काल्पनिक-पात्रों से उपन्यासकार ने ऐतिहासिक पात्रों को गतिशील बनाया है ।

आचार-विचार एवं सामाजिक प्रथाएँ

ऐतिहासिक उपन्यास में मुख्यतः उस काल की विचारधारा, जीवन-पद्धति आदि का समायोजन होता है जिसके माध्यम से हम युगीन यथार्थ और अतीतकालीन इतिहास-सत्य का साक्षात्कार कर सकें । हमारी इतिहास-दृष्टि अपने सामाजिक दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करती है । ऐतिहासिक उपन्यासों में तत्कालीन समाज-व्यवस्था, रीति-रिवाज़, उत्सव-

---

1. रांगेय राघव - राह न रुकी - पृ. 122
2. वही - पृ. 146

त्योहार, वेश-भूषा, धर्म-संस्कृति और जनजीवन में व्याप्त अन्य लोक-तत्वों का अत्यंत सजीवता के साथ अंकन किया जाता है । ऐतिहासिक उपन्यासकार सजग रहकर ही इन विशिष्टताओं को रेखांकित कर सकता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में -"ऐतिहासिक उपन्यासकार को तभी ऐतिहासिक उपन्यासों में हाथ लगाना चाहिए जब तक कि उसे भिन्न-भिन्न कालों की सामाजिक स्थिति और संस्कृति का अलग-अलग विशेष रूप से अध्ययन और उस सामाजिक स्थिति के सूक्ष्म ब्यौरों की अपनी ऐतिहासिक कल्पना द्वारा उद्भावना संभव है । यहाँ सफल ऐतिहासिक तत्व प्राप्त होगा साथ ही कल्पना का प्रयोग होते हुए भी इतिहास दिखलाई देगा ।"[1] सदैव ऐतिहासिक उपन्यासकार को सचेत रहना होता है कि कोई भी घटना, रीति-रिवाज़, या प्रथाएँ ऐसी न हो जिनके आधार पर पाठक कृति पर कालदोष का आरोप लगा दें ।

रांगेय राघव ने "मुर्दों का टीला" में मोअन-जो-दडो के अज्ञात सांस्कृतिक इतिहास, प्राचीन समाज की गतिविधियाँ, शासन-प्रणाली आदि को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है । शिवदानसिंह चौहान के शब्दों में "'मुर्दों का टीला' संभवत: रांगेय राघव का अब तक का सबसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें उन्होंने मोअन-जो-दडो के समय के अज्ञात सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन की कल्पनाजन्य कहानी कही है । इस प्रागैतिहासिक कल्पना का यह हिन्दी का पहला उपन्यास है ।"[2] "मुर्दों का टीला" में वर्णित दासप्रथा का विरोध, गणतंत्र शासन के लिए आग्रह, नारी स्वतंत्रता का समर्थन, साम्राज्यवाद के प्रति घृणा, शोषितों के प्रति सहानुभूति

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ. 25।
2. शिवदानसिंह चौहान - हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष - 1954 -पृ. 170

आदि से रांगेय राघव की प्रगतिशील दृष्टि विदीर्ण है । उन्होंने तत्कालीन सामाजिक चेतना के अनुकूल उन शक्तियों को उभारा है जो जीवन विकास के लिए स्फूर्तिदायक है । मोअन-जो-दडो में गणतंत्रात्मक शासन-प्रणाली का चित्रण किया गया है । यहाँ पर दास-प्रथा के होते हुए भी जनता को अपने प्रतिनिधियों को चुनने का अधिकार था । यहाँ दास आजीवन स्वामी के संकेतों में जीता था । उसको स्वयं की न तो कोई अभिलाषा होती थी और न कोई स्वतंत्र अस्तित्व । उन्हें पति-पत्नी के रूप में जीने का कोई अधिकार नहीं था । इसप्रकार स्वार्थी और सशक्त लोग निरीह मनुष्यों को दास बनाकर उनसे पशु-जैसा व्यवहार करते थे । उपन्यास का एक प्रसंग इसप्रकार है - "मणिबंध ने दीवार पर टँगा कोडा उतार लिया और कहा - कृतघ्न । पशु । इसीलिए मैं ने तुझे खरीदा था ? इसीलिए मैं ने हेका को तेरे पास रहने दिया ? और आज तू मुझ ही से विश्वासाघात कर रहा है ?..... बता कहाँ है हेका ? बता ?.... और कोडा चटचटाकर उठता और सडाक से उसके शरीर पर वेग से आ लिपटता, जब मणिबंध उसे छुडाता तो धातु के टुकडों वाला वह गैंडे की मोटी खाल का कोडा अपाप की चमडी को उधेड देता । मणिबंध क्रोध से विक्षुब्ध हो रहा था....."[1]

चीवर हर्षकालीन सामन्ती व्यवस्था पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास है । इसमें रांगेय राघव ने सम्राट हर्षवर्धन और उसकी भगिनी राज्यश्री के जीवन की प्रमुख घटनाओं के माध्यम से तत्कालीन राजनीति, युद्धनीति, धर्म, दर्शन, कला, विलास आदि का चित्रण किया है । उपन्यास

---

1. रांगेय राघव - मुर्दो का टीला - पृ. 122

में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था पर बौद्ध धर्म के व्यापक प्रभाव को भी दिखाया गया है । जैसे कि "ढाई कोस लंबे और आधे कोस से भी अधिक चौडे नगर में सौ बौद्धमठ थे जिनमें दस सहस्र से भी अधिक महायान तथा हीनयान संप्रदायों के भिक्षु थे... अपार धन के केन्द्र बौद्ध मठों का प्रभुत्व यहाँ समृद्धि पर था ।"[1] बौद्ध धर्म ही एकमात्र धर्म था जिसे राज्याश्रय प्राप्त था । हर्षवर्द्धन ने बौद्ध धर्म का विशेष प्रचार किया है । तत्कालीन समाज में "सामंतों और प्रजा के पारस्परिक संबंधों में मिठास नहीं थी । अभी तक सामंत जो विदेशियों से रक्षा करते थे, अब विदेशियों की शक्ति के क्षीण होने पर परस्पर स्त्री, धन और भूमि के लिए लडने लगे थे, जिसके फलस्वरूप प्रजा को अत्यंत कष्ट होता था ।"[2] हर्षवर्धन के सम्राट होने से सामाजिक अस्थिरता दूर होती है और मर्यादा का पुन:स्थापन होता है । उपन्यास में वसन्तोत्सव का वर्णन किया गया है -"कामपूजा का आयोजन पूर्ण हो चुका था । कामदेव की अत्यंत सुन्दर मूर्ति के सम्मुख युवतियाँ नृत्य करने लगी थीं ।"[3]

"अंधेरे के जुगनू" में महाकाव्यकाल के अंत में उत्पन्न ब्राह्मण-क्षत्रिय संघर्ष को चित्रित किया गया है । इस काल में संघशासन प्रणाली और एकतंत्र शासन प्रणाली के रक्षार्थ जनसमाज में बहुत अधिक हलचल उत्पन्न हो गया था । उपन्यास में रांगेय राघव ने यह दिखाया है कि दास-प्रथा की रक्षा हेतु कुलीन वर्णों ने एकतंत्र हटाकर गणतंत्र स्थापित किया । इसप्रकार तत्कालीन युग में राजनीतिक एकता का अभाव था । समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य,

---

1. रांगेय राघव - चीवर - पृ. 12-13
2. वही - पृ. 15
3. वही - पृ. 40

शूद्र जैसे चार वर्ण थे । दास-प्रथा का प्रचलन था । "उपन्यास की कतिपय घटनाओं की रेखाओं में रांगेय राघव ने अपनी अद्वितीय कल्पना एवं सूझ-बूझ से ऐसा रंग भर दिया है कि उसमें तत्कालीन युग का समस्त धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक वातावरण सजीव हो उठा है । ऐतिहासिक धरातल पर निर्मित इस उपन्यास के कलेवर में सामाजिक गतिविधियों के स्पष्ट चित्र अंकित हुए हैं ।"[1] तद्युगीन समाज में जातीय-संकीर्णता प्रबल थी । उपन्यास में तत्संबंधी एक प्रकरण इसप्रकार है -"फिर यह क्षत्रिय । रह जाएगा यह जीवित ही । सनगा ने दोनों हाथों से खड्ग उठा कर प्रहार किया और शोण की ग्रीवा कट कर लटक गई । सनगा ने खड्ग फेंक दिया....और उसने बीभत्स स्वर से कहा - तुम । ब्राह्मणी पर शासन नहीं कर सकोगे । वह ब्रह्मा की संतान है । मैं अज्ञात कुलशीला बन कर रह सकती हूँ । परन्तु मैं कुलांगार नहीं...."[2] शोण सनगा के प्रेमी था । वह उसके साथ विवाह के पहले रही । किन्तु अज्ञात कुलशीला सनगा को जब पता चलती है कि वह प्रावृट की जारजा पुत्री है याने ब्राह्मणी है तब वह शोण की हत्या करती है ।

"पक्षी और आकाश" में रांगेय राघव ने समाजवादी दृष्टिकोण से तत्कालीन परिस्थितियों को व्याख्या करने का प्रयास किया है । श्रेष्ठियों का प्रभाव, राजाओं का आतंक, बहुविवाह, किसानों की ईमानदारी तथा वन में चोरी का भय आदि को कल्पना के सहारे प्रस्तुत करके तत्कालीन समाज को प्रक्षेपित किया गया है । उपन्यास में संपूर्ण सामाजिक संबंध बनते-बिगडते एक नए परिप्रेक्ष्य में दिखाया गया है । रांगेय राघव ने इसमें

---

1. दुर्गेश नन्दिनी प्रसाद - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में पुरुष पात्र - पृ. 180
2. रांगेय राघव - अंधेरे के जुगनू - पृ. 27।

शिथिल समाज के विभिन्न पहलुओं और उनकी मान्यताओं पर प्रकाश डाला है । गणतंत्रात्मक शासन-प्रणाली के उभय पक्षों पर उपन्यासकार ने गंभीर चिंतन किया है । क्षत्रियों ने गण-राज्य के माध्यम से अपनी शक्ति को बढाने और ब्राह्मणों की शक्ति को घटाने का प्रयास किया है । इसीलिए जातिवाद को प्रश्रय मिला और प्रत्येक जाति अपने सीमित स्वार्थों में उलझ गई । उपन्यास में बिम्बसार धनकुमार से कहता है - "वैश्य वज्जिय क्षत्रियों से संतुष्ट नहीं है । गणराज्य में वैश्यों और क्षत्रियों के बराबर अधिकार नहीं है, क्योंकि शासन में वैश्यों का कोई हाथ नहीं है ।"[1] इसप्रकार उपन्यासकार ने "पक्षी और आकाश" में गणतंत्रात्मक शासन-प्रणाली के व्यावहारिक पक्ष को उभारा है ।

"राह न रुकी" में रांगेय राघव ने मनुष्य की कुछ मूलभूत समस्याओं की ओर दृष्टि डाली है । जैसे कि हिंसा, घृणा, विरोध, असंतोष, सामाजिक वैषम्य आदि । आदिकाल से अब तक ये चली आ रही हैं । हर युग में इन समस्याओं के हल करने का प्रयास किया गया था । किन्तु प्रयास के साथ साथ वे जटिल से जटिलतर होती गई । मनुष्य हिंसा का अवसान हिंसा में देखना चाहता है । जिस समय अंग देश पर वत्स शासक शतानिक ने आक्रमण किया, उस समय परिषद में एकस्वर से गूँज उठता है कि "युद्ध । युद्ध का बदला युद्ध । हत्या का बदला हत्या । ध्वंस का बदला विध्वंस । नाश का बदला सर्वनाश ।"[2] इसी मानसिक धरातल पर हज़ारों वर्ष बाद आज का वैज्ञानिक सुसभ्य संसार भी चल रहा है ।

---

1. रांगेय राघव - पक्षी और आकाश - पृ. 153
2. रांगेय राघव - राह न रुकी - पृ. 99

ऐतिहासिकता की वांछित दिशाएँ

ऐतिहासिक उपन्यास की ऐतिहासिकता मात्र बाहरी उपादान नहीं है । वह आन्तरिक भी है । अर्थात् ऐतिहासिकता उसकी समग्रता है । उपन्यास को ऐतिहासिक बनानेवाली वस्तु यही समग्रता है । इसके लिए उपन्यासकार कभी सामान्य बातों और कभी गंभीर बातों पर ध्यान देता है । इन सबके बावजूद उपन्यासकार का लक्ष्य भी उसमें प्रकट होता है । त्रिभुवन सिंह के शब्दों में "ऐतिहासिक उपन्यास की रचना साभिप्राय होती है । इसके द्वारा साहित्यकार को ऐसे चरित्रों का निर्माण करना पड़ता है जो कि वर्तमान समाज को प्रेरणा प्रदान कर सके । वह उस काल की परिस्थितियों को इसप्रकार उभार कर सजीव रूप में रखना चाहता है कि परिणामों के आधार पर हम वर्तमान समाज को उसके दोषों तथा दुर्बलताओं से बचा सकें ।"[1] इसीलिए ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रों का चयन उपन्यासकार के विशेष उद्देश्य से प्रेरित है । वह अपनी सृजनात्मक प्रतिभा के द्वारा इन पक्षों को सही संदर्भों में प्रस्तुत करता है ।

ऐतिहासिक उपन्यासकार अपनी भाषा-शैली से अतीत के रंग-रूप को उतारने में समर्थ होता है । अप्रचलित, असाधारण शब्दावली से ऐतिहासिक वातावरण का सृजन भी करता है । पात्रों के प्राचीन नामों, उनके शिष्टाचार आदि के प्राचीन संबोधनों, वस्तुओं, जातियों, नगरों तथा देशों के प्राचीन नामों आदि से विगत युगों के वातावरण को साकार किया

---

1. त्रिभुवन सिंह - हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग - पृ. 118

जाता है । आँचलिक यथार्थता से वातावरण को और वास्तविक बनाने के लिए, क्षेत्रीय भाषा का भी प्रयोग किया जाता है । इसप्रकार ऐतिहासिक उपन्यास में सृजित वातावरण एवं घटनाक्रम औपन्यासिक कल्पना से विच्छिन्न नहीं है । उपन्यासकार ऐतिहासिक संदर्भों में इतिहासकार की भाँति निरपेक्ष नहीं होता है । पाठकों की सहानुभूति अर्जित करके उनकी संवेदनाओं को उभारना और भावनाओं को परिष्कार करना ही उपन्यासकार का चरम लक्ष्य है । यह ऐतिहासिक उपन्यासकार की सबसे बड़ी उपलब्धि है ।

ऐतिहासिक उपन्यासों में कथानक का गठन, घटना-पात्रों की अन्विति आदि में लेखक की स्वतंत्रता अत्यंत महत्वपूर्ण है । यहाँ उपन्यासकार की मौलिक प्रतिभा कार्य-कारण संबंधों से जुड़कर कथा-रस उत्पन्न कराती है । उनकी सृजनात्मक प्रतिभा यहाँ खरा उतरती है । इस दृष्टि से "मुर्दों का टीला" मोअन-जो-दड़ो के वैभव, विलास, संघर्ष तथा विनाश पर आधारित रांगेय राघव का सफल ऐतिहासिक उपन्यास है । उन्होंने सृजनात्मक कल्पना के बल पर उपन्यास का कथानक, घटना, पात्र आदि का निर्माण किया है । "मुर्दों का टीला" के प्रारंभ में उपन्यास का नायक मणिबंध मिश्र से व्यापार करके अपार संपत्ति लिए मोअन-जो-दड़ो में लौट आता है । कूट राजनीति के मर्मज्ञ वृद्ध आमेन-रा मणिबंध के मित्र एवं उपदेष्टा है जो मिश्रवासी है । नीलूफर मणिबंध की क्रीत-दासी है जिसे उन्होंने मिश्र से खरीदा है । वह अपने अपार सौंदर्य और यौवन की मादकता से मणिबंध को पराजित करती हैं । विलासी मणिबंध उसे स्वामिनी बनाता है । दैत्य-समान शरीरवाला हब्शी दास उसका विश्वास पात्र है । नीलूफर की सहेली एवं दासी हेका ने अपने यौवन अपाप को समर्पित किया । दासियों और दासों पर श्रेष्ठियों और

सामन्तों का पूर्ण अधिकार था । इसीलिए उपन्यास में नीलूफर जैसी अपूर्व रूपसी नारियाँ मणिबंध जैसे श्रेष्ठियों की विलासिता की पुतली बन कर जीवन भर नारी-सम्मान से वंचित रहती है ।

गायक विल्लिभित्तुर और वेणी कोकट देश के वासी और द्रविड हैं । कोकटाधिपति की कामुकता एवं वक्र-दृष्टि से वेणी को बचाकर गायक उसे मोअन-जो-दडो ले आया है । जीवन-निर्वाह के लिए उनके पास कुछ नहीं था । उनका मिलन एक भिखारी से होता है जो मोअन-जो-दडो के पुराना श्रेष्ठी था । उसका नाम विश्वजीत था जो मिश्र से व्यापार करके लौटते वक्त उसका पोत समुद्र में डूब गया । अपार संपत्ति के साथ अपनी पत्नी और इकलौता बेटा नष्ट होने से वह पागल बन जाता है । अब भी मोअन-जो-दडो के नागरिक उसकी विलासिता की याद करते हैं -"श्रेष्ठी विश्वजीत अब वृद्ध हो गए हैं । यौवन में वे क्या थे यह कौन नहीं जानता । हम तो जीवन भर में भी उतना मानसिक व्यभिचार नहीं कर सकेंगे जो इन्होंने अपने यौवन की एक रात में शारीरिक रूप से किया होगा ।"[1] भिखारी अपने पतन का कारण विगत की विलासिता और दैवी-प्रकोप मानता है । इसीलिए वह आगे की पीढी को चेतावनी देते हुए इधर-उधर घूमता है । कभी गालियाँ देता है तो कभी भविष्यवाणी । किन्तु उसके पागलपन पर किसी ने कान नहीं दिया । विलासिता ज़ारी रही - "महानगर की अनेक सुन्दरियों का यौवन उच्छृंखल हो उठा था । उन्नत कुचकशों पर विभिन्न रंगों के वस्त्र बंधे थे । उनकी कटी पर झनझनाती मेखला बंधी थी । शिर के जूडे ऊपर की ओर उठाकर

---

1. रांगेय राघव - मुर्दो का टीला - पृ. 12

बाँधे गए थे । कानों में लटकते मुक्ता के गुच्छे उनके प्रत्येक पग पर झूमने लगते थे । उनके बड़े-बड़े नयनों में कितना उन्माद था, कितनी विमुग्ध छलना थी इसे महानगर की विराट अट्टालिकाएँ भी पढ़ सकने में असमर्थ थीं ।"[1]

भूख की विवशता ने वेणी को नर्तकी बना दिया । गायक मधुर स्वर में गाते थे । वेणी की यौवन की मादकता और गायक की गाना सुनकर भीड़ जमी तो खूब पैसे मिले । राजवीथि पर मणिबंध ने वेणी का नृत्य देखा और उस पर आकृष्ट हुए । उसने वेणी को सम्मान दिया और महास्नानागार में जलक्रीडा के लिए दोनों को आमंत्रित किया । गायक स्त्री को बाँधने के पक्ष में नहीं उसे स्वतंत्रता देने की पक्ष में है । इसीलिए मणिबंध के साथ जलक्रीडा करने के लिए वह वेणी को अनुमति देता है । किन्तु विश्वजीत उसे सचेत करता है -"गायक ! एक दिन इसी कुंड में महाश्रेष्ठि भी दम घुटकर मर गया होता । इसमें पुरुष नहीं, मगरमच्छ है, इसमें स्त्रियाँ नहीं, केवल काई की एक मोटी पर्त है, जिस पर कोई फिसलने से नहीं बच सकता और जब पुरुष डूब जाता है वह ऊपर से ऐसे जुड़ जाती है, जैसे कभी भी उसमें कोई संधी नहीं पड़ी और वह सदा से ऐसी ही स्निग्ध, एकरस और मनोहारिणी है ।"[2]

मणिबंध वेणी को संपत्ति और विलासिता का लालच देता है । नारी-सहज स्वार्थता से अभिभूत होकर वेणी उसके जाल में फँस कर गायक के पवित्र प्रेम को झुठलाती है । अपनी जगह दूसरी स्त्री का आगमन

---

1. रांगेय राघव - मुर्दों का टीला - पृ. 18
2. वही - पृ. 22

नीलूफर में जलन पैदा करती है । वह कह उठती है -"कौन-सा है वह स्वतंत्र प्रेम जो अपनी वासना की उच्छृंखलता में दूसरों के सुखी जीवन में आग लगाता फिरे ।"[1] वेणी से स्पर्द्धा करते हुए वह मणिबंध को भी धिकारती है । इसीलिए वह गायक के पास चली जाती है और प्यार की भीख मांगती है । जब गायक इनकार करता है तो वह उसकी हत्या करना चाहती है । वेणी को अपनाने के लिए मणिबंध भी गायक को मिटाना चाहता है । नीलूफर के विद्रोह को वह गौण मानता है । गायक की हत्या करने के लिए वह वेणी को भेजता है । यह उसकी कूट-नीति है । याने वह स्वयं गायक की हत्या करें तो शायद वेणी उससे खीझ सकती है । नीलूफर गायक को मृत्यु-दंड देने की उद्देश्य से उसे नदी तट पर बुलाती है । षड्यंत्र से अनजान गायक वहाँ उसकी प्रतीक्षा करता है । तब वेणी वहाँ पहुँचती है और अपने पुराने प्रेमी को फँसाकर उसने हत्या करने की कोशिश की । अचानक नीलूफर और हेका वहाँ पहुँचकर गायक की रक्षा करती हैं । वेणी मणिबंध के पास जान बचाकर लौटती है ।

वेणी को अपमानित करने की वजह से मणिबंध नीलूफर पर क्रुद्ध हो जाता है । उसकी हत्या करने के लिए प्रहरियों को निर्देश देता है । नीलूफर भाग्य से बाल बाल बच निकलती है । वह गायक के पास पहुँचती है । मणिबंध की दृष्टि में वह अब नहीं रही है ।

मोअन-जो-दड़ो में गणतंत्र शासन के बदले में साम्राज्य की स्थापना करने के लिए ओमन-रा मणिबंध को उकसाता है । सेना इकट्ठा

---

1. रांगेय राघव - मुर्दों का टीला - पृ. 49

करके वह जनता पर निरंकुश शासन चलाता है । इसके विरुद्ध पागल विश्वजीत जनता को जगाता है । गायक और नीलूफर भी विद्रोही बन जाते हैं । सामान्य नागरिकों के साथ निम्न वर्ग के दास-दासियाँ भी विद्रोह में शामिल हैं । सशस्त्र सैनिकों ने विद्रोहियों की निष्करुण हत्या की । जनता ने कटी टक्कर ली । घोर संघर्ष और भीषण नरसंहार हुए । नीलूफर और गायक को आत्म-बलिदान हो गए । सारी जनता को कुचला दिया गया ।

मनुष्य के इस अत्याचार में दैवी-प्रकोप के रूप में प्राकृतिक-विक्षोप होता है । जैसे भूस्खलन, तूफान और भारी वर्षा होती हैं । इस भीषणता में वेणी की मृत्यु होती है । विश्वजीत मणिबंध से प्रतिशोध लेने के लिए उसके महल में जाता है । वहाँ उसको रहस्य का पता चलता है कि मणिबंध उसका बेटा है जिसे उसने समुद्र में खोया था । मछुआरों से उसकी रक्षा हुई थी । पितृसहज अनुभूति से विह्वल होकर वह मणिबंध की हत्या नहीं कर सकता है । अन्तर्द्वन्द्व से अभिप्रेत होकर वह लौट जाता है । वहीं नदी तट पर मणिबंध उसकी हत्या करता है । किन्तु मृत्यु के पहले उसने मणिबंध से सारी बात बतायी । पितृ-हत्या से मणिबंध पश्चाताप विवश होकर हाहाकार करता है । प्राकृतिक विक्षोप में संपूर्ण पृथ्वी दब जाती है । प्रलय की गंभीर लपेटों में मणिबंध निगल गया । मोअन-जो-दडो का संपूर्ण नाश होती है । मोअन-जो-दडो के पतन की निर्मम गाथा ही इसमें प्रस्तुत की गई है । "मुर्दों का टीला" में ऐतिहासिक तथ्यों को कल्पना के आधार पर जीवन्त बना दिया गया है ।

रांगेय राघव का "चोवर" बौद्धकालीन वातावरण में लिखा गया ऐतिहासिक उपन्यास है । उपन्यास का सबसे आकर्षक बिन्दु राज्यश्री है जिसने अपने जीवन में वैभव, वेदना और वैराग्य की सीमा को देखा है । वर्द्धन वंश के महाराज प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु गंभीर रोग से होती है । इस समय उनका पुत्र राज्यवर्द्धन हूणों का आक्रमण रोकने के लिए गया हुआ था । निरंतर युद्ध करते वह ऊब चुका था । इसी दौर में वह शासन से दूर रहना चाहता है । उसका भाई हर्षवर्द्धन अधिकारमोही नहीं था । इसीलिए परंपरा के अनुसार बडे भाई के पट्टाभिषेक के लिए उसने ज़ोर दिया । अंत में मज़बूर होकर राज्यवर्द्धन को राज्य-शासन स्वीकारना पड़ा ।

राज्यवर्द्धन और हर्षवर्द्धन की भगिनी राज्यश्री अत्यंत रूपसी नारी है । उसका पति मौखरी वंश का गृहवर्मा है । उसका जीवन राजकीय-विलासिता और आमोद-प्रमोद में बीतता है । इस बीच मालवराज्य देवगुप्त राज्यश्री के सौंदर्य पर मोहित होता है । वह अत्यंत विलासी राजा है । जब गृहवर्मा के राज्य में मदनोत्सव हो रहा था तब देवगुप्त छद्म-वेश में वहाँ पहुँचता है । वह छल से गृहवर्मा की हत्या करके राज्यश्री को बंदी बनाता है । इसका पता चलने पर राज्यवर्द्धन विशाल सेना लेकर देवगुप्त से युद्ध करने के लिए जाता है । गंभीर युद्ध में उसने देवगुप्त को मारा दिया । किन्तु देवगुप्त के मित्र शशांक धोखे से राज्यवर्द्धन की हत्या कर देता है ।

भाई की मृत्यु का दुःख झेलते हुए हर्षवर्द्धन को राज्य-शासन संभालना पडता है । राजा होने के बाद सबसे पहले उसने शशांक को युद्ध में हरा दिया । शशांक के भागने के कारण उसको हत्या नहीं हो सकी ।

राज्यश्री एक दासी की सहायता से बंदीगृह से भाग निकलती है । वह वन में भटकती रहती है । हर्षवर्द्धन उसे ढूँढ निकालता है । राज्यश्री की वेदना उसके हृदय को पिघल देता है । वह शपथ लेता है कि जीवन भर शादी नहीं करेगा, सुख की चाह नहीं करेगा । शासन के क्षेत्र में राज्यश्री का सलाह वह मानने लगता है । बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर राज्यश्री वैराग्य स्वीकार कर लेती है । हर्षवर्द्धन और पुलिकेशन के बीच युद्ध होने की संभावना होती है तो राज्यश्री संधी कराने का यत्न करती है । वह युद्ध के बदले में शाश्वत शाँति चाहती है । प्रत्येक वर्ष राज्यकोष से वह भारी धन दान दिलाती है । उपन्यास के अंत में हर्षवर्द्धन सर्व-संपत्ति को दान देकर बौद्धधर्म स्वीकार करता है । उपन्यास में राजनैतिक कुतंत्रों और सामन्तों के षड्यंत्रों का व्यापक ढंग से वर्णन किया गया है ।

"चीवर" का मुख्य प्रतिपाद्य जीवन में स्थायी शाँति की प्राप्ति है । भौतिक सुख की होड में मनुष्य कर्तव्य भूल बैठता है । उसकी संकुचित विचारधारा ही विश्व को अशाँति का कारण बनती है । राज्यश्री गृहवर्मा से कहती है -"यदि मनुष्य राज्य, धन और यश का लोभ न करे, यह वासना का मूल मिट जाए तो कभी संसार में युद्ध नहीं होगा ।"[1] रांगेय राघव के अनुसार स्त्री, धन और भूमि के त्रिकोणात्मक क्षेत्र में आबद्ध होकर मनुष्य विवेक खो बैठता है । "सामन्तों और राजाओं में स्त्री और भूमि के लिए ही युद्ध होते थे । स्त्रियाँ अधिकांश उन्हीं पुरुषों को पसंद करती थीं, जो उन्हें दिन दहाडे तलवार के बल पर लूट ले जाने की शक्ति रखते थे ।"[2]

---

1. रांगेय राघव - चीवर - पृ. 12
2. वही - पृ. 56

इसप्रकार उपन्यास में लेखक की स्वतंत्र कल्पना और विशिष्ट दृष्टि को अपनी भूमिका है ।

"अंधेरे के जुगनू" कल्पना-प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास है । आभीर-सौवीर संघर्ष की कहानी ही उपन्यास में वर्णित है । सभी पात्र लेखक की काल्पनिक-सृष्टि है । महाराज वह्निकेतु की मृत्यु के पश्चात् एकतंत्र शासन के बदले में अमात्य प्रावृट गणतंत्र की स्थापना करने के लिए यत्न करता है । किन्तु यह प्रयत्न असफल रह जाता है । आभीरराज भूमन्यु को निमंत्रित करके गंधकाल ने उससे मित्रता स्थापित की । सौवीर भूमि पर आक्रमण करके आभीरराज भूमन्यु वहाँ का शासक बन जाता है । वह विलासी और नारी के मांसल शरीर का प्रेमी था । उसने दासों को बढावा दिया और ब्राह्मणों को आतंकित किया ।

राज्य-शासन नष्ट होने से वह्निकेतु की पत्नि शैखावत्या और उसके दोनों पुत्र वृषकेतु और शोणकेतु वन में छिपकर रहते हैं । गंधराज ब्राह्मण विरोधी है और अपने कुल की रक्षा के लिए दासों से संघर्ष करता है । गंधराज के राजनैतिक जाल में फँसकर शोणकेतु दासों को कुचलने में सहायता देता है । इसी बात पर वृषकेतु और शोणकेतु के बीच में मतभेद होता है । दोनों परस्पर लडने को तैयार हो जाते हैं । अंत में शोणकेतु की दुर्नीति पर तंग आकर उसकी प्रेमिका सनगा के द्वारा उसे मृत्यु की खाट उतारता है ।

वास्तव में यह संघर्ष आर्य शिपिविष्ट और अमात्य प्रावृट की नीतियों का संघर्ष है । इनमें अमात्य प्रावृट का चरित्र अधिक सबल और मानवीय है । प्रावृट की पुत्री वृहद्वति पिता के आदर्शों से विपरीत होकर गण की चर्या करती है । उपन्यासकार ने वृषकेतु को उपन्यास का प्रमुख पात्र बनाया है । वृषकेतु और वृहद्वति आपस में प्रेम करते हैं । किन्तु वृहद्वति की शादी एक ब्राह्मण युवा के साथ होती है । दौर्भाग्य से जल्दी ही वह विधवा हो जाती है । वृषकेतु और आभीरराज भ्रमन्यु के बीच द्वन्द्व-युद्ध होता है । वह छल से वृषकेतु को हत्या करना चाहता है । लेकिन वृषकेतु वीरता से बच जाता है और भ्रमन्यु को पराजित करता है । उसकी हत्या करने के पहले गंधकाल बीच में आकर संधि का प्रस्ताव रखता है । कन्यादान के बहाने आभीर राजा भ्रमन्यु छल से वृषकेतु का पाणीग्रहण विधवा बृहद्वति से कराता है । किन्तु रहस्य खुलने पर बृहद्वति पागली-सी हो जाती है । वह कहती है कि "नीच क्षत्रिय ! तुम्हारे भीतर इतना विष था । नराधम क्षत्रिय होकर तुमने ब्राह्मणी पर दृष्टिपात किया । मेरा सर्वनाश हो गया ।"[1] विधवा विवाह प्रचलित होते हुए भी जाति-बंधन अधिक सबल था । वृषकेतु की निर्दोषता को पता चलने से वह शाँत होती है ।

जाति-हित की रक्षा के लिए वयोवृद्ध क्षत्रिय गंधराज ने देश की स्वतंत्रता को गौण मानते हुए विदेशी आक्रमणकारी आभीरों को निमंत्रित कर लिया था । इस रहस्य को वह वयोवृद्ध शिपिविष्ट के साथ

---

1. रांगेय राघव - अंधेरे के जुगनू - पृ. 142

उद्घाटित करता है कि "हमने आभीरों को निमंत्रित करके यहाँ के दासों और कर्मकर शूद्रों को दबाए रखने का यत्न किया था । किन्तु आभीरों ने दासों को बढावा देकर प्रजा का एक पूरा पक्ष ही अपने राज्य की दृढ नींव बना लेने का प्रयत्न किया । दासों के साहस बढे । क्षत्रियों के अधिकारों पर कुठाराघात होने की पूरी संभावना हो गई । ब्राह्मणों ने तो गण की परंपरा को ही ठीक समझा है ।"[1] तत्कालीन समाज में जाति-बंधन इतना सशक्त था कि जीवन का कोई भी मोड जाति-सीमा को पार नहीं कर सकता था । उपन्यास में रांगेय राघव ने यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया है कि दास प्रथा की रक्षा के लिए कुलीन वर्णों ने एकतंत्र हराकर गणतंत्र स्थापित किया । यहाँ उपन्यासकार ने अपनी अद्वितीय कल्पना को चरितार्थ किया है ।

रांगेय राघव का इतिहासाश्रित उपन्यास है "पक्षी और आकाश" । ऐतिहासिक आवरण में निर्मित यह वस्तुत: एक काल्पनिक कथा है । उपन्यास का नायक धनकुमार एक काल्पनिक पात्र है । वह श्रेष्ठि धनसार का बेटा है । उसके तीन भाई हैं । परिवार में धनकुमार की विलक्षणता और पिता का उसपर विशेष प्रेम होने के कारण भाईयों में ईर्ष्या होती है । वे उसे ज़हर देकर मार डालना चाहते हैं । व्यापारिक क्षेत्र में धनकुमार को अपूर्व सफलता मिलती है । किन्तु वह स्वयं अनुभव करता है कि "व्यापार चतुर व्यक्ति का कौशल है । व्यापार में स्नेह संकुचित होता है । यहाँ संबंधों को स्वर्ण से नापा जाता है । स्वर्ण का हृदय नहीं है । इसीलिए हमारा पारस्परिक व्यवहार भी हृदयहीन होता है ।"[2] अचानक नगर-श्रेष्ठि बनने

---

1. रांगेय राघव - अंधेरे के जुगनू - पृ. 155
2. रांगेय राघव - पक्षी और आकाश - पृ. 2।

पर भी भाईयों की ईर्ष्या से वह दुःखी हो जाता है । इसीलिए वह संपूर्ण सुख और रिश्ते-नाते तोडकर घर से भाग निकलता है ।

उपन्यासकार ने धनकुमार को बडे भाग्यवान पात्र के रूप में चित्रित किया है । उसके जन्म के अवसर पर धरती से सोना का ढेर मिल जाता है । आगे धन उसके समस्त जीवन का प्रतीक बनता है । घर छोडकर एक गाँव में वह खेत जोतता है तो धरती से सोना निकलता है । दूसरी बार नदी की धारा से एक आदमी को बचाता है तो वह मरा हुआ था । उसकी जाँघों में कई रत्न रख कर सिला दिया गया था । इसप्रकार उसे शव से रत्न मिलता है । फिर एक बार नदी तट पर उसे रेत से चिंतामणि रत्न मिलता है । जगह जगह पर घूम कर धनकुमार जब उज्जैयिनी पहुँचता है वहाँ चण्डप्रद्योत उससे प्रभावित होता है । उसे वहाँ का अमात्य बनाता है । राज्य-शासन में वह नए-नए परिष्कार लाता है । राज्य का अद्भुत समृद्धि और प्रगति हो गया । इस बीच उसके परिवारवाले गृह-कलह और ईर्ष्या से सब कुछ गंवाकर उसके राज्य में अभयार्थियों जैसा आ पहुँचते हैं । वह उनका सारा प्रबन्ध करता है ।

उज्जैयिनी का वैभव त्यागकर धनकुमार वहाँ से भी चल निकलता है । फिर श्रेणिक बिम्बसार के जहाँ श्रेष्ठि कुसुमपाल से उसकी मित्रता होती है । उसकी पुत्री कुसुमश्री से धनकुमार का विवाह होता है । श्रेष्ठि उसे बिम्बसार के राज्य दरबार में ले जाता है । वहाँ राजनीति में वह अपनी कुशलता को साबित करता है । उपन्यास में श्रेणिक बिम्बसार, उनके दोनों पुत्र,

अम्बपाली आदि का उल्लेख मिलता है । बिम्बसार की पुत्री सोमश्री और श्रेष्ठि गोभद्र की पुत्री सुभद्रा भी धनकुमार की पत्नियाँ बन जाती हैं ।

राजनीति में शतानिक से धनकुमार संबंध स्थापित करता है । एक बहुमूल्य रत्न की सही परख करके वह राजा की प्रतिज्ञा के अनुसार उसकी पुत्री सौभाग्यमंजरी से विवाह करता है । कन्याशुल्क में उसे राज्य का एक विशाल भूखंड मिलता है । वहाँ का राजा बनकर वह एक आदर्श नगर की स्थापना करता है । अधिकारियों की ईमानदारी के अभाव में वहाँ का शासन अस्त-व्यस्त हो जाता है । उस जगह को छोडकर वह सौभाग्यमंजरी के साथ बिम्बसार के यहाँ लौट आता है ।

बिम्बसार के राज्य में उस समय वर्द्धमान महावीर और गौतम बुद्ध के धार्मिक उपदेशों से जनता खूब प्रभावित हो गए थे । बुद्ध से किसी की भेंट होती है तो वह एकदम उनका अनुयायी बन जाता था । धनी-निर्धन, व्यापारी, सैनिक आदि सभी बौद्धधर्म को स्वीकार करने लगे थे । उपन्यास के अंत में बुद्ध से धनकुमार की भेंट हो जाती है । तृष्णा छोडकर वह भी वैराग्य-पथ पर अग्रसर हो जाता है । उपन्यास में अमर्यादित अर्थ-शक्ति और राज्य-शक्ति पर अंकुश के सफल प्रयोग पर विचार किया गया है । इसमें धन और अहंकार की बुराइयों को अनेक प्रसंगों द्वारा प्रस्तुत किया गया है । रांगेय राघव ने इस उपन्यास में ऐतिहासिक भ्रम पैदा करके काल्पनिक धरातल पर तत्कालीन युग-जीवन की झाँकी प्रस्तुत की है ।

"राह न रुकी" उपन्यास में नरेश दधिवाहन की कथा को रांगेय राघव ने अपनी कल्पना के माध्यम से आवश्यक परिवर्तन के साथ प्रस्तुत किया है । हिंसा-अहिंसा तथा स्वार्थ-निस्वार्थ के बीच संघर्ष को शतानिक और दधिवाहन के माध्यम से चित्रित किया गया है । यहाँ बुद्ध-महावीर काल की प्रमुख ऐतिहासिक घटनाओं को उपन्यास का आधार बनाया है । यद्यपि उपन्यास में काल्पनिक घटनाओं और पात्रों की अधिकता है फिर भी रांगेय राघव ने अपनी सृजनात्मक कल्पना-शक्ति से पात्रों और घटनाओं में तारतम्य बिठाया है ।

दधिवाहन और रानी धारिणी की पुत्री वसुमति उपन्यास का प्रमुख नारी पात्र है । उपन्यास में नारी के प्रति समाज की हेय-दृष्टि का वर्णन किया गया है । गाँव की स्त्रियों के वैवाहिक जीवन में असफलता और कटुता को देखकर वसुमति शादी न करने की शपथ लेती है । उपन्यासकार ने यह दिखाने की कोशिश की है कि नारी-शोषण का एकमात्र कारण उसकी आर्थिक परालंबता है । दधिवाहन अपनी इकलौती बेटी को अपना उत्तराधिकारी बनाता है । उस समय नारी को शासन का अधिकार देना अनहोनी घटना थी । क्योंकि तत्कालीन सामाजिक परिवेश में नारी भोग-वस्तु थी ।

शतानिक का बर्बर आक्रमण होता है तो परिषद् के सभी सदस्य युद्ध का बदला युद्ध चिल्लाते हैं । किन्तु दधिवाहन शाश्वत शाँति चाहता है । वह अपने निर्णय पर अडिग रहता है । वह कहता है कि

"मैं इसे स्वीकार नहीं करता । युद्ध से युद्ध । शाँति से शाँति । युद्ध से शाँति नहीं विनाश होता है । शाँति से युद्ध नहीं निर्माण और समृद्धि होता है । इन दोनों का भेद मूलभूत है और सदा ही बना रहेगा ।"[1] युद्ध की पाशविकता के बदले मानविकता की स्थापना करने के लिए दधिवाहन अपने सैन्य को बीच में रोककर शतानिक के पास चला जाता है । वह शतानिक को याद दिलाता है कि युद्ध से शाँति नहीं होगी, घृणा तथा निरीह मनुष्यों की हत्या होती हैं । शतानिक इसे क्षत्रिय-धर्म के विपरीत और कायरता समझता है । वह दधिवाहन को चुनौती देता है । आगे दधिवाहन खड्ग अपने पेट में घुसेडकर शतानिक के झूठे अहंकार को झुठलाता है ।

राजनैतिक षड्यंत्र से धारिणी और वसुमति पकडी जाती है । दोनों को क्रामान्ध सैनिक वन में ले जाते हैं । नारी सम्मान की रक्षा करने के लिए धारिणी आत्महत्या करती है । वसुमति एक वेश्या के हाथों बिक जाती है । श्रेष्ठि धनवाह वेश्या को धन चुकाकर वसुमति की रक्षा करता है । वह उसे अपना घर ले जाता है । वसुमति अपने सारे रहस्य को छिपाकर चंदनबाला नाम से जीवन बिताती है । अंत में उसका सारा रहस्य खुल जाता है । स्वयं राजकुमारी होते हुए भी वर्द्धमान महावीर से दीक्षा लेकर वह जैनमतानुयायी बन जाती है । इस उपन्यास में रांगेय राघव के दार्शनिक विचार अधिक मुखर हो उठे हैं । किन्तु उनके विचारों के वाहक पात्र युग की सीमा में नियंत्रित और अनुशासित हैं । व्यक्ति से अधिक उनकी दृष्टि युग पर केन्द्रित है ।

---

1. रांगेय राघव - राह न रुकी - पृ. 100

रांगेय राघव ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों के द्वारा अतीत को वर्तमानता को अधिक सतर्क और सार्थकता से इंगित कर अतीत और वर्तमान को अन्त:सूत्रित किया है । उनके उपन्यासों में मानवीय संबंधों का चित्रण ऐतिहासिक तथ्यों की रोशनी में किया गया है । इसमें इतिहास और कल्पना को उन्होंने अपनी प्रतिभा के रचनात्मक उपयोग से जीवन्त और प्रामाणिक बनाकर प्रस्तुत किया है । इसीलिए उनकी ऐतिहासिक कल्पना आलोचनात्मक विवेक से वंचित नहीं है । उनके उपन्यासों के सामाजिक-परिवेश इतिहास के प्राचीन कालखंड की मानवीय चेतना के संघर्षशील बिन्दुओं का अद्भुत संसार प्रस्तुत करते हैं । सामाजिक विसंगतियों के साथ-साथ उन्होंने तत्कालीन समाज के सकारात्मक पहलुओं और काव्यात्मक मानव-संबंधों पर भी प्रकाश डाला है । इस प्रकार रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों में भारतीय इतिहास की अवधारणा भविष्य के विकास के लिए परिप्रेक्ष्य प्रदान करता है ।

अध्याय चार

रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यास और भारतीय संस्कृति का समावेश

भारतीय संस्कृति

सामाजिक आचार-विचार, सिद्धांत-नियम, रीति-रिवाज़, नैतिक मान्यता और परंपरा के समन्वित रूप को संस्कृति की संज्ञा दी जा सकती है । संस्कृति राष्ट्र या समाज का जीवन-तत्व है । इसीलिए जब तक संस्कृति विद्यमान रहती है तब तक वह समाज जीवित रहता है । संस्कृति जब ढीली पड़ती है तब वह समाज पतनोन्मुख हो जाता है । संस्कृति के ध्वंस में समाज का अंत तलाशा जा सकता है । विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से संस्कृति अभिव्यक्त होती हैं । सब प्रकार की सामाजिक परंपराएँ, रीति-रिवाज़, सामाजिक-अंतस्संबंध तथा दैनंदिन जीवन की गतिविधियाँ समाज की संस्कृति की अभिव्यक्ति के विभिन्न आयाम हैं । उसप्रकार अभिव्यक्ति के कुछ ऐसे विशिष्ट माध्यम भी हैं जो समाज की समृद्धता, तथा विकसित रुचियों के द्योतक होते हैं, जैसे धर्म, दर्शन, साहित्य, कला, विज्ञान आदि । इन संदर्भों में मनुष्य का सामूहिक होना निश्चित है और विशिष्ट अभिरुचि को वह विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त करता है । यद्यपि सांस्कृतिक विकास में प्रतिभाशाली व्यक्तियों का योगदान विशेष स्मरणीय है फिर भी संस्कृति व्यक्तिगत प्रयत्न का परिणाम नहीं है । संस्कृति का विकास धीरे-धीरे होता है । प्राकृतिक और भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न समाजों में सांस्कृतिक भेद देखा जा सकते हैं ।

भारतीय संस्कृति एक तरफ प्राचीन है तो दूसरी तरफ समावेशी भी है । अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच भारतीय संस्कृति विकसित होती रही है । यद्यपि बहिरंग स्तर पर भारतीय संस्कृति में कई विभेदक तत्व नज़र आते हैं फिर अंतरंग स्तर पर वह अत्यंत सघन है । उसमें अनेकता है, विविधता है और विभिन्न प्रकार के द्वन्द्व भी हैं । इन सबके

बावजूद तमाम विभिन्नताओं को सुरक्षित रखते हुए भारतीय संस्कृति विकास करती गई है जो विश्वमानविकता पर अधिक आस्था रखनेवाली भी है ।

भारतीयता की पहचान

भारतीय समाज के बाह्य आधारों में जैसे रहन-सहन, आचार-विचार तथा रीति-रिवाज़ों में समय समय पर अनेक परिवर्तन होते रहे हैं । किन्तु प्रागैतिहासिक काल से आज तक भारतीय संस्कृति ने अपनी जीवनी शक्ति को कायम रखा है । अपने उत्थान-पतन में भी वह जीवन्त और गतिशील रही है । यही इसकी सबलता और सफलता है । यह सांस्कृतिक सातत्य संसार के किसी भी समृद्ध प्राचीन समाज में दृष्टिगोचर नहीं होता। भारतीय संस्कृति विश्व के अन्य देशों की संस्कृतियों से कई अंशों में एकदम भिन्न है । यह अत्यंत गरिमामय और लोकहितकारी संस्कृति है । इसीलिए संसार के इतिहास में भारत का अपना पृथक महत्व है ।

भारतीय संस्कृति की उदारता, गतिशीलता, व्यापकता, सहिष्णुता और समन्वयात्मकता, विशेष उल्लेखनीय हैं । यह संसार की सबसे प्राचीन संस्कृति है । यूनान, मिश्र, रोम, बेबिलोन, असीरिया, फारस आदि विश्व की अन्य प्राचीन संस्कृतियाँ मिट चुकी हैं । इन देशों की प्राचीन संस्कृतियाँ अपने उत्कर्ष काल में ही किन्हीं आंतरिक कमज़ोरियों अथवा बाह्य आक्रमणों के फलस्वरूप नष्ट हो गई थी । सहस्रों वर्षों के लगातार भौतिक तथा वैचारिक घात-प्रतिघातों के बीच अपनी सांस्कृतिक

अस्मिता को सुरक्षित रखनेवाली विश्व की एकमात्र संस्कृति भारतीय संस्कृति है । इसीलिए भारत के प्राचीनतम और गौरवपूर्ण इतिहास को नकारना इसके अस्तित्व को नकारना है । प्रागैतिहासिक काल से लेकर आज तक भारतीय संस्कृति के कई उतार-चढाव देखने को मिलते हैं ।

भारतीय इतिहास में संस्कृति के मोड इतने सूक्ष्म हैं कि उनका अध्ययन सहज साध्य कार्य नहीं है । आज जिसे हम भारतीय संस्कृति कहते हैं वह अनेक संस्कृतियों का संगम है । इसमें द्रविड, आर्य, आस्ट्रिक, यवन, शक, कुषाण आदि अनेक संस्कृतियों के विभिन्न तत्वों का ऐसा मिश्रण सम्मिलित है, जिन्हें अब पृथक करके पहचानना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है । हज़ारीप्रसाद द्विवेदी जी के शब्दों में "विचित्र देश है यह । असुर आए, आर्य आए, शक आए, हूण आए, नाग आए, यक्ष आए, गंधर्व आए - न जाने कितनी मानव जातियाँ यहाँ आयीं और आज के भारतवर्ष के बनाने में अपना हाथ लगा गईं । जिसे हम हिन्दू रीति-नीति कहते हैं, वह अनेक आर्य और आर्येतर उपादानों का अद्भुत मिश्रण है ।"[1] विविध संस्कृतियों की महत्वपूर्ण विशेषताओं को आत्मसात् करते-करते सहिष्णुता, उदारता और अनुकूलन के गुण सहज ही इस संस्कृति में विकसित हुए हैं । ऐतिहासिक विकासक्रम में यह तत्व स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक संगठन, रीति-नीति और दर्शन सब में कट्टर सिद्धांतवादिता की अपेक्षा भारतीय संस्कृति ने सदैव उर्वर समन्वय-वादिता का परिचय दिया है । इसी सहिष्णुता के कारण अन्य संस्कृतियों की विशिष्टताओं को ग्रहण करके अपनी जीवनी-शक्ति विकसित करने में हमारी संस्कृति को कोई कठिनाई नहीं हुई ।

---

1. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी - ग्रंथावली - भाग 9 - पृ. 20

जवाहरलाल नेहरू के अनुसार "भारत की ओर देखने पर मुझे लगता है, जैसा कि दिनकर ने भी ज़ोर देकर दिखलाया है कि भारतीय जनता की संस्कृति का रूप सामासिक है और उसका विकास धीरे धीरे हुआ है । एक ओर तो इस संस्कृति का मूल आर्यों से पूर्व, मोअन-जो-दडो आदि की सभ्यता तथा द्रविडों की महान सभ्यता तक पहुँचता है । दूसरी ओर इस संस्कृति पर आर्यों की बहुत ही गहरी छाप है जो भारत में मध्य एशिया से आए थे । पीछे चलकर यह संस्कृति उत्तर पश्चिम से आनेवाले तथा फिर समुद्र की राह से पश्चिम से आनेवाले लोगों से बार-बार प्रभावित हुई । इस प्रकार हमारी राष्ट्रीय संस्कृति ने धीरे-धीरे बढकर अपना आकार ग्रहण किया । इस संस्कृति में समन्वयन तथा नए उपकरणों को पचाकर आत्मसात् करने की अद्भुत योग्यता थी । जब तक इसका यह गुण शेष रहा, यह संस्कृति जीवित और गतिशील रही ।"[1] मोअन-जो-दडो, हडप्पा तथा बलूचिस्तान की खुदाइयों में जिस सभ्यता के अवशेष मिले हैं, उनके संबंध में अभी तक यह नहीं कहा जा सकता कि वह सभ्यता आर्यों की थी अथवा द्रविडों की या दास और असुरों की । केवल अनुमान है कि यह सभ्यता आर्यपूर्व भारतीय सभ्यता रही होगी ।

दिनकर के शब्दों में "भारतीय संस्कृति में कोई अजेय शक्ति है, जिसने पराजय नहीं जानी है । इसी शक्ति के कारण भारत, सब को स्वीकार करने के बाद भी भारत ही बना रहता है और जब हम भारत कहते हैं, तब हमारा लक्ष्य वह भारत होता है, जिसका मूल प्राग्वैदिक काल की अतल गहराइयों में छिपा हुआ है । भारत ने केवल उन्हीं को ही नहीं

---

1. संस्कृति के चार अध्याय में जवाहरलाल नेहरू की प्रस्तावना - पृ. 11-12

पचाया जो आर्यों के बाद आए थे, उसने आर्यों को भी पचाकर उन्हें प्राग्वैदिक भारत का अंग बना दिया ।"[1] भारतीय संस्कृति के प्राग्वैदिक तत्व आज भी उसके वैदिक तत्वों से अधिक प्रबल और प्रसारपूर्ण हैं । भारतीय साहित्य के भीतर भावुकता की तरंग, अधिकतर आर्य-स्वभाव के भावुक होने के कारण बढी । किन्तु भारतीय संस्कृति की कई विशिष्टताएँ जैसे अहिंसा, सहिष्णुता और वैराग्य भावना, द्रविड स्वभाव के प्रभाव से विकसित हुई हैं । यह देश आर्यों के आगमन के पूर्व से ही अहिंसक, अल्पसंतोषी और सहिष्णु रहता आया था । आर्यों का अपना धार्मिक कृत्य होम था किन्तु होम और यज्ञ अब अप्रचलित हो गए हैं । आज घर-घर में यज्ञ नहीं पूजा का प्रसार है जिसमें धूप, दीप, अक्षत और नैवेद्य के साथ लोग अपने देवता की आराधना करते हैं । "एक समय था जब पूजा संस्कृत शब्द मानते थे जो "पूज" धातु से निकला होगा । किन्तु यह मान्यता अब नहीं चलती । अब लोग समझते हैं कि यह शब्द प्राचीन तमिल की दो धातुओं "पू" और "जै" के योग से बना है । तमिल में "पू" का अर्थ पुष्प होता है और "जै" का अर्थ कर्म । अतएवं "पू" और "जै" के योग का अर्थ पुष्प-कर्म होगा । यहाँ फिर अहिंसा की परंपरा, मूल में द्रविड दिखाई देती है, क्योंकि हवन पशु-कर्म था ।"[2]

संभवतः भारत में संस्कृति के सबसे प्रबल उपकरण आर्यों और आर्यों से पहले के भारतवासियों, खास कर द्रविडों के मिलन से उत्पन्न हुए । इस मिलन, मिश्रण या समन्वय से एक बहुत बडी संस्कृति उत्पन्न हुई, जिसका

---

1. दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय - पृ. 50
2. वही - पृ. 50

प्रतिनिधित्व हमारी प्राचीन भाषा संस्कृत करती है । संस्कृत के विकास में उत्तर और दक्षिण दोनों ने योगदान दिया । सच तो यह है कि आगे चल कर संस्कृत के उत्थान में दक्षिणवालों का अंशदान अत्यंत प्रमुख रहा है । संस्कृत हमारी जनता के विचार और धर्म का ही प्रतीक नहीं बनी, वरन् भारत की सांस्कृतिक एकता भी इसी भाषा में साकार हुई । बुद्ध के समय से लेकर अब तक संस्कृत यहाँ की जनता की बोली जानेवाली भाषा नहीं रही है । किन्तु सारे भारतवर्ष पर वह अपना प्रभाव डालती ही आई है ।

भारतीय संस्कृति का प्रगतिशील संदर्भ

भारतीय संस्कृति को प्रगतिशील विचारकों ने भी अपनी दृष्टि से देखा है । उनके अनुसार यहाँ संस्कृति की अक्षुण्ण परंपरा रही है जो सामान्य जन-समाज के माध्यम से विकसित हुआ है । रामविलास शर्मा, राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव जैसे मार्क्सवादी विचारकों का भारतीय संस्कृति संबंधी दृष्टिकोण प्रगतिशील है । उनके अनुसार "भारतीय रूढ़ीवाद से हमें अपनी राष्ट्रीय संस्कृति को रक्षा करनी है । रूढ़ीवादी शक्तियों ने विदेशी प्रभुत्व के खिलाफ हमारी वीर जनता के राष्ट्रीय प्रतिरोध को सदा कमज़ोर किया है । पुरोहितों और ज़मीन्दारों की इस संस्कृति को इतिहास ने सैकड़ों साल पहले खारिज कर दिया था । जनता की निरक्षरता के सहारे वह पुनःर्जीवित होकर शिक्षा और विज्ञान के प्रसार को रोक लेना चाहती है । वह जाति-बिरादरी और मत मतान्तर के आधार पर जनता को विभाजित करना चाहती है । भाग्यवाद और अकर्मण्यता का भाव जगाकर वह उसे पिछड़ी हुई अवस्था में रखना चाहती है । राजाओं और ज़मीन्दारों

को धर्मरक्षक बताकर वह उनके विशेषाधिकारों को बनाए रखना चाहती हैं । किन्तु हमारी राष्ट्रीय संस्कृति मानवतावादी है, वह आक्रमण और उत्पीडन के विरुद्ध वीरतापूर्ण प्रतिरोध की संस्कृति है, वह जातियों के बीच शाँति और मैत्री का संस्कृति है । जन-जीवन से इस संस्कृति का घनिष्ठ संपर्क है, वह लोकप्रिय और जनवादी संस्कृति है । हम इस संस्कृति की रक्षा करना चाहते हैं । हमारी संस्कृति की मानवतावादी जनवादी परंपरा जहाँ मंद पड गई हो अथवा साम्राज्यवादियों ने जहाँ उसका दमन किया हो, वहाँ हम उसे पुनर्जीवित करना चाहते हैं ।"[1] वे लोक-संस्कृति और जनवादी चेतना को अधिक महत्व देते रहे हैं । उनका विश्वास है कि भारतीय संस्कृति राजाओं में नहीं जनता में पलती थी । सामन्तों और पंडितों ने नहीं, जनता की सहिष्णुता ने भारतीय संस्कृति को जीवित रखा था ।

रांगेय राघव के अनुसार "भारतीय चिंतन का समन्वयवादी दृष्टिकोण मूलत: मानवतावादी रहा है । इसलिए उसने उग्रताओं के कोने को सदैव ही घिसे हैं । इस मानवतावाद की पृष्ठभूमि में यहाँ की विषमताओं और संघर्ष के मूल में चलनेवाले वे आन्दोलन हैं जो जनसमाज की आवाज़ को शक्ल देते रहे हैं । स्पष्ट हो उन शक्लों के पीछे उत्पादन के साधन न बदलने, या धीरे बदलने या असम रूप से बदलने के कारण मौजूद रहे हैं । जिन्होंने झटकों के स्थान पर विकास को ही ग्रहण किया है । यह विकास पर आधारित चिंतन जो तत्संबंधी समाज व्यवस्था के अब भी जीवित रहने पर आधारित है, अपने अच्छे रूप में सहिष्णु है, और अपने उग्र रूप में नितान्त प्रतिक्रियावादी ।"[2]

---

1. रामविलास शर्मा - मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य - पृ. 39।
2. रांगेय राघव - काव्य यथार्थ और प्रगति - पृ. 7

समय-समय पर विकसित विभिन्न धर्म संप्रदायों ने जन जीवन को प्रभावित किया है और संस्कृति को विकसित किया है । समाज को विषम परिस्थितियों की उपज के रूप में विकसित सांख्य दर्शन में विचार-मंथन का सूत्र मिल जाता है और उसने समाज की व्यवस्था को सुलझाने का प्रयत्न किया । परवर्ती युग में विकसित जैन अनीश्वरवाद और बौद्ध अनात्मवाद या चारवाक् मत आदि भारतीय समाज की विशेष परिस्थितियों में विकसित कुछ सांस्कृतिक क्रम हैं ।

भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिकता

संस्कृति का धर्म, दार्शनिक विचार, साहित्य और कला के माध्यम से अभिव्यंजित होना ज़रूरी है । भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशिष्टता आध्यात्म की भावना है । इस समन्वयात्मक प्रवृत्ति ने हमारी सांस्कृतिक परंपरा को अक्षुण्ण बनाया रखा है । बर्मा, लंका, तिब्बत आदि के प्राचीन धर्म लुब्ध हो गए, उनका स्थान भारत से ही गए बौद्ध धर्म ने ले लिया । विविध संप्रदायों के प्रति सहिष्णुता और सम्मान का भाव भारतीय संस्कृति का प्रधान अंग रहा है । भारत के विचारकों ने इस्लाम के साथ भी धार्मिक-समन्वय का प्रयत्न किया है । अल्लोपनिषद् इसका प्रमाण है । समन्वय की इसी प्रवृत्ति ने "दीनइलाही" के रूप में मूर्तरूप धारण किया, किन्तु यह प्रयत्न सफल नहीं हो सका । पर भारतीय मुसलमानों को भारतीय संस्कृति की मूल भावना देने में इस देश के विचारक सफल हुए । मुसलमानों का सूफी संप्रदाय भारत के आध्यात्मवाद, योग साधन और रहस्यवाद का मुस्लिम संस्करण है । मुस्लिम पीरों के मकबरे बनाकर उनकी पूजा करना भारतीय संस्कृति की देन है । राम और रहीम, कृष्ण और करीम की एकता

के प्रतिपादन द्वारा इस देश के अनेक संतों ने इस्लाम और हिन्दू धर्म में समन्वय का प्रयत्न किया । भारतीय संस्कृति की आध्यात्मप्रधान मूल भावना जो सबमें अपने को और अपने में सबको देखने की प्रवृत्ति से युक्त है । यही उसकी आधारशिला है ।

भारत के विचारक सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पर बड़ा ज़ोर देते रहे हैं । इन व्रतों व आदर्शों पर वैदिक, बौद्ध, जैन व पौराणिक विचारकों ने समान रूप से बल दिया है । हमारे देश की वैयक्तिक व सामाजिक साधना के लिए ये मूल सूत्र रहे हैं । आध्यात्म की भावना ने भारतीय संस्कृति को निष्क्रिय और भौतिक जगत की उन्नति से विमुख नहीं बना दिया था । इस देश के राजा दिग्विजय और चक्रवर्ती साम्राज्य को सदा अपना आदर्श समझते रहे । उन्होंने भारत में ही नहीं बल्कि बाहर भी अपने साम्राज्य को विस्तृत करने का प्रयत्न किया । भारत के व्यापारी धनोपार्जन के लिए मिस्र, रोम, जावा, सुमात्रा और चीन जैसे सुदूर देशों में आते जाते रहे । भौतिक उन्नति की भारतियों ने कभी उपेक्षा नहीं की । वे पारमार्थिक और व्यावहारिक में सदा भेद करते रहे । संसार को मिथ्या प्रतिपादित करनेवाले शंकराचार्य जैसे दार्शनिक ने भी स्पष्ट शब्दों में कहा है कि व्यावहारिक दृष्टि से तो सभी कुछ सत्य है । पारमार्थिक सत्य के कारण व्यावहारिक सत्य को हमारे विचारकों ने कभी अपनी दृष्टि से ओझल नहीं किया । महर्षि वेदव्यास ने भी यह प्रतिपादित किया कि लोक का जो प्रत्यक्ष जीवन है, उसको जाने बिना मनुष्य सर्वदर्शी नहीं हो सकता । भौतिक जगत् की उपेक्षा और आध्यात्मिक लोक की कामना करने से उसका सांस्कृतिक दृष्टिकोण अधूरा रह जाएगा ।

आध्यात्म-भावना के कारण भारतीय संस्कृति में एक ऐसा सौंदर्य आ गया है जो हमारी संस्कृति की अनुपम विशेषता है । भारत की कला, कविता, संगीत, विज्ञान आदि में आध्यात्म-भावना की छाप दिखाई देती है । इसीलिए भारत के अनेक प्राचीन कलाविद संगीत और नृत्य तक को भी परमतत्व की प्राप्ति का साधन मानकर उनकी साधना में तल्लीन हुए । यहाँ चिकित्सा, ज्योतिष आदि भौतिक विज्ञान के अन्वेषक भी यह मानते रहे कि उनके ज्ञान का चरम उद्देश्य परमार्थतत्व की प्राप्ति ही है । संसार का सुख और भोग हेय नहीं है, उनको प्राप्त करना प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक है । परन्तु भौतिक सुख ही मनुष्य का अंतिम ध्येय नहीं है । इस विचारधारा ने भारतीय संस्कृति को उत्कृष्ट बनाया है । इसीलिए यहाँ मनुष्य धर्म, अर्थ, काम के साथ मोक्ष को अपना अंतिम लक्ष्य मानता है । ऐहिक जीवन को महत्व देने के साथ ही भारतीय दृष्टि ने पारमार्थिक जीवन-तत्व को भी महत्व दिया है । इस कारण से भारतीय संस्कृति में सदैव विश्व-मानविकता का पक्ष प्रबल रहता है "वसुदैव कुटुम्बकम्" की भावना इसी की परिणति है ।

एकता का सन्देश

भौगोलिक परिस्थितियों ने भारत को संसार के अन्य देशों से पृथक कर रखा है । हमें एक ऐसी प्राकृतिक सीमा प्राप्त है जो अन्य देशों को प्राप्त नहीं है । महासमुद्र और पर्वतमालाओं से घिरा हुआ यह देश एक विशाल दुर्ग के समान है, जिसमें एकता की अनुभूति अत्यंत प्राचीन काल से प्रवाहमान है । प्राचीन भारत में भारत चाहे सदा एक शासन में नहीं रहा

हो फिर भी यहाँ एकता की अनुभूति प्रबल रूप से विद्यमान थी । यही कारण है कि विविध राज्यों और राजवंशों की सत्ता के होते हुए भी भारत के इतिहास को एक साथ प्रतिपादित किया गया है । एक ओर शक्तिशाली सम्राट इस देश को राजनीतिक दृष्टि से एक शासन में लाने का प्रयत्न किया है । दूसरी ओर धार्मिक आचार्य और संत संपूर्ण देश में एक धर्म और संस्कृति की स्थापना के लिए तत्पर रहे । मध्यकाल के भक्त कवियों की रचनाओं का साहित्यिक महत्व निर्विवाद रूप से स्वीकृत है । परन्तु सबसे मूल्यवान पक्ष भक्ति साहित्य का वैकल्पिक दृष्टिकोण है जिसने मनुष्य को केन्द्र में रखकर नया चिन्तन प्रस्तुत किया है । यह भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण उपलब्धि है । इसीलिए यह कहना उचित होगा कि भारत में ऐसी एक संस्कृति का विकास हुआ जो निजी है । अपनी संस्कृति का प्रभाव भारत ने समीपवर्ती अन्य देशों पर भी डाल दिया है ।

व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा, स्वार्थ, सत्तालोलुपता तथा ईर्ष्या के कारण कालान्तर में हमारी सांस्कृतिक परंपरा में कुछ विकृतियाँ भी आई हैं । जैसे कि धार्मिक क्षेत्र में जाति-पाँति, छुआ-छूत आदि भारतीय संस्कृति का अभिशाप है । बाहरी चुनौतियों से भी हमारी संस्कृति अव्यवस्थित हो गई है । भारत ने सुदीर्घ काल तक कभी अंशत:, कभी पूर्णत: परतंत्रता की जंजीरों में पड़ी थी । इस देश के कुछ स्वार्थान्ध लोगों ने कभी विदेशियों का स्वागत और गठबंधन भी किया है । विदेशी संस्कृतियों के प्रहार से हमारी संस्कृति को आंशिक रूप से ही हानी हुई है । भारत की चेतना तथा आत्मा आज भी अनाहत है, वह पुन: सतर्क और सक्रिय हो उठी है ।

यद्यपि किसी भी देश की संस्कृति का कोई मूर्त रूप स्पष्ट नहीं रहता फिर भी उसका सान्निध्य, जीवन रीतियों में, अन्दाज़ में, इच्छित आदर्शों में अनुभव किया जा सकता है । भारतीय संस्कृति की यही स्थिति है । अनवरत ढंग से चली आनेवाली भारतीय संस्कृति के असंख्य रूप हमारे जीवन के विभिन्न परिदृश्यों में स्पष्ट होते रहते हैं और सांस्कृतिक स्रोत के ये प्रसंग प्राय: किसी न किसी रूप में साहित्य के विषय भी बन जाते हैं । इसलिए पूरे भारतीय साहित्य का संस्कृति के संदर्भ में विवेचन संभव है । कुछ साहित्यकार संस्कृति को ही विषय के रूप में अपनाते हैं विशेषकर प्राचीन काल की कथा को परिदृश्य के रूप में अपनानेवाले । रांगेय राघव उसी श्रेणी में आनेवाले रचनाकार है । इस प्रकरण में यह सूचित करना अनुचित नहीं होगा कि रांगेय राघव निरन्तर संस्कृति में उलझनेवाले, उसमें गोता लगाकर नए तथ्यों की खोज करनेवाले साहित्यकार रहे हैं विशेषकर अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में । अत: रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों में प्रतिफलित भारतीय संस्कृति के स्पष्ट एवं अस्पष्ट चिह्नों को रेखांकित करना यहाँ अभीष्ट है ।

रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों के सांस्कृतिक पक्ष

उपन्यास प्राय: जीवन के व्यापक परिदृश्यों को अपनाता है । जीवन के विराट फलक को कई प्रकार से उपन्यास में विन्यसित किया जाता है । इतिहास को वस्तु चयन का जब आधार बनाया जाता है तो ऐतिहासिक उपन्यास की रचना संभव है । आधारभूत तत्व इतिहास होते हुए भी ऐतिहासिक उपन्यासों में सांस्कृतिक क्रिया-कलाप ही कथ्य के रूप में प्रयुक्त होते हैं । अज्ञेय के शब्दों में "संस्कृति का ऐतिहासिक संदर्भ होता है

जिसकी उपेक्षा नहीं हो सकती, उसी तरह यह भी सत्य है कि इतिहास का भी एक सांस्कृतिक संदर्भ है जिसकी उपेक्षा नहीं हो सकती । ऐतिहासिक संदर्भ खो कर संस्कृति मरुस्थल में भटकने लगती है, उसे दिशा-ज्ञान नहीं रहता । किन्तु सांस्कृतिक संदर्भ खोकर इतिहास तत्कालीन मर जाता है ।"[1] अतः संस्कृति इतिहास की जीवनी-शक्ति है । ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास और संस्कृति का संगम स्थल है । इस अर्थ में ऐतिहासिक उपन्यास सांस्कृतिक उपन्यास भी होते हैं ।

रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों में भारतीय समाज की प्रागैतिहासिक सभ्यता एवं संस्कृति के उत्थान-पतन की कलात्मक प्रस्तुति मिलती है । उन्होंने प्रत्येक युग के सांस्कृतिक पहलू का सूक्ष्म और गंभीर अध्ययन किया है । इसीलिए उनके ऐतिहासिक उपन्यास भारतीय इतिहास की लोकधर्मी सांस्कृतिक पुनर्व्याख्या है । प्राचीन भारत की महान संस्कृति, विभिन्न धर्मों का सामंजस्य, वैभवसंपन्नता तथा उत्थान-पतन की झाँकी भी उनमें मिलती है । उनका साहित्य न केवल भारतीय संस्कृति की तरफदारी करता है अपितु उसकी जातीय एवं मूल्यपरक वैचारिक विरासत को विकसित करने का गुरुतर दायित्व भी निभाता है । हिन्दी में वृन्दावनलाल वर्मा, आचार्य चतुरसेनशास्त्री, राहुल सांकृत्यायन, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, यशपाल आदि ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं । लेकिन राहुल सांकृत्यायन और हज़ारीप्रसाद द्विवेदी की औपन्यासिक दृष्टि गहरी है और रांगेय राघव उन्हीं की श्रेणी में आनेवाले ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं ।

---

1. अज्ञेय - केन्द्र और परिधि - पृ. 247

रांगेय राघव ने भारतीय इतिहास के जितने सांस्कृतिक पक्ष लिये हैं वे विषय की दृष्टि से एकदम अद्यतन है । "मुर्दो का टीला" और "अंधेरे के जुगनू" में उन्होंने भारतीय इतिहास के तिथिहीन प्रागैतिहासिक काल के परिदृश्य को प्रस्तुत किया है । इतिहास की श्रृंखलाओं को जोड़कर उन्होंने इन उपन्यासों में तद्युगीन सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि को उजागर किया है । सांस्कृतिक दृष्टि के संदर्भ में हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में रांगेय राघव का "मुर्दो का टीला" अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रयास है । इसमें कल्पना के माध्यम से प्रागैतिहासिक काल के मोअन-जो-दडो की अज्ञात सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन को साकार किया गया है ।

सिन्धुघाटी संस्कृति और "मुर्दो का टीला"

इटली के पोम्पिआई नामक विख्यात नगर के संबंध में मध्यकालीन युरोपवासियों के बीच में एक किंवदन्ती मात्र थी । किन्तु इसका कोई आधार नहीं । एक दिन जब भूगर्भवेत्ता उसकी ओर झुके तो ज्वालामुखियों से निकले हुए लावा को खोदने पर विस्मय से यह नगर पाया गया । मोअन-जो-दडो भी एक ऐसी घटना है । सन् 1921 में पंजाब में हुई खुदाई से भारत की प्रागैतिहासिक-कालीन नागरिक-सभ्यता का पता मिल गया । "अत्यन्त प्राचीन काल में सिन्ध और बलूचिस्तान के प्रदेशों में ताम्र-युग की जिस सभ्यता का विकास हुआ था, उसके बाद सिन्धु नदी की घाटी एवं पश्चिमी भारत में एक अन्य उन्नत व समृद्ध सभ्यता का विकास हुआ, जिसके प्रधान नगरों के भग्नावशेष इस समय हडप्पा और मोअन-जो-दडो नामक स्थानों पर उपलब्ध हुए हैं । यह सभ्यता पूर्व में हरियाणा,

राजस्थान तथा गुजरात से शुरू होकर पश्चिम में मकरान तक विस्तृत थी । उत्तर में इसका विस्तार हिमालय तक था । इसके प्रधान नगर सिन्धु व उसकी सहायक नदियों के समीपवर्ती प्रदेशों में विद्यमान थे, इसीलिए इसे सिन्धु-घाटी की सभ्यता कहा जाता है ।"[1]

भारतीय संस्कृति संसार की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है । "मोअन-जो-दडो की खुदाई के बाद यह मिश्र और मेसोपोटेमिया को सबसे पुरानी सभ्यताओं के समकालीन समझी जाने लगी है ।"[2] सिन्धु नदी के तट पर आज से सहस्रों वर्ष पहले मोअन-जो-दडो व्यापार का सुसभ्य केन्द्र था । उस समय सुदूर पश्चिम में मिश्र, उत्तर पश्चिम में एलाम और सुमेरु, क्रीट में माइनोन सभ्यता तथा उत्तर में हडप्पा थे । मुक्तिबोध के शब्दों में "इस अति प्राचीन सभ्यता का स्वरूप बहुत ही विस्मयकारिणी है । वह कई बातों में इराक (सुमेरिया, बेबिलोनिया) की सभ्यताओं से बढकर थी ।"[3] विश्व इतिहास में सिन्धुघाटी सभ्यता गौरवशाली स्थान रखती है । पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति से कई बातों में समानता दिखाई पड़ती है । जैसे कि "सुमेरिया और मेसोपोटेमिया की प्राचीन सभ्यता एवं इस सभ्यता में विकसित नागरिक जीवन, कुम्हार के चाक का उपयोग, भट्टी में पकी हुई ईटें, ताम्र और कांसे के बर्तन एवं चित्रलिपि समान रूप से पाए जाते हैं ।"[4] धार्मिक क्षेत्र में मोअन-जो-दडो और मिश्र के बीच आदान-प्रदान हुए है । क्योंकि

---

1. सत्यकेतु विद्यालंकार - भारतीय संस्कृति का विकास - पृ. 46
2. हरिदत्त वेदालंकार - भारत का सांस्कृतिक इतिहास - पृ. ।
3. मुक्तिबोध - भारत का इतिहास और संस्कृति - पृ. 19
4. बी. एन. लुनिया - प्राचीन भारतीय संस्कृति - पृ. 3

मिश्र की सूर्य पूजा का प्रभाव हमें द्रविड जातियों में भी अंधविश्वास के रूप में मिल जाता है । उनके देवता, सर्प, तूफान आदि रूप हमें यहाँ भी मिलते हैं ।

3500 ई.पू. मोअन-जो-दडो का अंतिम समय माना जाता है । खुदाई में मिले भग्नावशेषों के बल पर विद्वान लोग इसे आर्य-पूर्व भारतीय सभ्यता मानते हैं । किन्तु आज हमारे पास उनकी सभ्यता और संस्कृति का मापदंड, उनकी भाषा तक नहीं है । उनकी चित्रलिपि पढने के प्रयत्न भी सर्वमान्य नहीं हो सके हैं । एक ओर पुरातत्ववेत्ताओं ने भग्नावशेषों के सहारे कालनिर्णय किया है । तो दूसरी ओर नृतत्वशास्त्रियों ने प्राचीन हड्डियों के आधार पर वहाँ के निवासियों की पहचान और प्राचीनता निर्णीत करने की कोशिश की है ।

रांगेय राघव का "मुर्दों का टीला" इस प्रागैतिहासिक परिदृश्य के आधार पर रचित है । उपन्यास में तत्कालीन भारतीय संस्कृति का समावेश किया गया है जो काल्पनिक भी है । "मुर्दों का टीला" मोअन-जो-दडो का पर्यायवाची शब्द है । आर्यों को पूरे भारत में फैलने में सैकडों वर्ष लगे थे । इसीलिए उपन्यास में रांगेय राघव ने आर्यों को एकदम मोअन-जो-दडो नहीं पहुँचा दिया है । मोअन-जो-दडो के समीपवर्ती देश कीकट में आर्यों का आक्रमण दिखाया गया है । दिनकर के समान रांगेय राघव ने भी मोअन-जो-दडो की सभ्यता को आर्य-पूर्व द्रविड सभ्यता मानते हैं ।

इसलिए आलोच्य उपन्यास में उन्होंने द्रविड दृष्टिकोण से वर्णन किया है । रांगेय राघव के शब्दों मे "3500 ई.पूर्व ही लगभग आर्यों के आने का समय बताया जाता है, क्योंकि अभी तक मोअन-जो-दडो में आर्य चिह्न नहीं मिले हैं, मैं समझता हूँ वे यहाँ नहीं आए और जब वे आए तब मोअन-जो-दडो नहीं रहा ।"[1]

धर्म के प्रति यहाँ के लोगों की बडी आस्था थी । प्रागैतिहासिक काल से यह धार्मिक परंपरा चली आई है । मोअन-जो-दडो के महानगर में योगमुद्रा में स्थित तीन सींग का सिरवाली योग रूप प्रकट करती मुद्रा मिली है । रांगेय राघव के अनुसार "यह एक विशेष बात प्रकट करती है । महादेव पर यद्यपि अनेक मत हैं किन्तु मुझे यह स्पष्ट लगता है कि वह योग का देवता द्रविड संपत्ति ही थी । दक्षिण में ही तांडव भी हुआ था, क्योंकि शिव-लिंग को शिश्नपूजा कहकर आर्यों ने प्रारंभ में निन्दा की थी । बाद में स्वयं उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया क्योंकि सभी द्रविड तो आर्यों के आने पर भाग नहीं गए । दास बन कर भी अपने धर्म पर डटे रहे और मरते मरते भी अपना प्रभाव छोड गए ।"[2] "मुर्दों का टीला" में रांगेय राघव ने द्रविडों को मूर्तिपूजक दिखाया है । सर्प, महामाई, महादेव, अश्वत्थ, सूर्य आदि की पूजा उनमें मिलती है । उपन्यास में महामाई के मंदिर का वर्णन मिलता है -"महामाई के विराट मंदिर में लोग खचाखच भर गए । विशेष नागरिकों और विदेशियों के बैठने का ऊँचा मंच था । उसी पर पूजा का समस्त व्यवधान था । वह स्थान बिलकुल महामाई की विराट

---

1. रांगेय राघव - मुर्दों का टीला - भूमिका ।
2. वही ।

मूर्ति के चरणों पर श्वेत प्रस्तर का काफी लंबा-चौडा था । उससे बहुत दूर तक लंबी-लंबी सीढियाँ थीं जिनके नीचे समस्त समुदाय एकत्र हुआ था ।"[1] जादू टोना का भी उनमें काफी प्रचलन था । खेती के लिए पानी की आवश्यकता थी । बादलों की प्रतीक्षा करनेवाले सहस्रों वर्षों से रहते आए द्रविडों के बीच में यदि जादू टोने का प्रचलन रहा तो इसे सहज समझना चाहिए । उपन्यासकार ने आलोच्य उपन्यास में तत्कालीन लोगों के अंधविश्वासों पर भी प्रकाश डाला है । देवता की आराधना के लिए गाँव की एक कन्या को बलि दी जाती है तो नीलूफर इसे अत्याचार कहती है । तब गाँववालों का कथन है कि "अत्याचार न कहो स्त्री ! यह ग्राम का प्रताप फैलाएगा, मंगल लाएगा । हमारी नहरों में अबाध जल आ जाएगा और गेहूँ की बीस-बीस बालें बढ़ जाएँगी। हमारे घरों में वैभव बढेगा । पितर सुखी होंगे । हमारी कब्रों को पशु खोदकर खा नहीं सकेंगे । रोगों के प्रेत आकर हमारे बच्चों को सता नहीं सकेंगे ।"[2]

भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिकता की भावना विशेष महत्व रखता है । भारत में धार्मिक विश्वासों के साथ ही साथ अंधविश्वासों की भरमार भी रही है । समाज में नैतिक आदर्श और मर्यादा की स्थापना के लिए यह आध्यात्मिक परंपरा काफी सहायक सिद्ध हुई है । "मुर्दों का टीला" में रांगेय राघव ने इस ओर अधिक ध्यान दिया है । मोअन-जो-दडो के श्रेष्ठियों और महानागरिकों की विलासिता और उच्छृंखलता सीमातीत होने पर प्राकृतिक विक्षोभ होता है । तब विश्वजीत कहता है -"यही जीवन का सबसे बडा सुख है अभागो ! यही कल्याण का सबसे उज्ज्वल स्वरूप है ।

---

1. रांगेय राघव - मुर्दों का टीला - पृ. 59
2. वही - पृ. 114

जानते नहीं यह पृथ्वी का हृदय धडक रहा है ? देवताओं ने क्रोध किया है, पापियों ! तुम्हारा पाप अधिक दिन तक नहीं चल सकेगा ।"[1] इस दृष्टि से ही उपन्यासकार ने मोअन-जो-दडो के विनाश की निर्मम कहानी प्रस्तुत की है ।

हमारी परंपरा का एक प्रबल विश्वास है कि जब मनुष्य का अत्याचार और पापाचार सीमाओं को पार करता है तब प्रकृति उसे स्वयं नियंत्रण में रखता है । उपन्यास में निरंकुश शासक बनने की इच्छा से मणिबंध विद्रोहियों को कुचल देता है । भीषण नरसंहार से प्रकृति क्रुद्ध हो जाती है- "मकान गिरने लगे । उनके गिरने से प्रचंड शब्द गूँज उठा । इतना भयानक वह शब्द कि प्रकृति की भयावनी गडगडाहट भी उससे क्षण भर को दब गई । बडे बडे पाषाण चटककर अर्रा उठे । द्वार, स्तंभ, प्राचीर कोई भी उस विराट झटके को नहीं झेल सके । कितनी देर चलेगी यह प्रकृति की बर्बरता.... कब शाँत होगा प्रकृति का यह घोर उत्पात.....।"[2] इसप्रकार रांगेय राघव ने मोअन-जो-दडो के महानागरिक सभ्यता के पतन को हमारी आस्था-वादी दृष्टि के अनुकूल चित्रित किया है ।

"मुर्दो का टीला" में मोअन-जो-दडो की वैभव-संपन्नता, कृषि-संस्कृति, मौसम, नदी तटीय संस्कृति, अहिराज के उत्सव आदि पर भी उपन्यासकार ने प्रकाश डाला है । उपन्यास में मणिबंध कहता है -"सब देवी महामाई का प्रसाद है आमन-रा । मिश्र की ही भाँति मोअन-जो-दडो में भी

---

1. रांगेय राघव - मुर्दो का टीला - पृ. 27
2. वही - पृ. 37।

तुम्हें दज़ला, फ़रात और हेल्मंद की संतान मिलेगी । एक बार देखोगे कि हमारे देश में भी स्वर्ण और रत्नों के भंडार हैं । खेतों में पानी देने के लिए महानद सिन्धु से निकाली गई नहरें हैं । खड़िया मिट्टी और राल लेपित घरों में जब तुम हमारे देश की उर्णसज्जित हाथी-दाँत और जवाहरात के गहने पहनी हुई स्त्रियों को गाते हुए चित्र खींचते हुए देखोगे तब मिश्र को मरुभूमि को भूल जाओगे । तुम्हारे मिश्र में कभी इतनी वर्षा नहीं होती । जब तुम "खरस्रवणी"[1] के तीर पर बैठोगे तो देखोगे हमारे सुन्दर कब्रिस्तानों में कैसी निस्तब्धता छाई रहती है । देवता अहिराज के उत्सव में द्रविड देशों से भी यात्री आते हैं ।"[2]

स्थापत्य कला भारत के प्राचीन कलाओं में से एक है । सिन्धुघाटी के निवासी इस कला के क्षेत्र में बहुत आगे बढ़ चुके थे । रांगेय राघव ने "मुर्दों का टीला" में मोअन-जो-दड़ो के विशाल स्नानागार का वर्णन किया है -"ताल के किनारे घाट पर कपड़े बदलने के लिए प्रकोष्ठ थे, जिनमें अगरु को स्तंभों पर लगाकर जलाया जाता था । लोग स्नान के पश्चात् वहाँ जाकर अपनी इच्छानुसार शृंगार किया करते थे । महानगर की तो बात दूर थी, स्वयं दूर-दूर तक विख्यात मनोहर सुमेरु की सुदूर मिश्र की राजधानी में भी बड़े-बड़े प्रासाद थे किन्तु ऐसा स्नानागार पश्चिम के उस महानगर में भी मिलना

---

1. सिन्धु नदी के पश्चिम में एक और नदी थी जिसका नाम रांगेय राघव ने खरस्रवणी रख लिया है । कालान्तर में वह लुप्त हो गई थी । वेद के सप्तसिन्धु के वर्णन में एक नदी अर्जीकीया का वर्णन आता है । संभवत: यह वही हो जिसके कारण भूमि उपजाऊ थी, सिन्धु प्रदेश मरुस्थल न था । रांगेय राघव - मुर्दों का टीला - भूमिका
2. वही - पृ. 6

असंभव था । मोअन-जो-दडो के ये भुवन विख्यात स्नानागार के किनारों पर कुंजों को लगाकर शीतल छाया कर दी गई थी । प्रेमियों को गुप्त रूप से मिलने के लिए जैसे कुछ स्थानों की नितान्त आवश्यकता थी ।"[1] स्नानागार का यह भव्य चित्रण जहाँ "मुर्दों का टीला" में मिलता है वहाँ खुदाई से प्राप्त भग्नावशेषों से प्रामाणित है कि "मोअन-जो-दडो की इमारतों में यह स्नानागार सबसे विशिष्ट महत्वपूर्ण एवं विस्तृत तालाब है । यह ईंटों का बना हुआ है जो 39 फुट लंबा, 23 फुट चौडा और 8 फुट गहरा है । इसकी दीवारें मज़बूत हैं और इसमें उतरने के लिए अनेक सोपान-मार्ग बने हैं । इसके चारों ओर गैलरी, बरामदे और कमरों का लंबा सिलसिला है ।"[2] खुदाई से प्राप्त मोअन-जो-दडो के स्नानागार का भग्नावशेष भारतीय संस्कृति की प्राचीनता का जीवन्त दस्तावेज़ है । वहाँ के भवनों का निर्माण-कौशल, नालियों का निर्माण, राजवीथि का निर्माण आदि के आधार पर ही रांगेय राघव ने उपन्यास में एक समृद्ध सामाजिक जीवन का चित्रण प्रस्तुत किया है, जैसे कि सिन्धु-घाटी के निवासियों का सामाजिक जीवन उच्चकोटि का था । समाज कई वर्गों में विभाजित था । वहाँ के निवासी स्वर्ण तथा हाथी दाँत के आभूषण पहनते थे । धनाढ्य नागरिक चमचमाते स्वर्ण आभूषणों को पहनते थे । हार, कंगन, कुंडल इत्यादि आभूषण नर-नारी दोनों ही पहनते थे । उपन्यास में "उनके खान-पान, रहन-सहन, आभूषण, इमारतें, मृतक संस्कार सभी का वर्णन इतिहास-सम्मत है ।"[3]

---

1. रांगेय राघव - मुर्दों का टीला - पृ. 19
2. भगवतशरण उपाध्याय - प्राचीन भारत का इतिहास - पृ. 18
3. राधाकृष्ण चौधरी - प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास - पृ. 46

रांगेय राघव ने "मुर्दों का टीला" में तत्कालीन गणराज्य का संकेत दिया है । उस समय गण-व्यवस्था प्रचलित थी । गणपति, उपगणपति आदि पदाधिकारियों का वर्णन उपन्यास में किया गया है । गण संस्था में प्रस्ताव उपगणपति रखता था । जैसे - "मोअन-जो-दडो के महानागरिक ! गणप्रवर वृद्ध का स्वर सभा मंडप में डोल उठा । आज महाश्रेष्ठि मणिबंध उपगणपति ने प्रस्ताव किया है कि व्यापार की सफलता के लिए हम अपने गण में मिश्री व्यापारियों को भी ले लें । यह इस कारण आवश्यक हो गया है क्योंकि हडप्पा और द्रविड प्रांत धीरे-धीरे एक बर्बर जाति के अधीन हो गए हैं जिनसे अब हम स्वतंत्रता से व्यापार नहीं कर सकते । महानगर की राजनीति पर सब कुछ आश्रित है । विषय बहुप्रवृत्त विचारों का उत्पादक है । मैं गण से प्रार्थना करता हूँ कि वे इस पर विचार करें और विनिमय से लाभ का आदान-प्रदान करें ।"[1] यहाँ मिश्र और मोअन-जो-दडो के व्यापारिक संबंध, मोअन-जो-दडो की राजनीति, आर्यों का आक्रमण आदि बातों की ओर संकेत है । गण को तोडकर एकतंत्र की स्थापना के लिए मणिबंध षड्यंत्र रचता है तो विश्वजीत कहता है -"महानागरिको ? किसलिए बनाया था हमारे पूर्वजों ने यह गण ? और इन स्वर्ण के भूखे व्यापारियों ने हमारे पवित्र महानगर को दासत्व सिखाया और आज वे उसे उतना ही भयानक और निर्जन बना देना चाहते हैं जितना मिश्र है ।..... युग युग तक मनुष्य का रक्तरंजित शीश उठा करेगा...."[2] रांगेय राघव ने यहाँ गणतंत्र की आकांक्षा के साथ परतंत्रता के विरुद्ध भारतीय जनता की आवाज़ को बुलन्द किया है । भारतीय जनता प्राचीन काल से ही दासता की जंजीरों को घृणास्पद समझी है । इसीलिए स्वतंत्रता की आकांक्षा उनकी जीवन-शक्ति है ।

---

1. रांगेय राघव - मुर्दों का टीला - पृ. 237
2. वही - पृ. 312

"मुर्दों का टीला" वास्तव में प्राचीनतम इतिहास का पुनराविष्कार हुआ है जिसमें उपन्यासकार की कल्पना-शक्ति का पर्याप्त समावेश है । परन्तु उपन्यासकार द्वारा अंकित तत्कालीन धार्मिक स्थिति का चित्रण हमें इतिहास में भी मिलता है । सिन्धु-घाटी की खुदाई से प्राप्त भग्नावशेषों के आधार पर इतिहासकारों ने यह अनुमान लगाया है कि "सैन्धव सभ्यता में धर्म का बडा महत्त्व था । ये लोग पूजा में अहिराज, महामाई, शिव आदि को विशेष महत्त्व देते हैं । पूजा के क्षेत्र में सर्वाधिक प्रतिष्ठा संभवतः उस मातृशक्ति की थी जिसकी आराधना प्राचीन काल में ईरान से लेकर मिश्र तक के सारे देशों में होती थी ।"[1] इस प्रकार "मुर्दों का टीला" में प्रागैतिहासिक भारत की संस्कृति और सभ्यता को साक्षात्कृत किया गया है । तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक दशाएँ इसमें जीवन्त हो उठी हैं । भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं का समावेश उपन्यास में किया गया है ।

महाकाव्यकालीन जातीय-संस्कृति और "अंधेरे के जुगनू"

रांगेय राघव का "अंधेरे के जुगनू" महाकाव्यकालीन इतिहास पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास है । इसमें महाजनपद से भी प्राचीन युग का चित्रण मिलता है । रांगेय राघव ने "मुर्दों का टीला" में जिस सतर्कता से प्राचीन भारत की धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का चित्रण किया है वैसी सतर्कता "अंधेरे के जुगनू" में दर्शायी नहीं है । उसमें उन्होंने ब्राह्मण वर्ग को गौरव प्रदान दिया है । भारतीय परंपरा को वर्णाश्रम के अनुसार

---

1. डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी - प्राचीन भारत का इतिहास - पृ. 18

ब्राह्मण अवध्य है । उपन्यास में अमात्य प्रावृट जातीय गौरव का रखवाला है । आभीर राज भूमन्यु प्रावृट की पुत्री को बंदी बनाता है तो वह कहता है -"एक अपनी दुहिता को देखूँ कि सहस्रों सौवीर कन्याओं के लिए रोऊँ, जो तुम्हारे पुरबद्धों के नीचे अपनी लज्जा को कुचले जाते देखकर चिल्लाती हैं । जिनके सौभगत्व को तुम्हारी वाहिनी ने रक्त से धोया है, उन्हें देखूँ कि अपनी पुत्री को देखूँ ? यदि तुम मुझे खंड-खंड कर दो तब भी अंगीरस प्रावृट अपना सौवीर गौरव नहीं छोड सकता ।"[1] त्याग की यह भावना भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल पक्ष है । ब्राह्मणोचित गर्व के साथ उसने निर्भीकता का भी परिचय दिया है । जब आभीर राज की दासी पत्नी मदनमंथिनी सैनिकों के बल पर उसे बंदी बनाया जाता है तो वह कहता है -"ब्राह्मण प्रावृट को विनय सीखनी नहीं पडती, वह सदा से ही सिखाता आया है सैनिक ! तुम वेतन भोगी हो, तुम गौरव नहीं समझ सकते । तो यह उस आभीरराज भूमन्यु की दासी पत्नी है । अच्छा है, जब धर्म लोप होता है, तब दासियाँ रानी ही होती हैं ।"[2] विदेशी शासन के विरुद्ध जनता को जागृत करने में वह सफल हो जाता है । राष्ट्रप्रेम और स्वतंत्रता की यह भावना भी भारतीय संस्कृति के परिचायक है ।

"अंधेरे के जुगनू" में शोणकेतु सनगा से कहता है -"अनबूझ लडकी । तू जानती है कि तू किससे बातें कर रही हैं ? खेद है कि तू वायु के समान है । तू मेरी हानि कर सकती है, परन्तु मैं तुझ पर अपना खड्ग नहीं उठा सकता क्योंकि तू स्त्री है । क्योंकि तुझसे पराजित होकर मेरा अपमान तो है,

---

1. रांगेय राघव - अंधेरे के जुगनू - पृ. 93
2. वही - पृ. 79

किन्तु तुझ पर विजय प्राप्त करने में मेरा कोई गौरव नहीं ।"[1] स्त्री से अत्याचार या उसके साथ वीरता दिखाना भारतीय संस्कृति में वर्जित है । भारतीय परंपरा के अनुकूल उपन्यास में द्वन्द्व युद्ध का वर्णन भी मिलता है - "इस समय प्रांगण के बीच में दोनों वीर आ गए थे । आर्य गंधकाल ने चिल्ला कर कहा - नागरिकों ! शाँत रहो । आज आभीरराज भूमन्यु और केतुकुल के कुमार वृषकेतु एक दूसरे के सम्मुख खड़े हैं । यदि इस युद्ध में वृषकेतु जीत गए तो वे आभीरराज के कुल की आभीर कन्या से परिणय करेंगे, किन्तु यदि वे पराजित हो गए तो यह सदैव के लिए प्रमाणित हो जाएगा कि सौवीरों के दो श्रेष्ठ वीरों में एक आभीरराज भूमन्यु के सामने कोई सामर्थ्य नहीं रखता ।"[2] भारतीय संस्कृति में द्वन्द्व युद्ध को धर्म-युद्ध का दर्जा दिया गया है । किसी न किसी बात का फैसला करने के लिए या कोई संघर्ष के हल के लिए प्राचीन भारत में द्वन्द्व युद्ध होता था ।

"अंधेरे के जुगनू" में वर्ण-संघर्ष के अन्तर्विरोधों को भी चित्रित किया गया है । भूमन्यु की छल से ब्राह्मणी विधवा बृहद्धति का पाणीग्रहण वृषकेतु के साथ होता है । भूमन्यु ने क्षत्रिय और ब्राह्मण कुल के बीच फूट डालने के लिए षड्यंत्र रचा था । बृहद्धति क्रुद्ध होकर वृषकेतु से कहता है कि "नीच क्षत्रिय ! तुम्हारे भीतर इतना विष था ! तुम्हारे केतुकुल के लिए मेरे पिता ने क्या नहीं किया, किन्तु यही उसका फल है कि तुमने उसकी विधवा पुत्री का धर्म विनष्ट किया है ? नराधम ! क्षत्रिय होकर तुमने ब्राह्मणी पर दृष्टिपात किया ?"[3] भारतीय परंपरा के अनुसार ब्राह्मणी-विधवा का विवाह उसके देवर

---

1. रांगेय राघव - अंधेरे के जुगनू - पृ. 53
2. वही - पृ. 139
3. वही - पृ. 141

के साथ संभव होता है, और किसी से नहीं । यह जातीय संकीर्णता मानवीय संस्कृति को कुठाराघात देनेवाला सबसे बडा अभिशाप है । श्रमण कहते हैं कि "मनुष्य के कुल से ऊपर उसका कर्तव्य और शील है ।"[1]

"अंधेरे के जुगनू" में हमारी जातीय संस्कृति, वर्ण-व्यवस्था, गणतंत्रात्मक शासन-प्रणाली के ऐतिहासिक महत्व, दास-प्रथा, राजनीतिक षड्यंत्र आदि मुख्य प्रतिपाद्य विषय है । इसलिए इसमें धार्मिक और सांस्कृतिक पहलुओं को सामाजिक यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में आँका गया है ।

हर्षकालीन भारतीय संस्कृति और "चीवर"

वर्द्धन वंश के शासकों के समय भारत में शाँति एवं वैभव संपन्नता वर्तमान थी । अतः राजनीति, समाज, धर्म एवं संस्कृति सभी क्षेत्रों में हर्षकालीन भारतीय इतिहास का अपना महत्व है । हर्षवर्द्धन के काल में कान्यकुब्ज महानगर हो चला था । आज के दो सौ वर्ष पूर्व जो गौरव पाटलीपुत्र को प्राप्त था, वह अब धीरे-धीरे यहीं एकत्र होता जा रहा था । चीन तक से व्यापारी यहाँ आते थे । इस काल में बौद्ध धर्म की विशेष उन्नति हुई थी । महानगर में ब्राह्मण धर्म तथा बौद्ध धर्म दोनों के ही अनुयायी यहाँ प्रचुर मात्रा में पाए जाते थे । रांगेय राघव ने "चीवर" में इसका वर्णन किया है -"ढाई कोस लंबे और आधे कोस से भी अधिक चौडे नगर में सौ बौद्ध मठ थे जिनमें दस सहस्र से अधिक महायान तथा हीनयान संप्रदायों के भिक्षु थे और दो

---

1. रांगेय राघव - अंधेरे के जुगनू - पृ. 166

सौ देव मंदिरों में कितने सहस्र साधु वास करते थे, यह कहना कठिन था । कान्यकुब्ज में जैन तीर्थंकर ऋषभदेव, राम, कृष्ण तथा बुद्ध के अतिरिक्त महावराह, सूर्य, शिव आदि की उपासना करनेवाले भी थे ।"[1]

"इस समय प्रयाग और वाराणासी ब्राह्मण धर्म के केन्द्र बन चुके थे । कपिल, कणाद तथा जैमिनी के अनुयायियों के विवादों की धूम थी । लोकमतों की महत्ता नष्ट नहीं हुई थी । केशलुञ्चक, पाशुपत तथा भागवतों की विभिन्न धाराएँ आकर फल-फूल रही थी । नगरवासी भी कापालिक, अघोर, चीनाचार, जूतिक आदि के विषय पर विवाद करते थे ।"[2] हर्ष के काल में ही चीनी यात्री ह्वेन-सांग भारत में आए । इस समय बौद्ध धर्म, जैन धर्म, ब्राह्मण धर्म आदि का प्रचार था । किन्तु बौद्ध धर्म को ही राज्याश्रय प्राप्त था । इसीलिए अपार धन के केन्द्र बौद्ध मठों का प्रभुत्व यहाँ समृद्धि पर था । इस समय कोशाम्बी, श्रावस्ती तथा वैशाली में बौद्ध पताका झुक चली थी । बौद्ध धर्म के दो संप्रदाय हो गए थे - महायान और हीनयान । "बौद्ध धर्म के अठारह शाखाएँ भी हो चुकी थीं और वज्रयानी अपनी साधना को पहले की भाँति गुह्य नहीं रखते थे । जैन धर्म और समरत की भाँति कान्यकुब्ज में शक्तिशाली नहीं होते हुए भी, दिगम्बर साधुओं की कमी नहीं थी ।"[3]

---

1. रांगेय राघव - चीवर - पृ. 12-13
2. वही - पृ. 13
3. वही - पृ. 13

हर्षकाल में नालन्दा विद्या का विशाल केन्द्र था, जहाँ भारतीय संस्कृति के विकास की ओर विशेष प्रयास हो रहा था । यहाँ प्राचीन साहित्य के पठन-पाठन पर बल दिया जाता था । इस समय नालन्दा केवल बौद्ध साहित्य के पठन-पाठन का स्थान न रहकर भारतीय संस्कृति के विस्तार का केन्द्र बन गया था । नालन्दा में संस्कृत के पठन-पाठन का भी प्रबन्ध हो गया था । नालन्दा की ख्याति इतनी बढ़ी थी कि विदेशों से भी विद्यार्थी यहाँ आने प्रारंभ हो गए । हर्षवर्द्धन ने नालन्दा को आर्थिक सहायता दी थी । नालन्दा विख्यात विद्वान, आचार्यों, प्राचार्यों एवं छात्रों की सांस्कृतिक उन्नति के लिए प्रसिद्ध था ।

"चीवर" उपन्यास में रांगेय राघव ने बौद्ध धर्म के व्यापक प्रभाव को दिखाया है । बौद्ध धर्म ने भारतीय संस्कृति पर गहरा प्रभाव छोड़ दिया है । उपन्यास में राज्यश्री कहती है -"तथागत, मैं जानती हूँ मनुष्य का सुख सदैव ही नहीं रहता, किन्तु भगवान ! क्या जो आनन्द आपने मुझे दिया है उसे मैं अस्वीकार कर दूँ ?"

वृद्ध भिक्षु ने शांत स्वर में कहा -"देवी ! मन को साधो । आनन्द बुरा नहीं है, क्योंकि तुम अभी गृहस्थ हो । तुम्हारे लिए यही अच्छा है ।"[1] उपन्यास में राज्यश्री और हर्षवर्द्धन दोनों बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर प्रव्रज्या स्वीकार करते हैं । इसमें वज्रयानी, हीनयानी, महायान, वामाचार,

---

1. रांगेय राघव - चीवर - पृ. 8

कौलाचार, कापालिक आदि बौद्ध धर्म की अन्य शाखाओं का उल्लेख भी उपन्यास में मिलता है । इसमें लोकायत दर्शन का परामर्श भी दिया गया है ।

भारतीय संस्कृति में नारी को पूज्य स्थान दिया गया है । "चीवर" में हर्षवर्द्धन कहता है -"सैनिकों । आज मैं फिर शपथ ग्रहण करता हूँ, जहाँ भी स्त्री पर अत्याचार होगा वहाँ मेरा खड्ग प्रलय की प्रचण्ड वह्नि की भाँति चलेगा । मैं मनुष्य की यह जघन्यता कभी भी स्वीकार नहीं कर सकता । राज्य के लिए युद्ध होता रहे, किन्तु माता और भगिनी पूज्य हैं उन पर किसी को भी बलात्कार का अधिकार नहीं है ।"[1] उसीप्रकार भारतीय संस्कृति में ज्ञान का महत्व सबसे बढकर है । उपन्यास में चीनी यात्री ह्वेन-सांग का स्वागत करते हुए हर्षवर्द्धन कहता है -"हमारे लिए यह गौरव का विषय है कि ऐसा पंडित हमारे यहाँ उपस्थित है । हमारे राज्य के उद्भट पंडितों ने जो एक नए विद्वान को स्वागत में यह महान सौहार्द्र प्रदर्शित किया है, उससे हमारा शीश उन्नत हो गया है । हमारे सामने ज्ञान मनुष्य का चरम विकास है ।"[2]

प्राचीन भारत में कवियों को सम्मानित और आदर करने की परंपरा थी । कवियों को राज्याश्रय प्राप्त था । "चीवर" में संस्कृत का महाकवि बाणभट्ट हर्षवर्द्धन का राजकवि है । "हर्ष ने बाणभट्ट को देखकर

---

1. रांगेय राघव - चीवर - पृ. 106
2. वही - पृ. 225

उसके चरण स्पर्श किए, वह ब्राह्मण था । उसने दोनों हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया था ।"[1] "राज्यश्री ने जिस समय कादम्बरी सुनी उसका हृदय विचलित हो गया ।"[2] हर्ष भी कवि है । उसने "रत्नावली नाटिका" की रचना की । "चीवर" में इसकी ओर संकेत मिलता है -"रात में हर्ष रचित "रत्नावली नाटिका" का अभिनय हुआ ।"[3] इसप्रकार रांगेय राघव ने "चीवर" में शिखर सांस्कृतिक कार्य के रूप में कलात्मक कार्य कलाप को प्रस्तुत किया है । भारतीय संस्कृति का एक उज्ज्वल पक्ष हमारे प्राचीन साहित्य की गरिमामय स्थिति है । यहाँ "कविरेव प्रजापति" वाली बात चरितार्थ होती है ।

भारतीय संस्कृति में अहिंसा और शाँति को अधिक महत्व दिया गया है । "चीवर" उपन्यास में हर्षवर्द्धन और पुलिकेशन के बीच युद्ध की संभावना पर राज्यश्री की इच्छा से संधी का प्रस्ताव रखा जाता है । संधी की स्थापना के बारे में राज्यश्री कहती है -"सम्राट, आज नर्मदा की लहरों पर जो इतिहास लिखा गया है वह उत्तरपथ और दक्षिणपथ कभी भी नहीं भूलेगा । आज युद्ध के स्थान पर शाँति छा गई है । व्यर्थ की हत्या का अंत हो गया है । सहस्रों नारियाँ आपको आज हृदय से आशीर्वाद देंगी । प्रजा का स्नेह और सुख से पालन करें । कभी भी हिंस्र भावों को हृदय में न लायें क्योंकि उनसे मन में विनाश होता है । वह विनाश भय की सृष्टि करता है । स्वार्थ इस विनाश का केन्द्र है, अपहरण उसकी प्रवृत्ति है ।"[4] यहाँ बौद्ध धर्म का व्यापक

---

1. रांगेय राघव - चीवर - पृ. 108
2. वही - पृ. 178
3. वही - पृ. 175
4. वही - पृ. 254

प्रभाव देखने को मिलता है । इसप्रकार "चीवर" में उपन्यासकार ने हर्षकालीन भारतीय संस्कृति के सभी पक्षों को उजागर किया है ।

भारतीय संस्कृति में बौद्ध-जैन धर्म का परिदृश्य - "पक्षी और आकाश" तथा "राह न रुकी"

बौद्धकाल में भारत 16 जनपदों में विभक्त था । इन जनपदों में परस्पर वैमनस्य रहता था । देश में राजनीतिक एकता का अभाव था । समस्त देश छोटे-छोटे जनपदों में विभक्त था । इन जनपदों का संकेत "राह न रुकी" में मिलता है ।[1] तत्कालीन समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जैसे चार वर्ण थे । इनमें आपस में द्वेष रहता था । छठी शताब्दी ई.पू. का यह समय भारत में बौद्धिक बेचैनी, शंका और मानसिक कोलाहल का काल था । सृष्टि का रहस्य क्या है ? इसके पता लगाने में यहाँ के दार्शनिक अतीव तत्पर थे । वैदिक धर्म पूर्ण नहीं है, इसका प्रमाण उपनिषदों में मिलने लगा था । वेदों की प्रामाणिकता में उपनिषदों ने संदेह नहीं किया । किन्तु वैदिक धर्म के काम्य स्वर्ग को अयथेष्ट बताकर वेदों की एकप्रकार की आलोचना उपनिषदों ने ही शुरू कर दी थी । ईसा के छह सौ वर्ष पूर्व तक आकर वैदिक धर्म के खिलाफ खुले विद्रोह को जन्म दिया । इसका संगठित रूप जैन और बौद्ध धर्मों में प्रकट हुआ है ।

जाति-प्रथा को चुनौती देकर बुद्ध ने भारत में एक महान आन्दोलन की शुरूआत की । उन्होंने मनुष्य की मर्यादा को यह कहकर ऊपर

1. रांगेय राघव - राह न रुकी - पृ. 51-54

उठाया कि कोई मनुष्य केवल ब्राह्मण कुल में जन्म लेने से पूज्य नहीं हो जाता, न कोई शूद्र होने से पतित होता है । "पक्षी और आकाश" उपन्यास में रांगेय राघव ने इसका संकेत दिया है - "बुद्ध ने कहा - नहीं भिक्षु । कोई जाति श्रेष्ठ नहीं, मनुष्य का शील श्रेष्ठ है ।"[1]

बौद्ध-धर्म की तरह जैन धर्म भी कर्मवादी है । उसका उद्देश्य मनुष्य के कर्मों को परिष्कृत एवं उन्नत बनाना है । प्रत्येक जैन गृहस्थ को पंचव्रत का प्रण लेना पडता है । जैसे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह । जैन धर्म और बौद्ध धर्म की समानता यह है कि दोनों पशु-हिंसा के विरोधी हैं । यद्यपि आगे चलकर बौद्ध मरे हुए पशु का मांस खाना बुरा नहीं मानने लगे । किन्तु जैन हिंसक या अहिंसक सभी प्रकार के अमिष को अग्राह्य मानते हैं । दोनों धर्म वेद की प्रामाणिकता को अस्वीकार करते हैं । बौद्धों का मूल साहित्य प्राकृत में है और जैनों के अधिकतर साहित्य अपभ्रंश में ।

बौद्ध धर्म सबसे पहले गण के क्षत्रियों ने अपनाया था । बाद में बौद्ध धर्म हीनयान और महायान में विभक्त हो गया । पहले हीनयान था जो जीवन को दु:खी मानता था । वह जब महायान में बदल गया तो उसमें जीवन में सुख की ओर अग्रसर होने का भाव बढा । बाद में बौद्ध लोगों ने ब्राह्मणों के पौराणिक धर्म की नकल कर देवी-देवताओं की पूजा शुरू की और अवतारवाद के रूप में बोधिसत्व की अवतारणा की । जैसे कि वह वैष्णवों में

---

1. रांगेय राघव - पक्षी और आकाश - पृ. 233

उतर गया तभी बुद्ध को विष्णु का अवतार मान लिया गया । कालान्तर में बौद्ध धर्म वज्रयान में बदला जिसमें शक्ति की उपासना हुई थी । जादू-टोना, तंत्र-मंत्र इत्यादि भी इसमें शामिल हुए थे । बाद में इसमें कौल मत भी मिल गया जो व्यक्तिपरक साधना का ही रूप था । इसके बाद वह सहजयान बना जिसमें योगी साधनाएँ स्वीकृत थीं किन्तु तंत्र मंत्र का विरोध था, ब्राह्मण विरोध था ।

इन सबके बावजूद बौद्ध धर्म ने जो अहिंसा का सिद्धांत प्रस्तुत किया है वह व्यापक मानव प्रेम का परिचायक है । रांगेय राघव ने इस बात पर ज़ोर दिया है । उनके शब्दों में -"बौद्ध धर्म में एक विशेष बात था, उसका व्यापक मानव प्रेम । उसने ही भारत के बाहर जाकर लोगों को जीता । बौद्ध धर्म भारत में शायद कभी नहीं मरता, क्योंकि कुछ भी हो, उसमें मानव के प्रति प्रेम का ऐसा ज्वलंत तेज़ था, जो बहुत ही महान था । भले ही दार्शनिकों ने चमत्कार दिखाकर बुद्ध के सीधे-सादे पर अस्पष्ट, चिन्तन पक्ष को दुरूह बनाया था । परन्तु बुद्ध के आर्य-सत्य मानवमात्र के आचार-व्यवहार के लिए उत्कृष्ट थे ।"[1]

रांगेय राघव ने "पक्षी और आकाश" शीर्षक उपन्यास में बौद्ध धर्म के व्यापक प्रभाव को रेखांकित किया है । बुद्ध से प्रभावित होकर वेतनभोगी सैनिक संघ में प्रव्रज्या स्वीकारने गए तो राज्य शासन बिगड गया ।

---

1. रांगेय राघव - महायात्रा गाथा, रैन और चंदा - पृ. 259

ऋणी भी ऋण लेकर जाते हैं, संघ में प्रव्रज्या ले लेते हैं तो व्यापार बिगड गया । क्योंकि राज्य के कर्मचारी, संघ में जाकर ऋणियों को नहीं पकडते । इसीलिए बुद्ध ने संघ में आवश्यक परिवर्तन किया । उपन्यास में बुद्ध कहते हैं कि "भिक्षु संघ का निर्माण लोक में ज्ञान की ज्योति फैलाने के लिए है । यहाँ कर्मों का क्षय है, कर्मों का जाल नहीं । दुःख से छुटकारा पाया जाता है । आज से जो स्त्री अपने पति, पुत्र, पिता से, जो दास अपने स्वामी से, जो सैनिक अपने वेतनदाता से, जो ऋणि अपने ऋणदाता से सविनय आज्ञा लेकर स्व मुक्त होकर नहीं आता, उसे प्रव्रज्या मत दो ।"[1]

"पक्षी और आकाश" में जैन धर्म के प्रभाव को भी दिखाया गया है । उपन्यास में शालिभद्र और धनकुमार महावीर से दीक्षा लेता है । महावीर कहते हैं कि "उतार दो यह वस्त्र । ये लज्जा का कारण भीतर के पापों को छिपाता है । नग्न हो जाओ, तब देखो कि तुम अपने को विकारों की कुरूपता से छिपा सकते हो या नहीं । नोच दो ये केश, ये तुम्हें सुन्दरता का भ्रम देते हैं, इन्हें चिकना मत करो, हृदय में दया और अहिंसा के स्नेह को जागृत करो । इस देह को दुख दो, क्योंकि इस देह की आत्मा को इस देह ने पाप में डाला है..... छोटे परिवार से विशाल परिवार में आओ । इन्द्रियों को जीतने का मार्ग है जिनमार्ग ।"[2]

बौद्ध धर्म के अलावा इस उपन्यास में अन्य प्रसंग भी आ गए हैं जिनके ज़रिए उपन्यासकार ने पुरानी संस्कृति की तेजस्विता को प्रस्तुत

---

1. रांगेय राघव - पक्षी और आकाश - पृ. 233
2. वही - पृ. 249-50

किया है । आलोच्य उपन्यास में प्राचीन भारत की सांस्कृतिक गरिमा का भी उल्लेख किया है -"पाणिनी नामक ऋषि ने यहाँ बड़ा अच्छा व्याकरण बनाया था जो तक्षशिला विद्यालय में पढ़ाया भी जाता था । तक्षशिला में संसार के सब देशों से अभिजात युवक आते थे । चीन के भी, पारसीक देश के भी । यवन, मिश्री भी आते थे । वहाँ बड़े बड़े विद्वान होते थे । वज्जिय, शाक्य, मल्ल, विदेह, मागध, यहाँ तक कि प्राग्ज्योतिषवासी तक ज्ञान की अग्नि के लिए वहाँ जाते थे और स्नातक होकर लौटते थे । कितना प्राचीन था वह विद्यालय, यह कौन जानता था । दक्षिण के चोल और पांड्य से युवक प्राय: वहाँ समुद्र मार्ग से जाते । वे पहले भरुकच्छ आते फिर द्वारका और तब उत्तर में स्थल-मार्ग पकड़ते ।"[1] प्राचीन काल में तक्षशिला, नालन्दा आदि प्राचीन विश्व-विद्यालयों ने भारतीय संस्कृति के गौरव को बढ़ाया था । यहाँ के दार्शनिकों की चिन्तन-प्रखरता पाश्चात्य लोगों को भी भारत की ओर आकर्षित करती थी । "पक्षी और आकाश" में जैन और बौद्ध धर्म और अन्यान्य सांस्कृतिक प्रभाव के माध्यम से प्राचीन भारत की सांस्कृतिक गरिमा को भी अंकित किया है ।

"राह न रुकी" उपन्यास में उपन्यासकार की दृष्टि जैन धर्म की ओर गई है । उनके अनुसार जैन धर्म, बौद्ध धर्म का अग्रिम पथ है जो अधिक उदार, सशक्त और मानवतावादी है । उनके शब्दों में -"लोगों ने प्राय: बुद्धमत को अधिक देखा है, उन्हें जैनमत का भी व्यापक प्रभाव देखना चाहिए । जैनमत को अपनानेवालों ने अपने समय में बड़े-बड़े प्रयोग किए थे,

---

1. रांगेय राघव - पक्षी और आकाश - पृ. 115-116

जो आज भी अपना महत्व रखते हैं । एक दृष्टि से महावीर का मत अधिक व्यापक था । क्योंकि उन्होंने गृहस्थ को अधिक महत्व दिया था और स्त्रियों को उन्होंने साधना के पथ में प्राय: बराबरी का दर्जा दे दिया था ।"[1] किन्तु जैन धर्म का पलायनवादी रूप रांगेय राघव को स्वीकार्य नहीं है । क्योंकि इससे जनहित और स्वस्थ समाज की भावनाओं को गहरा आघात लगता है । "राह न रुकी" में दधिवाहन कहता है -"तप और वन । यह जीवन से भागना है । लोक में इससे परिवर्तन नहीं होगा । तपस्वि इस लोक को ठीक नहीं कर पाता तो यहाँ से भाग जाता है, परन्तु यह मैं ठीक नहीं समझता ।"[2] संयम के साथ जीवन-संघर्ष में प्रयत्नरत रहना मनुष्य का सबसे पुनीत कर्तव्य है । उपन्यास में दूसरी जगह दधिवाहन ने यह भी व्यक्त किया है -"लोक में संयम का अर्थ तपस्वियों के कारण पलायन हो गया है । भाग जाओ, छोडकर भाग जाओ । मैं भागूँगा नहीं । संयम का अर्थ घुटन और सडना नहीं है ; स्वस्थ बहाव है । अपनी स्वार्थ की चिंता करना पशुत्व का उत्तराधिकार है । उससे ऊपर उठने की आवश्यकता को देखकर मनुष्य उठ नहीं रहा है ।"[3]

सति वसुमति को जैन साहित्य में चंदनबाला के नाम से बडी साध्वी के रूप में माना गया है । उसका महत्वपूर्ण स्थान है । महावीर ने स्त्री संघ के लिए उसे ऊपर जगह दी है । "राह न रुकी" में जैन महावीर की चर्चा भी की गई है -"श्रमण ने पन्द्रह दिन का उपवास तोडा है, यह लडकी धन्य है जिससे इस तपस्वी ने भिक्षा ली है ।"[4] वर्द्धमान महावीर

---

1. रांगेय राघव - राह न रुकी - भूमिका
2. वही - पृ. 137
3. वही - पृ. 140
4. वही - पृ. 168

कहते हैं कि "लोक में व्यक्ति सुख की इच्छा से पाप करता है । सुख तब आता है जब एक व्यक्ति दूसरे से कुछ अधिक प्राप्त करके, उसे कम देना चाहता है । इसलिए उसे सुख मत समझो, जो अत्याचार से मिलता है ।"[1] इसप्रकार "राह न रुकी" में बुद्ध-महावीर युग के उस पुनर्जागरण को प्रस्तुत किया गया है जो हज़ारों साल के वैदिक युग के अंत में भारत में उपस्थित हुआ था । भारत में यह युग सामंतीय संस्कृति के उदयकाल था ।

अपने प्रत्येक ऐतिहासिक उपन्यास में रांगेय राघव ने भारतीय संस्कृति के किसी-न-किसी पहलू को प्रश्रय दिया है । यहाँ पर ध्यान देने योग्य पक्ष यह है कि उनका दृष्टिकोण अधिक जनवादी तथा मानवीय है । उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि मैं ने तो भारतीय जनता को सामने रखा है । जिस संस्कृति ने जहाँ जनता का लाभ किया है, मैं ने वहीं स्वीकार किया है । मानवता के ऊपर कोई सत्य नहीं है । यह सदियों पहले भारत में तय किया जा चुका है ।"[2] रचनाकार चाहे वर्तमान में लीन हो जाए या अतीत में उसका आकर्षण जीवन के केन्द्र के प्रति होना चाहिए । रांगेय राघव ऐसे उपन्यासकार हैं जो अपने ऐतिहासिक उपन्यास में उपलब्ध इतिहास का आधार ग्रहण नहीं किया । उन्होंने अनुपलब्ध इतिहास को अपनाकर वस्तुत: भारतीय संस्कृति की खोज की है । यह खोज इसलिए निरर्थक नहीं है कि इसको रांगेय राघव ने निरंतर मानवीय सभ्यता की कसौटी पर कस लिया है । मनुष्य को जीवन रूपी अनवरत यात्रा में रुचि रखने के कारण उपन्यासकार के विभिन्न युगों की ऐसी जाँच-पड़ताल की है और मानवीय सभ्यता के पदचिह्नों को पकड़ने का

---

1. रांगेय राघव - राह न रुकी - पृ. 175
2. रांगेय राघव - महायात्रा:गाथा, रैन और चंदा भूमिका

कार्य किया है । भारत का इतिहास इतना पुराना है कि उसमें कई क्षेत्रों के व्यक्तियों ने अपने-अपने ढंग से गोता लगाया है । यहाँ रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासकार ने भी यही किया है । उनके अनुमान एवं निष्कर्ष सही इतिहास की कसौटी पर खरी न उतरे फिर भी उनकी मानवसापेक्ष इच्छा-शक्ति और भारतीयता की पहचान में निहित समर्पित भाव का विरोध करना कठिन है ।

निष्कर्ष

रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रमुख उद्देश्य प्राचीन भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं का सरल एवं सुबोध रूप से प्रामाणिक दिग्दर्शन कराना है । उन्होंने इन उपन्यासों में भारतीय संस्कृति और इतिहास के अन्तस्संबंधों को भी रेखांकित किया है । इतिहास और संस्कृति के कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों और आयामों को उपन्यासों का आधार भी बनाया गया है । उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में भारतीय संस्कृति की महत्ता तथा हमारी सांस्कृतिक एकता की महत्वपूर्ण विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला गया है । यद्यपि इनमें कई प्रसंग अनुमानित और कल्पित हैं फिर भी इतिहास की प्रामाणिकता का पुट देकर रांगेय राघव ने भारतीय संस्कृति की विराटता को प्रक्षेपित किया है । विशिष्टताओं को रेखांकित करते समय उनका दृष्टिकोण मात्र अतीत का गौरवगान नहीं रहा है क्योंकि प्राचीन काल के वैषम्यों को भी उन्होंने प्रस्तुत किया है । सांस्कृतिक परंपरा के उत्स की खोज करनेवाले उपन्यासकार की भूमिका ही इन में अधिक बलवती है । अपने चिन्तन क्षेत्र को उन्होंने सृजनात्मक दिशा प्रदान की और ऐसे अतीतकालीन पृष्ठ रंगीन चित्रों में परिवर्तित होते गए । ऐसे उपन्यास हिन्दी में राहुल सांकृत्यायन या हज़ारीप्रसाद द्विवेदी

की लेखनी से निसृत हुए हैं । उन्हीं के साथ रांगेय राघव को स्थान दिया जाना चाहिए । प्राचीन भारतीय संस्कृति की गरिमा, वैशिष्ट्य, विषमताएँ, समयानुकूल परिवर्तन, अनेक प्रकार के द्वन्द्व आदि को औपन्यासिक चित्रपट पर उन्होंने अपनी कलात्मक दक्षता के अनुरूप प्रस्तुत किया है ।

अध्याय : पाँच

रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों का शिल्पपरक अध्ययन

उपन्यास और शिल्प

शिल्प-विधि अंग्रेज़ी के "टेकनीक" का पर्यायवाची शब्द है । "टेकनीक" का अर्थ है ढंग, विधान अथवा वह मार्ग जिसके माध्यम से रचनाकार अपनी अभिव्यक्ति-क्षमता को सफलतापूर्वक व्यंजित करता है । उपन्यास में कथावस्तु, पात्र, पात्र और वस्तु की अन्विति आदि के माध्यम से ही जीवन की व्याख्या संभव है । अत: इन तत्वों के उचित सन्निवेश से लेखक अपने रचना-कौशल को प्रकट करता है । उपन्यासों में इन तत्वों का विकास तथा जीवन की व्याख्या प्रस्तुत करने का ढंग प्रत्येक उपन्यासकार का अपना होता है । इसीलिए उपन्यास की शिल्प-विधि का निर्धारण मुख्यत: उपन्यासकार की दृष्टि अथवा दर्शन पर ही आश्रित होता है । रचनाकार की अनुभूति जितनी तीव्र, व्यापक और युगान्तकारी होती है उतनी ही उसकी दृष्टि और शिल्प-विधि संयत, विश्लेषणात्मक और मौलिक होती है ।

अपने विचारों, भावों तथा परिस्थितियों और पात्रों को विशेष प्रकार से या विशेष क्रम में प्रस्तुत करने का प्रयास ही शिल्प के विन्यासगत स्वरूप के अंतर्गत आ जाता है । डॉ. सत्येन्द्र के शब्दों में "इस विन्यासगत रचना-कौशल को ही किसी साहित्यिक कृति का शिल्प-विधान माना जा सकता है ।"[1] उपन्यास लिखते समय उपन्यासकार मुख्यत: अपने कथा शिल्प के दो रूप प्रस्तुत करता है - एक ओर उसका रचना-कौशल उपन्यास में वर्ण्य-विषय की प्रकृति के अनुसार निर्मित होता है तो दूसरी ओर वह उसके निजी व्यक्तित्व से अनुप्राणित होता है । उपन्यासकार

---

1. डॉ. सत्येन्द्र - कहानी का शिल्प-विधान - 1953

जिस वर्ण्य-विषय का चयन करता है, जिन चरित्रों की अवतारणा करता है उनकी समस्त विकासोन्मुख संभावनाओं पर एक सूक्ष्म दृष्टि डालता है । वह उनकी विशिष्टता की रक्षा करते हुए उन्हें अपनी अनुभूति के संप्रेषण का माध्यम भी बनाता है । यहाँ उपन्यासकार अपनी निजी भाषा-शैली का प्रयोग करता है । उसके निजत्व की विशिष्ट छाप ही शैली के अभिव्यक्तिपरक अस्तित्व को प्रमाणित करती है । इसप्रकार विन्यासगत निजता और शैलीगत विशिष्टताओं के कारण प्रत्येक रचनाकार की अलग अलग पहचान होती है ।

उपन्यासकार के मस्तिष्क में जब भाव और अनुभूति की प्रेरणा घनीभूत होती है तब वह सृजन-कार्य में तल्लीन हो जाता है । अपने इस प्रयत्न में वह उपन्यास कला के जिन-जिन उपकरणों को जिस-जिस ढंग से अपनाता है वे ही उसकी शिल्प-विधि का स्वरूप निर्धारित करते हैं और उसके अंग बनते हैं । कृति की सफलता और असफलता उसकी शिल्पगत श्रेष्ठता पर निर्भर होती है । इसीलिए किसी भी उपन्यास का मूल्यांकन करते वक्त हमें कथा की सार्थकता-निरर्थकता से संबंधित मूल्यों तथा उद्देश्यों के अतिरिक्त शिल्पगत सौंदर्य और विशिष्टता पर भी ध्यान देना चाहिए । हज़ारीप्रसाद द्विवेदीजी के शब्दों में -"निस्संदेह उपन्यास और कहानियों के गठन में ही ऐसी शिल्प चातुरी है जो तरल-धर्मी है और परिस्थिति के अनुकूल होने की क्षमता से संपन्न है । यह शिल्प-चातुरी बड़े ही महत्त्व की चीज़ है ।"[1] अतः प्रत्येक मौलिक उपन्यासकार विषय के साथ-साथ अपने शिल्प की भी रचना करता है ।

---

1. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी - कहानी और उपन्यास एक समीक्षा - साहित्य संदेश - जनवरी-फरवरी अंक, 1953.

ऐतिहासिक उपन्यासों की शिल्प-विधि में वातावरण का महत्व

ऐतिहासिक उपन्यास की रचना-प्रक्रिया में घटना, पात्र, वातावरण एवं ऐतिहासिकता की एक-सूत्रता तथा कलात्मक अभिव्यंजन अनिवार्य है । ऐतिहासिक उपन्यास के शिल्प-विधान में कथावस्तु, चरित्र तथा भाषिक संगठन वातावरण पर आश्रित होते हैं । ऐतिहासिक वातावरण की जीवन्तता में हानि पहुँचती है तो उपन्यास का महत्व घट सकता है । इसीलिए ऐतिहासिक उपन्यास में चित्रित वातावरण की सार्थक अभिव्यक्ति ही उपन्यासकार की पहली और अंतिम शर्त है । उपन्यास में ऐतिहासिक वातावरण के सृजन के लिए या किसी विशिष्ट ऐतिहासिक कालखंड का प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करने के लिए उसे अतीतयुगीन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन की सर्वांग जानकारी आवश्यक है । इतिहास, परंपरा, रीति-रिवाज़, आदर्श, आस्था और भाषा की अभिव्यक्ति के लिए उपन्यासकार को ऐतिहासिक यथार्थ की सही पहचान अनिवार्य है । इसके लिए उसे ऐतिहासिक ग्रंथों के अध्ययन के साथ-साथ जनश्रुतियों, किंवदन्तियों और क्षेत्र तथा काल-विशेष की परंपराओं का अध्ययन करना पडता है । ऐतिहासिक यथार्थ के चित्रण में उपन्यासकार का जो ढंग होता है वह इतिहास से भिन्न है । वह भावपरक होता है । पात्रों और घटनाओं को अधिकाधिक संवेदनशील बनाकर वह तद्युगीन जीवन को अधिक भावात्मक बनाता है ।

ऐतिहासिक उपन्यास का प्रमुख उपादान वह वातावरण है जिसमें उसके पात्र साँस लेते हैं और घटनाएँ घटित होती हैं । कथावस्तु को वास्तविकता का आभास देने के साधनों में वातावरण का महत्व उल्लेखनीय

है । परन्तु "देश-काल या वातावरण के चित्रण में सदा इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि वह कथानक के स्पष्टीकरण का साधन ही रहे, स्वयं साध्य न बन जाएँ । जहाँ देश-काल का वर्णन अनुपात से बढ़ जाता है वहाँ उसके जी ऊबने लगता है, लोग जल्दी-जल्दी पन्ने पलट कर कथा-सूत्र को ढूँढने लग जाते हैं । अतः कथानक को स्पष्टता देने के लिए ही इसका वर्णन होना चाहिए न कि उसकी गति में बाधा डालने के लिए ।"[1]

ऐतिहासिक उपन्यास के कथानक का स्वरूप

इतिहास और कल्पना के संयोग से निर्मित ऐतिहासिक उपन्यास का मूल आधार इतिहास और ऐतिहासिक पात्र एवं सृजित ऐतिहासिक वातावरण आदि हैं । इन ऐतिहासिक घटनाओं के साथ अनेक अन्य दंत कथाओं, आख्यानों अथवा लोक विश्रुत प्रसंगों को जोडकर सरस और संभावनापूर्ण कथानक की रचना की जाती है । उसका कथानक इतना संतुलित, पूर्ण एवं जीवन्त होना चाहिए कि उसके द्वारा अतीत काल पाठक के समक्ष सर्वांगीण रूप से साकार हो उठता है । कथानक की जीवन्तता इस बात पर निर्भर है कि उसमें स्वाभाविकता और ऐतिहासिक यथार्थ को किसप्रकार संयुक्त किया गया है । यदि वह सीमातीत ढंग से कल्पना प्रवण हो गया है तो उसके इतिहास सम्मत होने की मान्यता के विरुद्ध पड जाता है । तब कलात्मकता अपने आप नष्ट हो जाती है । इसके अतिरिक्त जब कोई ऐतिहासिक उपन्यासकार प्रामाणिकता के मोह में पडकर ऐतिहासिक तथ्यों के अनावश्यक संयोजन द्वारा उपन्यास को नीरस बनाए तो उपन्यास की कलात्मकता पुनः क्षीण पड जाती है ।

---

1. गुलाबराय - काव्य के रूप - पृ. 169

सफल ऐतिहासिक उपन्यास की रचना के लिए उपन्यासकार को अपने से भिन्न काल की सामाजिक स्थिति, जीवन-पद्धति एवं परिवेश की जीवन्तता को प्रस्तुत करना है । उपन्यास में लेखक किसी अतीतकाल का प्रत्यक्षीकरण और पुनर्मूल्यांकन प्रस्तुत करता है । ऐतिहासिक उपन्यासों के कथानक में भी वे सभी विशेषताएँ होनी चाहिए जिनकी अपेक्षा अन्य उपन्यासों में की होती है । यहाँ कथा का क्रम अपने स्वाभाविक विकास को तभी प्राप्त कर सकता है जबकि उसमें घटना-क्रम सुसंगठित हो । उपन्यास में अथ से इति तक घटनाओं का पूर्वापर संबंध को बनाए रखना है । "ऐतिहासिक उपन्यास जिस इतिहास सत्य को प्रत्यक्ष कराता है उसकी शक्यता कथारस की अवस्थिति में ही होती है । अतः इसमें पाठकों की जिज्ञासा को निरंतर बनाए रखने और अभिवृद्ध करते रहने की अनिवार्यता है ।"[1] प्रत्येक ऐतिहासिक घटनाक्रम को पाठक पहले से ही जानता है । इसीलिए ऐतिहासिक उपन्यास लोक-विश्रुत दंतकथाओं की अपेक्षा उन अप्रचलित ऐतिहासिक तथ्यों का अधिक आश्रय लेता है जिनमें कल्पना के लिए उर्वर पृष्ठभूमि मिल जाती है । ऐतिहासिक घटनाओं के साथ वह काल्पनिक पात्रों से संबंध जोडकर उनके बीच कल्पना-क्षेत्रों का सृजन कर सकता है । इतिहास प्रसिद्ध घटनाओं का संबंध किसी व्यक्ति विशेष से होता है । इन व्यक्तियों के साथ उपन्यासकार काल्पनिक पात्रों और उनके परिवेश की रचना कर लेता है तो उपन्यास की ऐतिहासिकता अधिक प्रामाणिक हो जाती है ।

कथानक का संगठन

ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहास से कथानक का विषय-चयन करता है । इससे अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए वह एक मूल

---

1. डॉ. मक्खनलाल शर्मा - ऐतिहासिकता और हिन्दी उपन्यास - पृ. 58

कथानक की रचना करता है । मुख्य कथा की विशेषताओं को सामने लाने के लिए और अन्य प्रासंगिक सूचनाएँ देने के लिए उसे अन्य गौण प्रसंगों को भी जुटाना होता है । यहाँ उपन्यासकार को अत्यधिक कुशलता से संतुलन बनाए रखना पडता है जिससे प्रासंगिक कथाएँ प्रमुखता ग्रहण करके मुख्य कथा को पीछे न धकेल दें । "पूर्ण संगठित कथानक ऐतिहासिक उपन्यास की कसौटी है जो प्रतिभावान उपन्यासकार की कृति में परिलक्षित होता है । इस कोटि की रचना में तथ्यों का ताना-बाना इसप्रकार बुना जाता है कि वे अन्योन्याश्रित बन जाते हैं । कथानक की संयोजना इसप्रकार होनी चाहिए कि कम से कम शब्दों द्वारा अधिक से अधिक सूचनाएँ तथा घटना का क्रम पाठकों के समक्ष आ जाय ।"[1] इसीलिए उपन्यासकार लंबे इतिहास से कथानक के लिए अनुकूल घटनाओं का चयन करता है । उपन्यासकार उन घटनाओं को कथावस्तु में स्थान नहीं देता जिन्हें रखने से कथानक शिथिल हो जाता है ।

ऐतिहासिक उपन्यासों की पात्र-परिकल्पना

अन्य उपन्यासों के समान ऐतिहासिक उपन्यासों में भी पात्रों का महत्व सर्वमान्य है । ऐतिहासिक पात्रों की रचना में उपन्यासकार को उन बातों पर वरीयता देनी पडती है जिन्हें वह अपने पात्रों के माध्यम से व्यक्त करना चाहता है । पात्र-परिकल्पना के पीछे उपन्यासकार का निजी अनुभव-लोक रहता है । वह व्यक्तियों के स्वभावगत भिन्नता एवं चारित्रिक विशेषताओं को इस प्रकार उभारता है कि हर पात्र दूसरे से भिन्न हो सके । ऐतिहासिक पात्रों की सृष्टि में उपन्यासकार का दायित्व काफी

---

1. डॉ. मक्खनलाल शर्मा - ऐतिहासिकता और हिन्दी उपन्यास - पृ. 60

कठिन होता है क्योंकि एक ओर उसे इतिहास-सम्मत व्यक्ति के गुणों की रक्षा करनी होती है तो दूसरी ओर शुद्ध ऐतिहासिक प्रतीक बनने से बचाना होता है । यदि कोई पात्र बिलकुल ऐतिहासिक व्यक्ति जैसा है तो वह ऐतिहासिक प्रतीक है, औपन्यासिक पात्र नहीं । अतः उसमें उपन्यासकार की विधायक कल्पना का समावेश नहीं हो पाता है ।

ऐतिहासिक उपन्यासों में काल्पनिक और ऐतिहासिक पात्रों की समायोजना होती है । इनमें काल्पनिक पात्र ऐतिहासिक सत्य को अपनी एकरूपता में चरितार्थ करने के लिए प्रयुक्त होते हैं, जबकि ऐतिहासिक पात्रों की आयोजना ऐतिहासिक वातावरण को अधिक संवेदनशील और विश्वसनीय बनाने के लिए की जाती है । "पात्रों के चरित्रविकास में तत्कालीन परिस्थितियों का ही प्रभाव पडता है । इसलिए ऐतिहासिक उपन्यासों के पात्रों के चरित्र में तत्कालीन समाज की सारी विशेषताएँ मिलती हैं । उस युग की विचारधारा, आदर्श और प्रचलित रीति-नीति के कारण मनुष्यों के व्यक्तिगत जीवन की गति, किसप्रकार एक विशेष परिस्थिति में पडकर क्रमशः विकसित होती है, यह हमें ऐतिहासिक उपन्यासों से ज्ञात हो सकता है ।"[1] ऐतिहासिक उपन्यासों में सफल पात्र-योजना के लिए स्वाभाविकता, सजीवता, उन्नत आदर्श की कलात्मकता आदि गुणों को भी अनिवार्य माना गया है ।

ऐतिहासिक उपन्यासों की भाषा

ऐतिहासिक उपन्यास की भाषा वह माध्यम है जिसकी

---

1. पद्मलाल पुन्नालाल बख्शी - हिन्दी कथा साहित्य - पृ. 227

सहायता से वर्ण्य-विषय को प्रेषणीय बनाया जाता है । उपन्यास में अनुभूत भावनाओं तथा विचारों को भाषा के द्वारा ही दूसरों तक पहुँचाया जा सकता है । उपयुक्त भाषा के अभाव में लेखक का विचार-क्षेत्र और उदात्त भावनाओं का महत्त्व नगण्य है । क्योंकि बिना वांछित भाषा के इन्हें प्रकट नहीं किया जा सकता । इसीलिए भाषा की शक्ति अपरिमेय है ।

ऐतिहासिक उपन्यास की भाषा के संबंध में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि केवल विषयवस्तु की अभिव्यक्ति के माध्यम के अतिरिक्त वह इतिहास सत्य का बोध कराती है । भाषा के अनेक प्रयोगों द्वारा उपन्यासकार इतिहास को सामने लाता है । उस काल के संबोधन, पदों के नाम, व्यक्तियों के नाम एवं अन्य सब कुछ आज की तुलना में भिन्न होते हैं । ये सारी बातें ऐतिहासिक उपन्यास को भाषा के लिए चुनौती बनकर आती हैं । "ऐतिहासिक उपन्यास में वातावरण के जीवन्त चित्रण के लिए भाषा को युग के अनुकूल या उसकी संवेदना के अनुकूल ढालना होगा । यदि किसी उपन्यास में प्रागैतिहासिक काल के वातावरण को उपन्यस्त किया गया है तो उसकी भाषा भी उसी युग के अनुरूप गढनी होगी । इससे ऐतिहासिक शिल्प-विधान की रचना अधिक सशक्त एवं प्रासंगिक बन सकेगी ।"[1] युगानुकूल भाषिक संरचना के साथ ही साथ रचनाकार को चरित्रानुकूल भाषा की विविधता पर भी ध्यान देना चाहिए । उपन्यास में प्रतीकात्मक और आलंकारिक भाषा का प्रयोग लेखक की निजी भाषा-शैली पर आधारित होती है ।

---

1. डॉ. प्रदीपकुमार शर्मा - हिन्दी उपन्यासों का शिल्प-विधान - पृ. 259

ऐतिहासिक उपन्यासों में प्रयुक्त शैलियाँ

ऐतिहासिक उपन्यासों में मुख्य रूप से वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक, फ्लैश बैक, काव्यात्मक, आत्मकथात्मक तथा नाटकीय शैलियों का प्रयोग किया जाता है । वर्णनात्मक शैली सर्वाधिक सुविधाजनक तथा सर्वप्रचलित शैली है । इसमें उपन्यासकार एक सर्वत्र लेखक के रूप में सामने आता है । "इस शैली के उपन्यास को इतिहासकार की भाँति उपन्यास के चरित्रों तथा उनसे संबंधित घटनाओं का इतिवृत्तात्मक वर्णन अपनी कल्पना, अनुभूति एवं जानकारी के आधार पर लिख देना होता है। अन्त में वह एक तटस्थ द्रष्टा की भाँति अपना कोई न कोई निर्णय भी घोषित कर अपनी किसी न किसी मान्यता की स्थापना करने की चेष्टा करता है ।"[1] उपन्यासों के चरित्रों तथा उनके मानसिक विश्लेषण के लिए विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग होता है । "फ्लैश बेक शैली में घटना या घटनाओं को तत्काल न दिखाकर किसी पात्र की स्मृति में लौटाकर दिखाया जाता है ।"[2] काव्यात्मक शैली उपन्यास में प्रवाहपूर्णता की सृष्टि और प्रभावात्मकता में वृद्धि करती है । प्राय: इस शैली का संबंध लक्षणा और व्यंजना से जुड जाता है, अभिधा पीछे छूट जाती है । आत्मकथात्मक शैली में उपन्यासकार स्वयं कथावाचक बन जाता है । घटना तथा पात्रों को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करने के लिए नाटकीय शैली का प्रयोग किया जाता है ।

उपन्यास की प्रभावोत्पादकता को बढाने के लिए ऐतिहासिक उपन्यासकार प्राय: समन्वित शिल्प-विधान का प्रयोग ही करता है ।

---

1. डॉ. विभुवन सिंह - हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग - पृ. 96-97
2. प्रतापनारायण टंडन - हिन्दी उपन्यास कला - पृ. 278

जैसे कि घटनाओं का वर्णन तथा पात्रों का वर्णन आदि के लिए वर्णनात्मक शैली का प्रयोग करता है तो पात्रों के चरित्रांकन तथा अन्तर्द्वन्द्वों को दिखाने के लिए विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग किया जाता है । इनके अतिरिक्त उपन्यास में भावात्मक सौंदर्य की वृद्धि के लिए काव्यात्मक शैली का प्रयोग भी किया जाता है । चमत्कारिक घटनाओं को प्रस्तुत करने के लिए कभी कभी नाटकीय शैली का भी आश्रय लेता है । इसप्रकार समन्वित शिल्प-विधान में विभिन्न शैलियों का प्रयोग भिन्न-भिन्न अनुपातों में किया जाता है ।

रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों के आधार

रांगेय राघव ने प्रागैतिहासिक काल तथा ऐतिहासिक काल से अपने ऐतिहासिक उपन्यासों का विषय-चयन किया है । "मुर्दो का टीला" और "अंधेरे के जुगनू" प्रागैतिहासिक काल से संबंधित ऐतिहासिक उपन्यास हैं । इन उपन्यासों को ऐतिहासिक रोमाँस की संज्ञा दी जा सकती है । क्योंकि इन उपन्यासों में पात्र और घटनाएँ नितान्त काल्पनिक हैं । किन्तु वातावरण द्वारा ऐतिहासिकता की रचना की गयी है । इनमें वातावरण का सृजन भाषा, रीति रिवाज़, वस्त्राभूषण, उत्सव-त्यौहार, सांस्कृतिक आयोजन आदि द्वारा किया गया है । साथ ही साथ उन सभी युक्तियों का प्रयोग किया गया है जिनके द्वारा ऐतिहासिक यथार्थ को सजीवता मिलती है । यहाँ रांगेय राघव ने अपने इतिहास-बोध को चरितार्थ किया है । उनका "चोवर" बौद्धकालीन ऐतिहासिक वातावरण पर लिखा गया इतिहास-प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास है । इसके अधिकांश पात्र और घटनाएँ इतिहास समर्थित हैं । "पक्षी और आकाश" तथा "राह न रुकी" में ऐतिहासिकता और काल्पनिकता का द्वन्द्व समन्वय मिलता है । दोनों उपन्यासों में बौद्ध और जैन धर्म का व्यापक प्रभाव और वातावरण का जीवन्त चित्रण किया गया है ।

मुर्दों का टीला

मोअन-जो-दडो की सभ्यता और संस्कृति पर आधारित प्रागैतिहासिक कल्पना का हिन्दी में यह पहला उपन्यास है । खुदाई से प्राप्त वस्तुएँ, अन्य ऐतिहासिक तथ्यों और इतिहासकारों की मान्यताएँ ही उपन्यास के ऐतिहासिक आधार हैं । "सिन्धु नदी के तीर पर आज से सहस्रों वर्ष पहले यह व्यापार का बहुत बडा सुसभ्य केन्द्र था । उस समय सुदूर पश्चिम में मिश्र, उत्तर पश्चिम में एलाम और सुमेरु, क्रीट में माइनोन सभ्यता, तथा उत्तर में हडप्पा थे ।"[1] 3500 ई.पू. मोअन-जो-दडो का अंतिम समय माना गया है । आज हमारे पास उस महानागरिक सभ्यता का मापदंड, उनकी भाषा तक नहीं है । उनकी चित्रलिपि पढने के प्रयत्न सर्वमान्य नहीं हो सके हैं । इस पृष्ठभूमि पर रांगेय राघव ने एक चमत्कारपूर्ण काल्पनिक कथानक का निर्माण किया है । मणिबंध की जीवनगाथा के सहारे से उपन्यासकार ने मोअन-जो-दडो के महानागरिक सभ्यता के उत्थान और पतन को प्रस्तुत किया है । मोअन-जो-दडो का अर्थ है मृतकों का स्थान अथवा मुर्दों का टीला । मणिबंध और विल्लिभित्तुर की कथाएँ उपन्यास की मेरुदण्ड है । इनके साथ उपन्यासकार क्रमशः नीलुफर और वेणी की प्रणय को जोडकर कथा को विकसित करता है । उपन्यास का कथानक इन पात्रों की प्रणयमूलक कथाएँ, जीवन के विविध घात-प्रतिघात, ईर्ष्या, षड्यंत्र, संघर्ष, पलायन, जय-पराजय आदि सम एवं विषम परिस्थितियों के बीच अंत तक विकसित होती रही है । कोकट की राजकुमारी चन्द्रा की प्रासंगिक कथा आर्य-द्रविड संघर्ष का परिचय देती है । आर्यों को पूरे भारत में फैलने में सैकडों वर्ष लगे थे । मोअन-जो-दडो की खुदाई में आर्यों का चिह्न भी नहीं के बराबर है । इसीलिए रांगेय राघव ने आर्यों को

---

1. रांगेय राघव - मुर्दों का टीला - भूमिका ।

एकदम मोअन-जो-दडो नहीं पहुँचा दिया है । मोअन-जो-दडो के निकट के कीकट देश में आर्यों का आक्रमण दिखाया गया है । उपन्यास का कथानक शृंखलाबद्ध है ।

"ईसा के साढे तीन हज़ार वर्ष पूर्व महानद सिन्धु तीर पर मोअन-जो-दडो का महानगर अपने वैभव और अभिमान से मदमत्त-सा चुनौती देता-सा आकाश की ओर देखकर उपेक्षा से मुस्करा देता था । आज अनेक वर्षों के बाद श्रेष्ठि मणिबंध अपनी अर्जित संपत्ति के साथ लौट रहा था । उसके हृदय में आनन्द संकुल प्रताडित-सा फूत्कार कर रहा था ।"[1] मिश्र से खरीदी गई अपरूप सुन्दरी नीलूफर मणिबंध की क्रीत-दासी है, जिसे वह स्वामिनी बनाता है । मणिबंध का मोअन-जो-दडो के महानगर में प्रवेश और वहाँ उसका महाश्रेष्ठि जैसा स्वागत, विल्लिभित्तूर तथा वेणी का कीकट देश से भागकर मोअन-जो-दडो आना आदि घटनाओं के साथ कथानक प्रारंभ होता है । आगे मणिबंध, नीलूफर, वेणी तथा विल्लिभित्तूर, वेणी नीलूफर आदि की त्रिकोणात्मक प्रणय, मणिबंध और वेणी की विलासी और उच्छृंखल जीवन, पागल विश्ववजीत की भविष्यवाणियाँ, नीलूफर और वेणी की स्त्री-सहज ईर्ष्या, गायक विल्लिभित्तूर की आत्म-पीडा आदि से कथानक को विकसित किया गया है ।

खुदाई में मोअन-जो-दडो के एक महास्नानागार का भग्नावशेष मिला है । उपन्यास में रांगेय राघव ने इस महास्नानागार का

---

1. रांगेय राघव - मुर्दों का टीला - पृ.।

जीवन्त वातावरण का पुनः सृजन किया है । जैसे कि "कनक कंकणों से उठती ध्वनि से वातावरण क्वणन कर रहा था । कलरव करते समुदाय की मस्ती से जैसे जल झूल रहा था और घाट के शुद्ध संगमर्मर पर उनकी प्रतिध्वनि के जगमगा करते प्रकाश पर वे रंग-बिरंगे वस्त्र पहने सुन्दरियाँ ऐसी लगती थीं जैसे किसी धवल महागिरि पर इन्द्रधनुष विश्राम करने को रख दिया हो ।

ताल के किनारे घाट पर कपडे बदलने के लिए प्रकोष्ठ थे, जिनमें अगरू को स्तंभों पर जलाया जाता था । लोग नहाने के बाद वहाँ जाकर अपनी इच्छा के अनुसार स्नानांतर श्रृंगार किया करते थे ।"[1] यहाँ रांगेय राघव ने सृजनात्मक कल्पना के बल पर ऐतिहासिक वातावरण का सृजन किया है । इसी वातावरण में मणिबंध और वेणी की विलासिता बढती है । मोअन-जो-दडो के महानागरिकों के उच्छृंखल जीवन का परिचय भी उपन्यास में अन्यत्र कहीं कहीं दिया गया है । "विदेशियों ने भी अचरज से देखा । एलाम के पंडे आज कुछ अधिक प्रसन्न थे । दजला और फरात की उपत्यका के उन मनुष्यों ने भी कभी इतना उन्माद न देखा था । स्वयं किश की प्राचीन राजधानी में रहने वाले सुमेरूवासी भी आज चकित थे । मिश्र के गंभीर पुरुषों ने युद्ध देखे थे या दार्शनिकों की नीरस वाणी सुनी थी, आज उन्होंने देखा कि जीवन किस प्रकार उच्छृंखल हो उठता है । वे राजपथ पर हँसी-खेल करती नर्त्तकियों को, देखते और आनन्द से विस्फारित नयनों से देखते ही रह जाते ।"[2]

प्रणय की रोमांचकारी और कुतूहलवर्द्धक वर्णन के साथ ही साथ इसमें तत्कालीन सामाजिक यथार्थ की ओर भी उपन्यासकार ने संकेत

---

1. रांगेय राघव - मुर्दों का टीला - पृ. 19
2. वही - पृ. 52

दिया है । जब नीलूफर विल्लिभित्तूर से प्रणय निवेदन करती है तब वह कहता है -"देवी ! जब मनुष्य की देह पर कोडा पडता है तब मुझे कभी स्त्री की आँखों के तीर घायल नहीं करते । तुम्हारे महानगर में मनुष्य बडे विचित्र हैं । अधिकांश रोटी का दान माँगते हैं, कुछ तुम हो जो प्रेम का दान माँगा करती हो । मैं तो कुछ भी नहीं समझ पाता । क्या चाहती हो तुम ? मेरा तो तुमसे कभी इतना मेल नहीं हुआ ? सच देवी ! अद्भुत है यह देश जहाँ कवि दूसरों की आज्ञा पर गाया करते हैं । मैं सोचता हूँ क्या तुम्हारी व्यथा वास्तव में इस योग्य है कि मैं उस पर सोचने को विवश होऊँ ?"[1]

"मुर्दों का टीला" में राँगेय राघव ने मोअन-जो-दडो के सांस्कृतिक जीवन, धार्मिक विश्वास, राजनीतिक मान्यताएँ, दर्शन आदि पर भी प्रकाश डाला है । जैसे कि लोगों की रीति-रिवाज़, खान-पान, वेश-भूषा, आचार-विचार, उत्सव-त्यौहार आदि का विशद वर्णन उपन्यास में मिलता है । "महानगर में राजपथों पर नई चहल-पहल प्रारंभ हो गई । स्त्रियों के लिए पण्यों में दूकानदारों ने अपना बहुमूल्य सामान दूकान बढा-बढाकर सजा दिया । सडकों पर गंधिजल पिलानेवाले अपने विभिन्न आकृतियों वाले मीनाकारी के पात्र लिए घूमने लगे । आज उन्हें विशेष लाभ की आशा थी । फूलों के गजरे लिए युवतियाँ गीत गाती हुई बेचने लगीं । नागरिक रसिक उन्हें छेडते और वे आँखें नचाकर मुस्कुरातीं..... सुन्दरियों ने अपने हाथी दाँत के आभूषणो को साफ किया और चमचमाते स्वर्ण के कंगन बाँधे । प्रवाल के हार उनके वक्षस्थल पर खेलने लगे ।"[2] तत्कालीन लोगों के अंधविश्वास

---

1. राँगेय राघव - मुर्दों का टीला - पृ. 33
2. वही - पृ. 5।

पर अधिक ज़ोर दिया गया है । प्राकृतिक विक्षोभों को ये लोग ईश्वरीय दंड समझते हैं । इस दृष्टि से उच्छृंखलता और अत्याचार बढने के साथ साथ उपन्यासकार ने बार बार प्राकृतिक विक्षोभों को परिणति के रूप में चित्रित किया है । भूकंप होते वक्त विश्वजीत कहता है -"जानते नहीं यह पृथ्वी का हृदय धडक रहा है ? देवताओं ने क्रोध किया है, पापियों ! तुम्हारा पाप अधिक दिन तक नहीं चल सकेगा । महामाई की भृकुटि तन गई है.."[1]

उपन्यास के अंत में मणिबंध का निरंकुश शासक बनने का प्रयत्न और राजनीतिक षड्यंत्र कथानक को अधिक गतिशील बनाता है । अत्याचारी मणिबंध के विरुद्ध जनता का विद्रोह और भारी संघर्ष के बाद नृशंस नरहत्या होती हैं । इस भीषणता से प्रकृति क्रुद्ध हो जाती है और महाप्रलय में महानगर का विध्वंस होता है । इसमें प्राकृतिक विक्षोप को दैवी-प्रकोप के रूप में चित्रित किया गया है । ऐतिहासिक तथ्यों को उपन्यासकार की विधायक कल्पना ने अधिक जीवन्त बनाया है और ऐतिहासिक वातावरण को पुनर्जीवित करने में अधिक सक्षम साबित हुआ है । यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत है - "हेका अनबूझ-सी खडी रही । नीलुफर ने अपने शरीर का कटि से ऊपरी भाग खोल दिया । उन्नत उरोज दीप के प्रकाश और अन्धकार में अत्यंत गोल और सुडौल, जैसे रूप के भंडार थे । हेका निःशंक देखती रही । क्या लाज हो सकती है नीलुफर को ? दोनों इसी तरह तो उस हाट में खडी हुई थीं जहाँ मणिबंध ने उन्हें खरीदा था । यहाँ तो केवल हेका थी । किन्तु हाट में अनेक पुरुष आते थे । अंग-अंग टटोलकर देखते थे जैसे पशु चुना जाता हो ।

---

1. रांगेय राघव - मुर्दों का टीला - पृ. 27

किन्तु नीलुफर का अर्थ अपने उन्नत यौवन का प्रदर्शन न था । वह मुड गई । दीपक के प्रकाश में हेका ने देखा - कोडों का निशान था । उस स्वच्छ कोमल पीठ पर वे दाग जैसे उस स्निग्ध त्वचा पर वह अत्याचार की रेखाएँ बर्बरता का इतिहास बनकर लिखी हुई थीं, जैसे कुशल शिल्पि ने पत्थर पर लकीर खींच दी हो ।[1] "मुर्दो का टीला" सद और असद के व्यापक संघर्ष की कहानी है । इनमें असद का विजय होती है और सद का गला घोंट दिया जाता है । अंत में प्रकृति स्वयं असद को दंड देती है । उपन्यास में मणिबंध अत्याचारी पात्र है और विल्लिभित्तुर, नीलुफर, विश्वजीत आदि पात्र उसके विरोध में खडे हो जाते हैं जो जनवादी शक्तियों के प्रतीक हैं । उपन्यास में पात्रों का विकास-क्रम उपन्यास के अनुकूल किया गया है ।

अंधेरे के जुगनु

महाजनपद से भी पुराने प्रागैतिहासिक युग पर आधारित उपन्यास है "अंधेरे के जुगनु" । इस युग में तीन बार एकतंत्र की जगह गणतंत्र स्थापित करने के यत्न हुए, किन्तु तीनों बार ये प्रयत्न असफल हुए । इस प्रकार महाजनपद से भी पहले जब पार्श्वनाथ नहीं हुए थे, भारतीय जनसमाज एक भयंकर संक्रांति काल से गुज़र रहा था । इस समय आर्य शक्ति का ह्रास हो गया था और ब्राह्मण अपनी पतितावस्था पर पहुँच गए थे । ऐसी स्थिति में निम्न वर्णों ने अपनी स्वतंत्रता की आवाज़ बुलन्त की और रक्त तथा धन के स्वार्थ की रक्षा के लिए उच्च वर्गों ने भी अपनी बची-खुची शक्ति का दम तोडकर उपयोग किया । क्षत्रिय विरोध के कारण ब्राह्मणों ने क्षत्रियों

---

1. रांगेय राघव - मुर्दो का टीला - पृ.85-86

और वैश्यों को परास्त करने के लिए निम्न वर्गों के साथ मित्रता की । तदनन्तर दास उत्पादन के साधन नहीं रहे और एक आंशिक गणतंत्र की स्थापना हुई । इस तरह घोर संघर्ष और सामाजिक उथल-पुथल के बीच समाज की जनवादी शक्तियाँ आगे बढ़ती रहीं । "अंधेरे के जुगनू" में हमारी परंपरा में प्रसिद्ध ब्राह्मण-क्षत्रिय संघर्ष की काल्पनिक कहानी प्रस्तुत की गयी है । इसमें घटनाएँ, पात्र आदि काल्पनिक हैं । सृजनात्मक कल्पना के बल पर ऐतिहासिक वातावरण का सृजन किया गया है । इसीलिए "अंधेरे के जुगनू" भी एक ऐतिहासिक रोमाँस है । उपन्यास में विलासी वातावरण का वर्णन इस प्रकार किया है -"महानगर में सुन्दर राजभवन में इस समय दीपमालिका जगमगा रही थी । महानगर में चारों ओर परिखा थी और प्रकाश खींचा हुआ था । राजपथ प्रशस्त था और दुकानें रात के समय सजी हुई थीं जिनमें आभीर तरुणियाँ क्रय कर रही थीं । उनके साथ कठोर आभीर सैनिक थे ।

उनकी स्त्रियाँ अधोवासक घुटनों तक लटकते पहने थीं किन्तु उन पर हिरण्य का कसीदा था, वे भारी थे । उनमें से, चलते समय, उनकी जंघाएँ दिखाई देतीं और जब वे बैठतीं तो कटि प्रदेश पर बँधी मेखला चमकती ।.... वे सैनिकों के साथ उनको पीठ पर हाथ रखकर स्वच्छन्दता से घूमती ।"[1] उपन्यास का खलनायक भूमन्यु स्वयं एक विलासी राजा है । स्त्री का मांसल शरीर ही उसे अधिक पसंद है ।

भूमन्यु सौवीर राज्य पर आक्रमण करता है । उसके द्वारा सौवीर राजा वह्निकेतु की हत्या की जाती है । "सौवीरों का सर्वनाश हो गया । आभीरों ने ग्राम में आग लगा दी । वे स्त्रियों पर बलात्कार करने लगे।"[2]

---

1. रांगेय राघव - अंधेरे के जुगनू - पृ. 42-43
2. वही - पृ. 32-33

सौवीर महाराज वह्निकेतु की पत्नी शैखावत्या अपने दोनों पुत्रों, वृषकेतु और शोणकेतु के साथ वन में रहती है । अमात्य प्रावृट की पुत्री वृहद्वति भी उनके साथ है । प्रावृट भूमन्यु के विरुद्ध जनता को जागृत कराता है । ये सारी घटनाएँ और पात्र काल्पनिक ही हैं । उपन्यासकार ने इन पात्रों के विकास-क्रम के अनुसार अन्य घटनाओं से कथानक को आगे बढाया है । उपन्यास का कथानक अधिक संकीर्ण और उलझा हुआ है । इसमें पात्रों और घटनाओं की भरमार है । युद्ध, राजनीतिक षड्यंत्र, हत्याकांड आदि से यह उपन्यास घटनाबहुल है ।

शुद्रों ने आभीरों की सेना की बडी सेवा की । इसीलिए भूमन्यु ने उन्हें संपत्ति का स्वामी होने का अधिकार दे दिया । वशातल प्रकालन प्रावृट से कहता है -"दासों पर जब न श्रेणियाँ दया करती हैं, न ब्राह्मण, न श्रमण, न क्षत्रिय तो हम क्यों लडें ? आभीर राज ने दासों को साँस लेने का अवसर दिया है ।"[1] दासों और सौवीरों का संघर्ष होता है और आभीरों ने प्रावृट को बंदी बनाता है । प्रावृट की विधवा पुत्री वृहद्वति भी भूमन्यु के द्वारा उठा लिया गया । वृहद्वति का सौंदर्य और वीरता पर मुग्ध भूमन्यु अपने वीर्य से उसमें पुत्र की कामना करता है । सौरभमेयी ने भूमन्यु की वासना से वृहद्वति को बचाती है । आभीर राजा की इस राजनीतिक चाल और विलासिता से कथानक में विशेष गति होती है । यहाँ वर्ण-संघर्ष का संकेत देने में उपन्यासकार सफल हुए हैं । शोणकेतु और वृषकेतु जनता के साथ भूमन्यु के विरुद्ध संघर्ष करते हैं । भूमन्यु शोणकेतु को बहका

---

1. रांगेय राघव - अंधेरे के जुगनु - पृ. 76

देता है और दोनों भाइयों के बीच झगडा होता है। वृषकेतु भूमन्यु की हत्या करता है । वह गणतंत्र की स्थापना करना चाहता है तो शोणकेतु क्षत्रिय शासन का पुनःस्थापन चाहता है । अंत में व्यापक संघर्ष होता है और सभी पात्रों की मृत्यु होती है ।

कल्पना की अतिउपयोगिता के बावजूद इस संघर्षशील उपन्यास कथा को इतिहास बद्ध करने का कार्य रांगेय राघव ने किया है । वातावरण, भाषा, प्रथाएँ आदि का यथासंदर्भ प्रयोग करके कल्पना की मुखरता से इसे बचाया है । एक उदाहरण इसप्रकार है -"सूनी पगडंडी अब दिखने लगी और वह विशालकाय नीले पत्थरों के बीच से होकर उस पहाडी के एक ओर चढने लगी, और दूर से लगातार घोडा दौडाते अश्वारोही को देखकर अब घोडे के सुमों के प्रहार की प्रतिध्वनि से बजने लगी । अश्व पर एक आस्तरण था और आरोही ने अपने जंघाप्रदेश से उसे दबा रहा था । आरोही हस्तिशौंडिक धोती पहने था । कमर पर चर्मपट्ट बँधा था । पाँव में लोहित पालिगुंण्मि {जूता} था और सिर पर लाल उष्णीश में तलवार खोंस रखी थी । उसके शरीर पर रक्तवर्ण कंचुक था जो जंघा तक पहुँचता था और मेंढे के सींग का बना धनुष उसके कंधे के पीछे तूणीर के पास कसा हुआ था । उसके कंचुक पर वक्षप्रदेश पर हिरण्य का काम बडी ही बारीकी से किया हुआ था । वह एक सुदृढ और बलिष्ठ युवक था ।.... उसके दायें हाथ में एक भाला था जिस पर एक मनुष्य का लहूसना कटा सिर अटका हुआ था ।"[1]

---

1. रांगेय राघव - अंधेरे के जुगनू - पृ. 26-27

चीवर

"चीवर" हर्षकालीन ऐतिहासिक वातावरण पर लिखा गया इतिहासाश्रित ऐतिहासिक उपन्यास है । इसमें रांगेय राघव ने ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं के साथ काल्पनिक पात्रों और घटनाओं को भी लेकर कथानक को विकसित किया है । कथानक का मुख्य आधार राज्यश्री का जीवन है । राज्यश्री को राजकीय सुख-वैभव से अचानक एक दिन विधवा होने का अभिशाप झेलना पडता है । अंत में बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर वह चीवर धारण करती है ।

हर्षकालीन ऐतिहासिक वातावरण उपन्यास का केन्द्रबिन्दु है । "उस समय कान्यकुब्ज महानगर हो चला था । आज के दो सौ वर्ष पूर्व जो गौरव पाटलीपुत्र को प्राप्त था, वह अब धीरे धीरे यहीं एकत्रित होता जा रहा था । चीन तक से व्यापारी यहाँ आते थे । महानगर में ब्राह्मण धर्म तथा बौद्ध धर्म दोनों के ही अनुयायी यहाँ प्रचुर रूप में पाए जाते थे । ढाई कोस लंबे और आधे कोस से भी अधिक चौडे नगर में सौ बौद्धमठ थे जिनमें दस सहस्र से भी अधिक महायान तथा हीनयान संप्रदायों के भिक्षु थे और दो सौ देव मन्दिरों में कितने सहस्र साधु वास करते थे, यह कहना कठिन था..."[1] मौखरियों की यह राजधानी देवगुप्त पर अपना इन्द्रजाल बिछा चुकी थी । उसको मौखरियों का यह वैभव अखरता था । गृहवर्मा ने स्थाणीश्वर के वर्धनों की राजकन्या राज्यश्री से विवाह करके अपनी शक्ति बढा ली थी । मौखरी वंश से पुष्यभूतिवंश की मित्रता हो गुप्तों के लिए विक्षोप का कारण बन गया है ।

---

1. रांगेय राघव - चीवर - पृ. 12-13

देवगुप्त और उपरिगुप्त दोनों मिलकर मदनिका की सहायता से गृहवर्मा की हत्या कर लेता है । राज्यश्री के सौंदर्य पर मोहित देवगुप्त उसे हडप लेता है । यहाँ उपरिगुप्त और मदनिका काल्पनिक पात्र हैं । गृहवर्मा की हत्या और राज्यश्री को हरण कर लेना ऐतिहासिक घटनाएँ हैं । यह छल तो वसन्तोत्सव के वक्त घटित होती है । राज्यश्री के सुखमय जीवन के इस वज्रपात को उपन्यासकार ने अचानक ही चित्रित किया है । जैसे कि राज्यश्री और गृहवर्मा के अनुरागमय जीवन को एकदम तोड दिया गया है "तुम राज्यश्री नहीं, गृहवर्मा कहने लगा, "मेरी मनश्री हो एक-एक पल में मुझे प्रतीत होता है जैसे युग बीत रहे हैं । मैं नहीं समझता प्रेम का यह स्वर्ग त्याग कर लोग राज्य की लिप्सा में क्यों इतना हत्याकांड किया करते हैं । तुम्हारे इन नयनों को देखता हूँ तो मेरे हृदय की अतृप्ति मिट जाती है । देखता हूँ, फिर देखता हूँ, किन्तु मन नहीं भरता ।"[1]

"कल ही तो वसंतोत्सव है, मेरा अशोक कल झूलेगा । कल कामपूजा होगी । मेरे आम्र पर प्रवाल झूल रहे हैं....."[2]

इस बीच प्रभाकरवर्द्धन का रोग से पीडित होकर देहांत होता है । राज्यवर्द्धन हूणों से युद्ध करने के लिए गया था । पिता की मृत्यु का पता चलते ही लौट आता है । तभी देवगुप्त की छल की पता चलता है । एक भारी सेना लेकर वह देवगुप्त से प्रतिशोध लेने चला जाता है ।

---

1. रांगेय राघव - चोवर - पृ. 28-29
2. वही - पृ. 28-29

युद्ध में देवगुप्त मारा जाता है किन्तु देवगुप्त का मित्र शशांक ने छल से राज्यवर्द्धन की हत्या करता है । आगे हर्षवर्द्धन राजा बनता है । वह राज्यश्री को विन्ध्यावन से कन्याकुब्ज वापस लाता है । ये सारी घटनाएँ ऐतिहासिक हैं । यहाँ युद्ध, पात्रों की गतिविधियाँ, कथानक की गति आदि उपन्यासकार के अपने कौशल पर निर्भर है । बहिन के दुःख से विचलित होकर हर्षवर्द्धन विवाह न करने का प्रण लेता है और अंत तक अविवाहित रहता है । उपन्यास के अंत में वह भी चीवर धारण करता है । बाणभट्ट, ह्वान-च्वांग आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों को भी स्थान दिया गया है । कापालिक साधना का उल्लेख भी उपन्यास में किया गया है -"क्या बौद्ध कापालिक भी हो सकते हैं ? राज्यश्री ने झांक कर देखा, मंदिर में और भी खाने के लिए मांस रखा था, कुछ चने रखे थे ।"[1]

"चीवर" में ऐतिहासिक पात्रों को भी बड़ी कलात्मकता के साथ अवतरित करके रांगेय राघव ने उन्हें औपन्यासिक बना दिया है । कुछ उदाहरण इसप्रकार है -"और फिर संध्या के झुटपुटे में जब वृद्ध स्थविर बुद्ध प्रतिमा के सामने स्वर्ण के दीपकों में गंधित घृत डालकर शिखाएँ उठा देते और वे साधनामय आलोक खंड स्थविर दृष्टि से बुद्ध प्रतिमा पर अपना गंभीर आलोक डालने लगते राज्यश्री अपने हृदय की उद्वेग की आतुरता को प्रशमित करने के लिए धीरे-धीरे विराट स्तंभों के बीच में घूमती हुई आलिन्दों में एकान्त में अम्बपाली का यह गीत गाने लगती मेरे भौरों के से वे केश जो कभी घुँघराले काले थे, अब सन से सफेद हो गए हैं ।.... हाहाकार करता हुआ राज्यश्री का हृदय इसे गा-गाकर अपने भीतर एक समवेदना का अनुभव करता ।"[2]

---

1. रांगेय राघव - चीवर - पृ. 221
2. वही - पृ. 127-128

घटनाबहुल उपन्यास के अनुरूप "चीवर" में ऐतिहासिक वातावरण का सृजन और उसके क्रमिक विकास पर भी ध्यान दिया गया है । कुछ उदाहरण इसप्रकार है -"स्थाणीश्वर में हलचल मच रही थी । युवराज राज्यवर्द्धन रणयुद्ध से लौट आए थे । आखेट में समय व्यतीत करनेवाले कुमार हर्षवर्द्धन चिन्ता में मग्न थे । मौखरी वंश का यह प्रतारण भरा अंत महाराज प्रभाकर वर्द्धन की मृत्यु की अग्नि में आहुति की भाँति भडक उठा । राज्य पर घोर विपत्ति आई थी । राज्यश्री के विषय में कोई सूचना नहीं मिल रही थी । कुछ लोगों में उडती हुई बात थी कि मालव देवगुप्त ही राज्यश्री को उठा ले गया है । इस संवाद से हर्षवर्द्धन उन्मत्त दिखाई दे रहा था ।"[1]

भाषा की इतिहासानुमोदित संरचना पर उपन्यासकार का ज़ोर रहा है । कुछ नमूने इसप्रकार हैं -"दूसरे दिन जब राज्यवर्द्धन सिंहासन पर बैठा । उसके चरणों पर लाट, सुराष्ट्र, सौवीर, कुन्तल, पुलिन्द, शबर, मूतिब, आभीर तथा कुलिन्द जातियों ने अपने उपहार रख दिये । दिगंत कँपानेवाले पटह, भेरी तथा तूर्यनाद को हिलाते हुए ब्राह्मण का गंभीर पाठ उठा और स्थाणीश्वर की वीथियों में मदिरा के पात्र उलटने लगे । वेश्याओं और नर्त्तकियों के मौन मंजीर फिर बजने लगे ।"[2] "अचानक घोडे रुक गए । एक व्यक्ति ने झुककर दूसरे से दूर ही कुछ कहा और फिर वह अकेला अपना भव्य तुरंग आगे बढा लाया । दिवाकर मित्र आगे बडे । सबने देखा । छलाँग मारकर महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन घोडे पर से कूद पडे.... दिवाकर मित्र आनंद से चिल्लाया महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन ।"[3]

---

1. रांगेय राघव - चीवर - पृ. 44-45
2. वही - पृ. 47
3. वही - पृ. 118

पक्षी और आकाश

"पक्षी और आकाश" कल्पना-प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास है । उपन्यास का प्रमुख पात्र धनकुमार है जो पुरपट्ठान नामक समृद्ध नगर के श्रेष्ठि धनसार का सबसे छोटा पुत्र है । धनदत्त, धनदेव, धनचन्द्राधिप तीनों उसके बड़े भाई हैं । दया और आत्मसम्मान का यह अद्भुत सम्मिश्रण उसमें है जो उसके भाइयों में नहीं है । ज्ञान ही उसके जीवन का संबल था । उसने कलाएँ सीखी, विद्याएँ सीखी और अनेक शास्त्र पढ गया । व्यापारिक क्षेत्र में भी वह कुशल है । इसीलिए तीनों भाई उससे ईर्ष्या करते थे । इस कारण से धनकुमार नगर और घरवालों को छोडकर चला जाता है । उपन्यासकार ने इस घुमक्कड पात्र का संबंध जरासंध, बिंबसार, चंडप्रद्योतसेन शंतानिक, गौतम बुद्ध आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों के साथ जोड दिया है । इसप्रकार उपन्यास में एक ऐतिहासिक वातावरण का सृजन किया गया है ।

उपन्यास के प्रारंभ में उपन्यासकार ने धनकुमार को निर्मोही और भाग्यवादी के रूप में चित्रित किया है । कथानक उसके चारों ओर घूमता है । धन के संबंध में उनकी मान्यता है कि "धन कर्मफल का एक भोग है । आत्मा की परीक्षा के लिए प्रकृति के यह भिन्न रूप है - धनी-दरिद्र, ऊँच-नीच । धन आत्मा को छलनेवाली चीज़ है । इसे जितना ही जो बाँध-बटोरकर दूसरों को धोखा देकर, निचोडकर इकट्ठा करता है, वह उतना ही बुरा बनता जाता है ।"[1] धनकुमार को भद्दक की धरती से जोतते वक्त सोना मिलता है, नदी में बहते आए शव को जीवित समझकर बचाने की कोशिश

---

1. रांगेय राघव -पक्षी और आकाश - पृ. 14-15

में अमूल्य रत्न-राशी मिलती है जो उसके जाँघों में रखा गयी थी, रेत से चिंतामणि रत्न मिलता है, अनजान यात्री से उसकी संचित संपत्ति मिलता है आदि काल्पनिक घटनाओं से इस पात्र को अधिक भाग्यवादी बनाया है । ये घटनाएँ कथानक को अधिक चमत्कारिक बनाया है ।

अपनी बुद्धि-शक्ति के बल पर धनकुमार जरासंध का अमात्य बन जाता है । वहाँ उसने कुछ राजनीतिक परिष्कार लाता है । उसके परिवारवाले सब कुछ खोकर और दर-दर भटकर वहाँ पहुँचते हैं तो वह उनके लिए सारा प्रबंध कराता है । वह फिर भटकने लगता है -"चलते रहना, दुनिया तो देखने को मिलेगी, हो सका तो तक्षशिला भी चलेंगे । जीवन है ही क्या है अनुभवों के संस्कारों का पुंज ।"[1] वह बंधकर रहना नहीं चाहता । वह आत्मा को भिंचकर नहीं रहना चाहता । वह तो यात्री है । इसप्रकार भटकते हुए वह बिंबसार के जहाँ पहुँचता है । वहाँ उसको यह महसूस होता है कि धन, अधिकार, शक्ति, पाप और पुण्य, परिवर्तन ये सब मनुष्य के हाथ के वश में नहीं है । मैं इनको समाप्त भी नहीं कर सकता । परन्तु प्रेम मनुष्य की शक्ति है । थोडा-सा स्नेह । दे सकोगी कि इस शून्य का विस्तार भर जाए ।"[2] श्रेष्ठि कुसुमपाल की बेटी से उसकी शादी होती है । श्रेष्ठि गोभद्र और बिंबसार भी अपनी अपनी कन्या से उसका पाणीग्रहण कराता है । जब वह शतानिक से मित्रता स्थापित करने जाता है वहाँ उनकी कन्या से भी उसको शादी होती है । इस प्रकार उपन्यास में बहु-विवाह का वर्णन किया गया है । "क्या यह ब्राह्मण-परंपरा थी कि स्त्री अपना समर्पण बिना

---

1. रांगेय राघव - पक्षी और आकाश - पृ. 110
2. वही - पृ. 141

शर्त और बिना अहं के करती थी ? क्या यह प्रेम की और ऊँची मंजिल नहीं थी ?"[1] उपन्यास के अंत में वह सब कुछ त्यागकर बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर बुद्ध से दीक्षा स्वीकारता है । इसप्रकार उपन्यास में ऐतिहासिक यथार्थ का काल्पनिक दृष्टि से वर्णन किया गया है । यहाँ उपन्यासकार को कल्पना में यथेष्ट विचरण करने का अवसर मिला है । इसका कथानक शृंखलाबद्ध नहीं है ।

प्रस्तुत उपन्यास को ऐतिहासिक वातावरण प्रदान करने के लिए उपन्यासकार ने पर्याप्त प्रयास किए हैं । जैसे -"और एक दिन उज्जयिनी के ऊँचे सौधों के दर्शन होने लगे । उसके स्वर्णकलश और उडती पताकाएँ मुझे अपनी ओर बुलाने लगीं ।मैं मानो फिर सभ्यता में आ गया था । यह हर्ष मुझे गुदगुदाने लगा । यह प्राचीन नगरी अपनी समृद्धि से बहुत दूर-दूर से व्यापारियों को बुलाती थी ।.... नगर के बाहर धनिकों के विशाल सुन्दर उपवन बने हुए थे, जिनमें आपानक भूमि भी थी । कहीं कहीं चैत्य दिखाई देते थे । उनको अश्वत्थ वृक्षों की छाया ने सुहावना बना दिया था ।"[2] उपन्यास में बौद्ध धर्म के व्यापक प्रचार का वर्णन भी किया गया है - "भिक्षु-संघ का निर्माण लोक में ज्ञान की ज्योति फैलाने के लिए है । इसीलिए बुद्ध, धर्म और संघ से ऊपर कोई नहीं । किन्तु भिक्षु-संघ भौतिक सुखों के लिए नहीं है । वह धनलिप्सा और राज्य-वैभव के ऊपर है । यहाँ कर्मों का क्षय है, कर्मों का जाल नहीं । दुःख से छुटकारा पाया जाता है ।"[3]

---

1. रांगेय राघव - पक्षी और आकाश - पृ. 177
2. वही - पृ. 89-90
3. वही - पृ. 233

राह न रुकी

आलोच्य उपन्यास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि बुद्ध-महावीर युग के उस पुनर्जागरण से संबंधित है जो हज़ारों साल के वैदिक युग के अंत में भारत में स्थापित हुई थी । उपन्यास में जैन धर्म के व्यापक प्रभाव के साथ ही तत्कालीन युग के सामाजिक यथार्थ को भी उभारा गया है । उपन्यास में दधिवाहन, धारिणी, वसुमति, शतानिक, बिंबसार, महावीर वर्द्धमान आदि पात्र ऐतिहासिक हैं । दधिवाहन और शतानिक का युद्ध, वसुमति का चंदनबाला के नाम से वर्द्धमान महावीर से प्रव्रज्या स्वीकार करना आदि घटनाएँ भी ऐतिहासिक है । इन ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन उपन्यास में यों मिलता है -"दधिवाहन कहता है - तो उतरो शतानिक । हम तुम ही इस द्वन्द्व का फैसला कर लें । तुम और मैं । यह सारी वैतनिक सेनाएँ हमारी-तुम्हारी रणलिप्साओं का आहार हैं । इन्हें चराया गया है अपनी तृष्णा के लिए कटवा देने को । सेना धर्म की स्थापना के लिए मनु द्वारा बनाई गई थी, क्षत्रियों का पराक्रम दिखाने के लिए । तुम वीर हो तो आओ । मैं तुमसे युद्ध करूँगा । जो जीतेगा उसी का शासन पराजित के राज्य पर होगा ।"[1] किन्तु अंगदेश की प्रजा विद्रोह मचलता है तो शतानिक दधिवाहन को कायर समझता है । वीरता का सबूत देने के लिए दधिवाहन अपने पेट में खड्ग घुसेड देता है ।

उपन्यास में चन्दनबाला महावीर से प्रव्रज्या स्वीकारती है । महावीर कहता है -"जिन धर्म बहुत प्राचीन है चंदनबाला । उत्थान

---

1. रांगेय राघव - राह न रुकी - पृ. 150

और पतन होते रहते हैं । इनके बीच ही व्यक्ति को उठना होगा और सारे लोक को उठना होगा । हिंसा, क्रूरता, हत्या को मिटाओ । दासता को दूर करो जिसने मानवता के पांवों में बेडियाँ डाल रखी हैं । सब मनुष्यों की आत्मा एक समान है । जाति-पाँति के बंधन झूठे हैं । कोई बडा नहीं, कोई छोटा नहीं ।"[1] अन्य सभी पात्र और घटनाएँ काल्पनिक हैं । वसुमति दधिवाहन और धारिणी की इकलौती बेटी है । राजकीय सुख-वैभव के बीच भी सामाजिक यथार्थ की कुरूपता और नारी पर पुरुष का अत्याचार देखकर वह विवाह न करने की शपथ लेती है । "जब कर्मजाल में स्त्री-पुरुष दोनों हैं तो स्त्री अपनी मुक्ति का पथ क्यों न पकडे ? क्या स्त्री का वास्तव में कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है ?"[2] उपन्यासकार ने "राह न रुकी" में नारी समस्याओं पर विशेष बल दिया है । उनकी दृष्टि में स्त्री ही मूलत: स्त्री की शत्रु होती है । "यों कहूँ अपने सुख के कारण स्त्री का स्वार्थ उसे विभिन्न दशाओं में विभिन्न रूपों में प्रेरित करता है ।"[3] उपन्यास में इन सारी समस्याओं को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में उभारा गया है । इसके कारण कथानक में एक जीवन्त वातावरण का सृजन संभव हुआ है ।

उपन्यास में युद्ध और शाँति की शाश्वत समस्याओं को भी उठाया गया है । दार्शनिक अहिंसा, अहिंसा चिल्लाते हैं, परन्तु राजा के लिए अहिंसा हो यह तो कोई नहीं कहता । इतिहास पुराण बताते है कि युद्ध शाश्वत हैं, वे ही वीरों का प्रमाण हैं और इसीलिए वे बराबर होते हैं ।"[4]

---

1. रांगेय राघव - राह न रुकी - पृ. 174-75
2. वही - पृ. 33, 54
3. वही - पृ. 57
4. वही - पृ. 137

किन्तु दधिवाहन युद्ध के बदले में शाँति चाहता है । वे धर्मयुद्ध का पक्षधर हैं । धर्मयुद्ध में सेनाएँ लड़ती थीं, प्रजा को नहीं सताया जाता था । "याद रखो जब तक खड्ग का प्रयोग होता रहेगा, तब तक घृणा इस पृथ्वी पर जीवित बनी रहेगी । जिसमें निरीह प्रजा की हत्या होगी, उसमें कभी विश्वास अपनी जड नहीं जमा सकेगा । यह अश्वमेध की बर्बर परंपरा । यह लोभ है शतानिक । हिंसा ही इसका आधार है । तुमने ग्रामीणों को लूटा है ।"[1] किन्तु अंगराज्य की जनता शतानिक से सहमत नहीं हैं । वे युद्ध के बदले में युद्ध चाहते हैं । मनुष्य के इस अहंकार को मिटाने के लिए दधिवाहन युद्धभूमि में अकेले जाता है । किन्तु शतानिक द्वन्द्व युद्ध के लिए सहमत नहीं होता तो वे अपने ही पेट पर खड्ग घुसेड लेता है । शतानिक स्तब्ध रह जाता है । इन घटनाओं के वर्णन में इतिहास के साथ ही उपन्यासकार की औपन्यासिक कल्पना का निर्वाह हुआ है । घटनाओं को काफी कुतूहलवर्धक बनाया गया है ।

उपन्यास का अंत पत्रात्मक शैली में लिखा गया है याने श्रेष्ठि धनवाह अपने मित्र मणिपूरकदास को पत्र लिखता है । इस पत्र में युद्ध के कारण और परिणाम को वर्णित किया गया है । अंगराज्य पर बिंबसार कब्जा जमाता है और शतानिक युद्ध न करके लौट जाता है । कामान्ध सैनिकों से बचने के लिए धारिणी आत्महत्या करती है, वसुमति को एक वेश्या के हाथों बिक जाती है । वेश्या को रुपये चुकाकर धनवाह श्रेष्ठि उसका उद्धार करता है । वह चंदनबाला नाम से श्रेष्ठि के घर में रहती है । उपन्यास के अंत में महावीर वर्द्धमान उससे भिक्षा लेता है -"महावीर ने पन्द्रह दिन का

---

1. रांगेय राघव - राह न रुकी - पृ. 45-46

उपवास तोडा है, यह लडकी धन्य है जिससे इस तपस्वी ने भिक्षा ली है ।"[1]
वसुमति महावीर से प्रव्रज्या स्वीकार करती है ।

रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक और काल्पनिक पात्र

रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक और काल्पनिक पात्रों का समुचित सन्निवेश हुआ है । उनके काल्पनिक पात्र भी ऐतिहासिक पात्र के समान ऐतिहासिक यथार्थ को चरितार्थ करने में सक्षम है, कहीं अधिक सशक्त भी है । यह रांगेय राघव की सबसे बडी उपलब्धि है । उनके उपन्यासों के पात्र मानव के स्वाभाविक गुणों से समन्वित हो पाए हैं । ऐतिहासिक और काल्पनिक पात्रों को स्वाभाविक बनाने के लिए रांगेय राघव ने उन्हें विभिन्न नाम, वेश-भूषा, भाषा, लिंग, रुचि-अरुचि, मान्यताएँ, बाह्याकार तथा वे सभी वैशिष्ट्य प्रदान किया है जो एक सजीव व्यक्ति प्राप्त कर सकता है । विभिन्न समाजों में रहनेवाले व्यक्तियों की धारणाएँ, आदर्श, सांस्कृतिक परंपरा और परिवेशात्मक यथार्थ एक दूसरे से भिन्न होते हैं । इसके अतिरिक्त मनुष्य की बाह्य क्रियायें उसकी मनोदशा से परिचालित होती हैं । अत: बाह्य क्रियाओं से अधिक आकर्षक एवं महत्वपूर्ण आंतरिक भावनाओं, मान्यताओं एवं निष्ठाओं का चित्रण माना गया है । इसीलिए उन्होंने अपने पात्रों को मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में विकसित किया है । पात्रों के मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों का विश्लेषण मनोवैज्ञानिक शैली में किया गया है । उनके पात्र व्यक्तिगत और वर्गगत दोनों विशेषताओं से युक्त हैं । वे आदर्शवादी होने की अपेक्षा अधिक यथार्थवादी हैं ।

---

1. रांगेय राघव - राह न रुकी - पृ. 168

प्रमुख ऐतिहासिक पात्र

राज्यश्री

"चीवर" उपन्यास का केन्द्रीय पात्र है राज्यश्री । वह प्रभाकरवर्द्धन की पुत्री, राज्यवर्द्धन और हर्षवर्द्धन की बहिन और गृहवर्मा की पत्नी है । रांगेय राघव ने उपन्यास में उसके अपरूप सौंदर्य का रूपवर्णन इस प्रकार किया है -"महासुन्दरी राज्यश्री नील घन के बीच में स्थिर हो गई सौदामिनी-सी, जिस समय शरीर पोंछती दासियों के बीच खडी हुई तब चीनांशुक के स्पर्श से सुस्थिर अंग लिए वह ऐसी प्रतीत हुई जैसे सूर्य के मंदिम स्पर्श से हिमावृत पुण्डरीक कमल के पत्तों के बीच एक अवर्णनीय कंप से व्याप्त होकर अपनी शोभा से स्वयं विभोर हो जाता है ।"[1] राज्यश्री का यह सौंदर्य ही उसके जीवन का अभिशाप बन जाता है । विलासी देवगुप्त उस पर मोहित होता है और वह छल से गृहवर्मन की हत्या करता है । राज्यश्री हडप ले जाती है और उसके बंदीगृह में रहती है । इसके प्रतिशोध करते उसके भाई राज्यवर्द्धन भी मारा जाता है । इसप्रकार राज्यश्री को राजकीय वैभव के बदले में विधवा होने का अभिशाप भोगना पडता है । पहले वह बहुत सुखी थी । राज्यश्री मित्तकाली नामक एक दासी की सहायता में बंदीगृह से भाग निकलती है । दोनों विंध्या वन में भटकती है । वह भिल्ल जाति के पास पहुँचती है । वहाँ चिता सजाकर वह सतीत्व निभाना चाहती है । वहाँ हर्षवर्द्धन उसे ढूँढ निकालता है और उसे कन्याकुब्ज वापस ले जाता है ।

अपने जीवन के तीसरे मोड पर राज्यश्री बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर सिर मुंडन करके चीवर धारण करती है और भिक्षुणी बनती है ।

---

1. रांगेय राघव - चीवर - पृ.5

जब हर्षवर्द्धन राष्ट्र को एकसूत्र में बाँधकर लौट आता है तब राज्यश्री पूछती है - अपार नरहत्या का यह उत्तरदायित्व किस पर होगा भैया ?"[1] राज्यश्री सम्राट हर्षवर्द्धन की आय का प्रायः आधा भाग विद्या और धर्म-प्रचार में लगा देती है । इसप्रकार उसका नाम एक मुक्तिदायिनी के रूप में प्रसिद्ध हो जाता है । चीनी यात्री ह्वान-च्वांग को कापालिकों ने बलि देने के लिए पकड लिया तो राज्यश्री कुछ सैनिकों की सहायता से उसे छुडवा लेती है । पुलिकेशन के साथ युद्ध की संभावना होने पर राज्यश्री ही कवि बाणभट्ट के हाथों संधि-प्रस्ताव भेजती है । राज्यश्री संसार में शाँति चाहती है । वह कहती है - युद्ध हर्षवर्द्धन और पुलिकेशन का है - फिर ये दोनों द्वन्द्व युद्ध कर लें । व्यर्थ असंख्य प्राणियों का यह नाश क्यों किया जा रहा है ? युद्ध एक प्रमाद है । पुरुष की बर्बरता है । लूट है, उत्पात है ।"[2] अंत में हर्षवर्द्धन और पुलिकेशन के बीच संधी स्थापित होती है ।

उपन्यासकार ने राज्यश्री के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को भी उपन्यास में चित्रित किया है - "राज्यश्री ! तू अपने को धोखा दे ले, परन्तु क्या तेरी आग बुझ जाएगी ? रात-रात भर चयनिका नहीं सोती, कवि बाण नहीं सोता । हर्षवर्द्धन अपनी सत्ता का त्याग करके उसके महत्व में अपने आपको डुबा देना चाहता है, पर क्या यह सब अपने को निरन्तर छलने रहना नहीं है ?"[3] उसका मन खट्टा हो गया । वह सोचती है कि जो कुछ है वह पुरुष निर्मित है, पुरुष के लिए है । स्त्री एक साधन है ।

---

1. रांगेय राघव - चीवर - पृ. 147
2. वही - पृ. 249
3. वही - पृ. 187

स्त्री अपनेपन में कुछ नहीं है । "राज्यश्री शमी वृक्ष की भाँति खडी थी । देवताओं के अतिरिक्त कौन जान सकता था कि उसके भीतर अग्नि छिपी हुई है । ऊपर से वह शाँत लगती थी ।"[1] इसप्रकार ऐतिहासिक पात्र होने पर भी रांगेय राघव की औपन्यासिक कल्पना से यह पात्र अधिक जीवन्त बन गया है ।

हर्षवर्द्धन

हर्षवर्द्धन को भावुक और मानवतावादी के रूप में उपन्यास में चित्रित किया गया है । बौद्ध धर्म के प्रति विशेष लगाव होने पर भी अन्य धर्मों के प्रति वह सहिष्णु है । वह साहित्यकारों, कलाकारों और धार्मिकों का आदर करता है और स्वयं उच्चकोटि के साहित्यकार है । नागानन्द, रत्नावली, आदि उसकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं । प्रसिद्ध कवि बाणभट्ट, भारवि, मयूर आदि उसके आश्रित थे । शासक बनते ही वह शशांक को युद्ध में पराजित करता है । किन्तु शशांक हारकर भाग निकलता है । हर्षवर्द्धन राज्यश्री को विंध्या वन में ढूँढ निकालता है और उसे कन्याकुब्ज वापस ले जाता है । इसके पश्चात् वह कन्याकुब्ज और स्थणीश्वर का शासन संभालता है । हर्षवर्द्धन धुर्धर योद्धा भी है । वह राज्यश्री से कहता है - "राष्ट्र को एकसूत्र में बाँधकर आया हूँ राज्यश्री, देश में शाँति स्थापित करके आया हूँ । इतने दिन से आर्यवर्त्त असुरक्षित था, उसे अभय देकर आ रहा हूँ । सामन्तों और महाराजाओं का गर्व खंडित हो गया है । कृषकों का भय दूर हो गया है ।.... बहुत दिन के बाद प्रजा ने चैन की साँस ली है । वह विकराल अंधकार मेरे खड्ग ने चूर-चूर कर दिया है ।"[2]

---

1. रांगेय राघव - चीवर - पृ. 191
2. वही - पृ. 146-47

इन सभी गुणों के होते हुए भी उपन्यास में हर्षवर्द्धन का चरित्र राज्यश्री के चरित्र के अनुसरण पर परिकल्पित है । अपनी बहिन के दु:ख से अभिभूत होकर हर्षवर्द्धन विवाह न करने की शपथ लेता है । अंत में उसके ही प्रभाव ग्रहण करके बौद्ध धर्म स्वीकार करता है ।

वसुमति

सति वसुमति को जैन साहित्य में चंदनबाला के नाम से बडी साध्वी के रूप में माना गया है । उसका ऊँचा स्थान है । महावीर ने स्त्री संघ के लिए उसे ऊँची जगह दी थी । "राह न रुकी" उपन्यास के प्रमुख नारी पात्र है वसुमति । वह दधिवाहन और रानी धारिणी की इकलौती बेटी है । उपन्यास में उसका प्रवेश एक दार्शनिक पात्र के रूप में है । उसका चिंतन परिपक्व और गंभीर है । तत्कालीन समाज में विवाहित नारियों के जीवन की कटुता को दर्शाकर वह शादी न करने की शपथ लेती है ।

वसुमति की सहनशीलता की कोई सीमा नहीं है । पिता की मृत्यु के बाद उसको सब कुछ नष्ट होती है । नारी सम्मान को बनाए रखने के लिए उसकी माँ आत्महत्या करती है । वसुमति को एक वेश्या के हाथों बेचा जाता है । वहाँ से श्रेष्ठि धनवाह उसका उद्धार करता है । श्रेष्ठि के घर में उसकी पत्नी वसुमति से कटुतापूर्ण बर्ताव करती है । चन्दनबाला नाम स्वीकार करके वसुमति वहाँ नौकरी करती है । अंत में महावीर से वह प्रव्रज्या स्वीकार कर लेती है ।

दधिवाहन

"राह न रुकी" उपन्यास में दधिवाहन को गंभीर, विचारशील, शिष्ट एवं मानवतावादी के रूप में प्रस्तुत किया गया है । वह अंगदेश का राजा है । किन्तु वह अपने को राज्य का अधिकारी न मानकर एक प्रहरी मानता है । "नगर की सुरक्षा का वास्तविक अर्थ यह नहीं कि राजा के पास विशाल सेना हो वरन् यह कि अधिक से अधिक मनुष्य सुखी रहें । यही मैं ने प्रयत्न किया है ।"[1]

नारी जागरण की भूमिका पर दधिवाहन का विचार विशेष उल्लेखनीय है -"परिवार की कल्पना स्त्री के लिए अनिवार्य है और वह कल्पना भी अपनी विशेष सीमाओं में ही रहती है । पत्नीधर्म । और वैधव्यधर्म भी आया होगा इसके बाद । किन्तु यह परंपरात्मक रूप मुझे अच्छा नहीं लगता । स्त्री राज्य, लोक और साहित्य के महान क्षेत्रों में नहीं उतरती ? उसका जीवन क्या केवल इन्हीं सीमाओं में समाप्त हो जाने के लिए है ?"[2] इसीलिए वह अपनी बेटी वसुमति को ऊपर उठाना चाहता है । वह उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित करता है जो परंपरा के विरुद्ध है । वह अपनी बेटी को उपदेश देता है कि "तुम्हें सबकी तरह साधारण जीवन व्यतीत नहीं करना है । समझी । तुम्हारे भीतर बड़ी शक्ति है । तुम्हें सबको एक नई राह दिखानी है । तुम इसलिए पैदा नहीं हुई हो, कि छोटे-छोटे सुखों में भूली रहो ।"[3]

---

1. रांगेय राघव - राह न रुकी - पृ. 102
2. वही - पृ. 101
3. वही - पृ. 102

जब शतानिक अंगदेश पर आक्रमण करता है तब दधिवाहन युद्ध के बदले में शाँति की स्थापना करना चाहता है । वह निरीह प्रजा की हत्या को रोकना चाहता है । युद्ध रोकने के लिए युद्ध-भूमि पर वह अकेले जाता है । वह शतानिक से कहता है -"यह है अश्वमेध की बर्बर परंपरा यह लोभ है शतानिक । हिंसा ही इसका आधार है । मनु से लेकर, अब तक सहस्रों राजा हो चुके हैं, मर चुके हैं । युद्ध और हिंसा से यह पृथ्वी आक्रांत रही है । किन्तु मनुष्य को मिल क्या सका है अभी तक ?"[1] मनुष्य अपने प्राणों के लिए सबसे डरता है । किन्तु दधिवाहन अपने पेट पर खड्ग घुसेड कर मृत्यु का वरण कर लेता है । इसप्रकार वह सबको चौंका देता है ।

दधिवाहन के साथ उपन्यासकार का गहरी सहानुभूति है । उसके चरित्र को विशिष्टता प्रदान करने में उन्हें पूर्ण सफलता भी मिली है ।

प्रमुख काल्पनिक पात्र

मणिबंध

"मुर्दो का टीला" का नायक मणिबंध अत्यंत महत्वाकांक्षी पात्र है । वह एक साधारण मछुआ है । वह मोअन-जो-दडो का महाश्रेष्ठि बनता है । उसके लिए उसे काफी संघर्ष करना पडता है । अपनी इस महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए वह सदैव प्रयत्नरत है । उपन्यासकार ने उसे अत्यंत रहस्यमय पात्र के रूप में चित्रित किया है । उपन्यास के अंत तक उसके

---

1. रांगेय राघव - राह न रुकी - पृ. 153

जीवन का यह रहस्य अधखुला रहता है । मिश्र के कठोर शासक फराऊन के समान मणिबंध को भी निरंकुश और अत्याचारी के रूप में चित्रित किया गया है । किन्तु उपन्यास में उसका प्रेमी और विलासी रूप भी अधिक जीवन्त है । किसी न किसी के प्यार पाने के लिए वह हमेशा तड़पता रहता है -"श्रेष्ठि का मन खट्टा हो गया । तो क्या नीलुफर उससे प्रेम नहीं करती ? यह भी क्या केवल धन और बल की दासी मात्र है ? क्या होगा इस समस्त वैभव का यदि एक स्त्री भी उसे प्यार नहीं कर सकती ।"[1] अपनी मिश्री दासी नीलुफर के अपरूप सौंदर्य पर मोहित होकर वह उसे अपने हृदय की स्वामिनी बना लेता है । किन्तु थोड़े दिनों के बाद वह द्रविड नर्तकी वेणी की मादकता और यौवन से आकर्षित होकर उसके साथ विलासिता में डूब जाता है । फिर भी नीलुफर और विल्लिभित्तुर परस्पर बातें करते देखते ही उसे जलन होता है- "श्रेष्ठि की आँखों में एक अन्धकार भरी छाया क्षण भर के लिए काँप उठी । उसने देखा । गायक अभी किशोरता को सद्य त्यागनेवाला युवक था और वह अब यौवन के अनेक सोपान चढ़ चुका था ।"[2] मणिबंध नारी को बाँधकर रखना चाहता है । वह उस द्रविड नर्तकी के पीछे बिलकुल पागल हो जाता है - "क्या तुम जानती हो मणिबंध की नाँव को कोई नहीं बाँध सकता ? वह तूफानों के झटकों से नहीं घबराती, किन्तु उसे एक माँझी चाहिए ।"[3]

मणिबंध का निरंकुश और अत्याचारी रूप भी उपन्यास में अधिक मुखरित है -"अधिकार हमने अपने सुख भोगने के लिए बनाए हैं । जो अधिकार उन्हें कुचलने के लिए हैं, उन्हें रोकने के लिए हैं, वे अधिकार नहीं,

---

1. रांगेय राघव - मुर्दों का टीला - पृ. 3
2. वही - पृ. 26
3. वही - पृ. 87

दास्य के बंधन हैं । मणिबंध उन्हें सदा ही निर्ममता से कुचलता रहा है और सदा ही कुचलता रहेगा ।"[1] नीलूफर के तिरोधान में वह अपने विश्वस्त दास अपाप को कोडा मारता है -"और कोडा चटपटाकर उठता और सडाक से उसके शरीर पर वेग से आ लिपटता, जब मणिबंध उसे छुडाता तो धातु के टुकडों वाला वह गैंडे की मोटी खाल का कोडा अपाप की चमडी को उधेड देता । मणिबंध क्रोध से विक्षुब्ध हो रहा था ।"[2] वृद्ध आमेन-रा के उपदेशानुसार मोअन-जो-दडो में गणतंत्र को समाप्त करके निरंकुश शासन स्थापित करने का प्रयत्न मणिबंध की निरंकुशता का प्रतीक है । इसकी सफलता के लिए अनेक षड्यंत्र रचे जाते हैं । जब जनता उसका विद्रोह करता है जो वह सैन्य के द्वारा भीषण नरसंहार करता है । आखिर वेणी भी उसे छोड देती है । अनजान में वह अपने बाप का हत्यारा बनकर हाहाकार करता है । प्रलय के थपेडों में वह स्वयं मिट जाता है । इसप्रकार मणिबंध प्यार और अधिकार को छलना में इतना दु:साहसी और अंधा हो जाता है कि प्रकृति को उस पर अंकुश डालना पडता है ।

नीलूफर

उपन्यासकार ने नीलूफर को अधिक स्वच्छन्दतावादी और विद्रोही पात्र के रूप में चित्रित किया है । वह "मुर्दों का टीला" के सबसे आकर्षक नारी पात्र है । वह अपने यौवन और अपरूप सौंदर्य से मणिबंध को पराजित करती है और दासी से स्वामिनी बन जाती है । मणिबंध ने

---

1. रांगेय राघव - मुर्दों का टीला - पृ. 44
2. वही - पृ. 122

उसे मिश्र के हाटों से खरीद लिया है । उपन्यास में नीलूफर के मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों का विश्लेषण मनोवैज्ञानिक स्तर पर अंकित है । जब मणिबंध उसके यौवन और सौंदर्य की उपेक्षा करके द्रविड नर्तकी की ओर आकर्षित होता है तब उसका नारी हृदय व्रणित हो जाता है । प्रतिस्पर्द्धा में वह मणिबंध के विरुद्ध खडी हो जाती है और वेणी से ईर्ष्या करती हैं । "नीलूफर की आँखों में एक अद्भुत चमक थी हेका यत्न करके भी नहीं समझ पाई कि उनमें वेदना थी या अतृप्त वासना, या प्रतिहिंसा किन्तु था उसमें कुछ और शायद कोई पुरुष देखता तो उसे लगता कि वह कुछ नहीं केवल भूखी आँखें थीं, तडफडातीं जो थोडी देर में मर जाएँगी क्योंकि उस उन्माद को झेलने की हिम्मत सबमें नहीं है ।"[1] नीलूफर इतना गतिशील पात्र है कि उसके विभिन्न रूप उपन्यास में प्रकट होते हैं । पहले वह मणिबंध की क्रीतदासी है । दूसरी बार वह गायक की प्रेमिका बन जाती है और अपने नि:स्वार्थ प्रेम का परिचय देती है -"मैं तुम्हारा प्रेम नहीं चाहती कि जो मुझे तुम्हारी भुजाओं में बाँध दे । मैं नहीं चाहती कि तुम मेरे यौवन रूप और वैभव की कीर्ति गाओ । मैं नहीं चाहती तुम मेरे मन को सांत्वना दो । किन्तु क्या इतना भी न कर सकोगे कि मेरी वेदना को स्पर्द्धा की घृणा से बचा दो ? क्या इतना भी नहीं कह सकते कि मैं प्रेम नहीं करती, दासी से स्वामिनी हो जाने के गर्व से अभिभूत होकर अपने अधिकारों के लिए जान दे देना चाहती हूँ ।"[2] किन्तु जब गायक भी उसके प्यार को नकारता है तो वह टूट नहीं जाती, विद्रोही बन जाती है । वह हेका से कहती है -"एक बार भी तेरे हृदय में वह हलचल नहीं हुई होगी । तू ने भय के अतिरिक्त और कुछ नहीं जाना । किन्तु अबके भय नहीं, मुझे प्यास लग रही है ।"[3] अंत में गायक का प्रेम पाने में वह सफल हो जाती है

---

1. रांगेय राघव - मुर्दों का टीला - पृ. 31
2. वही - पृ. 36
3. वही - पृ. 50

लेकिन मणिबंध का अत्याचार बढ गया तो विल्लिभित्तूर के साथ वह भी विद्रोही बन जाती है और जनवादी संघर्ष में भाग लेती है । वेणी से मिलने वह मणिबंध के महल में घुस जाती है तो आमेन-रा उसकी हत्या करता है । इसप्रकार नीलूफर को काफी संघर्षमयी पात्र के रूप में चित्रित किया गया है ।

विश्वजीत्

विश्वजीत् को उपन्यास में पागल भिखारी और विद्रोही के रूप में चित्रित किया गया है । वह मोअन-जो-दडो के पुराने नगर का था । उसकी विलासी जीवन के संबंध में लोगों का कहना है कि "श्रेष्ठि विश्वजीत् अब वृद्ध हो गए हैं । यौवन में वे क्या थे यह कौन नहीं जानता । हम तो जीवन भर में भी उतना मानसिक व्यभिचार तक नहीं कर सकेंगे जो इन्होंने अपने यौवन की एक रात में शारीरिक रूप से किया होगा ।"[1] विश्वजीत् के व्यापारिक साथी मिश्र के मरुभूमि में लूट लिया गया और उसकी सारी संपत्ति छीन ली गई । उसकी पत्नी और इकलौता बेटा भी मिश्र से लौटते वक्त तूफान के कारण समुद्र में खो गए । इन घटनाओं से पागल होकर वह मोअन-जो-दडो की राजपीथियों पर दर दर भटकता है । वह अपने जीवन के यथार्थ अनुभवों के बल पर उच्छृंखल जीवन बितानेवालों को गालियाँ देता है । मोअन-जो-दडो के महास्नानागार की ओर जाते गायक और वेणी से वह पूछता है -"कहाँ जाना चाहते हो तुम लोग ? वहाँ ? भीतर ? वह विष से भरा कुंड है, उसमें नरनारी नहीं, सजीवित नंगे पाप चिल्ला रहे हैं क्योंकि वैभव की लपेटों से वे जले जा रहे हैं । क्या तुम्हें उनके शरीरों के जलने की दुर्गन्ध नहीं आती, मूर्ख !"[2] सामंतों और श्रेष्ठियों की विलासी प्रवृत्तियों

1, रांगेय राघव - मुर्दों का टीला - पृ. 12

2. वही - पृ. 22

पर वह घृणा करता है । इसप्रकार तत्कालीन सामाजिक यथार्थ को सामने लाने में भी यह पात्र अधिक सहायक सिद्ध हुए हैं । वह कहता है -"जिस प्रकार भूमि में ढँकी नालियाँ बनाकर तुम्हें अपने कौशल का अभिमान है, उसीप्रकार तुम्हें अपने को मनुष्य कहते हुए भी कोई संकोच नहीं । मूर्खों । क्या तुम नहीं जानते कि उन नालियों में महानगर का समस्त मल और कल्मष बहता है । तुम्हारी नसों में भी अंधकार का विष है जिसे तुम जानकर भी झूँठा देना चाहते हो...."[1]

मणिबंध और अन्य श्रेष्ठियों के अत्याचारों को चुपचाप सहन करनेवाले सामान्य जनता पर भी वह गालियाँ देता है । इसप्रकार निष्क्रिय जनता की संवेदना को जगाने में वह सफल हो जाता है । उपन्यास के अंत में मणिबंध के विरुद्ध जनविद्रोह को आग फूँकने में वह सबसे आगे रहता है । किन्तु मणिबंध उसका पुत्र है जो समुद्र में खोया गया था । मणिबंध और वेणी के बातों से विश्वजीत् को इस बात का पता चलता है तो उसका हृदय पितृ सहज वात्सल्य से भर जाता है । अपने पुत्र की हत्या करने से वह विमुख हो जाता है और अंत में पुत्र के हाथों उसकी हत्या होती है । उपन्यास में तत्कालीन सामाजिक जीवन तथा ऐतिहासिक वातावरण के निर्माण में यह पात्र अधिक सक्रिय है ।

धनकुमार

"पक्षो और आकाश" का प्रमुख पात्र धनकुमार है । आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास होने के कारण इसमें अन्य पात्रों की

---

1. रांगेय राघव - मुर्दों का टीला - पृ. 10

ओर लेखक का विशेष ध्यान नहीं गया है । उपन्यास की सारी घटनाएँ धनकुमार के चारों ओर घूमती है । उपन्यास में वर्णित धनकुमार के भाव, विचार और कर्म का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि उसमें युग-युग खींच आए हैं । उसे अत्यंत संयत, संतुलित, उदार, सहृदय, प्रेमी, बहादुर, दार्शनिक आदि के रूप में चित्रित किया गया है । धनकुमार पुरपाइठान के नगर श्रेष्ठि धनसार का सबसे छोटा पुत्र है । व्यापारिक कौशल से वह नगर श्रेष्ठि बन जाता है । किन्तु अपने भाइयों की ईर्ष्या का पात्र बन गया तो वह सब कुछ छोडकर चला जाता है । आगे उसे स्थान स्थान पर सम्मान मिलता है, कहीं उसे अपार संपत्ति मिल जाता है तो कहीं पत्नियाँ । जरासंध, चंडप्रद्योतसेन, शतानिक, बिंबसार आदि ऐतिहासिक नरेशों के साथ उसका संबंध जोड दिया गया है । जरासंध उसे अपना अमात्य बनाता है, शतानिक और बिंबसार उसे कन्यादान देते हैं । शतानिक के जहाँ कन्यादान में मिले राज्य पर वह एक आदर्श नगर की स्थापना करता है । अंत में बुद्ध से उसकी भेंट होती है । उनसे प्रभावित होकर वह प्रव्रज्या स्वीकार करता है ।

उपन्यासकार ने धनकुमार को इतना अलौकिक बनाया है कि उसका चरित्र बिलकुल अस्वाभाविक बन गया है । उसे बुद्ध से भी महान चरित्र के रूप में चित्रित किया है । वह बौद्ध धर्म में कई परिष्कार लाता है । जैसे कि बुद्ध के संघ में ऋणी और सैनिक प्रव्रज्या ले रहे थे । धनकुमार बुद्ध से निवेदन करता है कि "ऋणी और सैनिक अपने स्वामी की अनुमति के बिना प्रव्रजित नहीं हो पाए ।"[1] इसप्रकार इस काल्पनिक पात्र को उपन्यासकार ने बुद्धकालीन ऐतिहासिक वातावरण में विकसित किया है ।

---

1. रांगेय राघव - पक्षी और आकाश - पृ. 229

प्रावृट

ब्राह्मण वृद्ध प्रावृट सौवीर कुल के महाराजा वह्निकेतु का अमात्य है । आभीरों के साथ युद्ध में वह्निकेतु की मृत्यु होती है । राज्यशासन नष्ट होने के पश्चात् एक व्यापक गणतंत्र की स्थापना के लिए प्रावृट कोशिश करता है । इसप्रकार वह छिप-छिपकर प्रजा में आग फूँकता है । आभीर राजा भूमन्यु के विरुद्ध जनता को खडा करता है । वृहद्वति प्रावृट की पुत्री है जो विधवा बन गई है । सनगा उसकी पालिता पुत्री है । प्रावृट के साथ उनकी पुत्रियाँ भी गणतंत्र की आकांक्षा करती हैं । उसकी दोनों पुत्रियाँ वह्निकेतु की पत्नी शैखावत्या और दोनों पुत्र वृषकेतु और शोणकेतु के साथ वन में रहती हैं । प्रावृट अपनी पुत्री सनगा को साहस बटोरने का उपदेश देता है -"नहीं दुहिते ! साहस ही इस जीवन का एकमात्र आधार है । जो अपने हाथ से साहस को छोड देता है, वह समुद्र में बिना पतवार की नौका में पडा हुआ, उत्ताल तरंगों की दया पर झटके खाता है और निर्मम लहरें उसे अत्यंत क्रूरता से निगल जाती हैं ।"[1] अपने जीवन के अंतिम क्षण तक प्रावृट इस साहसिकता और राष्ट्रप्रेम का परिचय देता है । आभीरों के साथ संघर्ष में वृषकेतु, शोणकेतु और जनता के साथ वह भी भाग लेता है । इस बार बंदी होने पर वृषकेतु उसे छुडवा देता है । उसकी निर्भीकता का परिचय तभी मिलता है कि बंदी होने पर भी वह भूमन्यु की पत्नी मदनमंथिनी को धिक्कारता है -"ब्राह्मण प्रावृट को विनय सीखनी नहीं पडती, वह सदा से ही सिखाता आया है सैनिक ! तुम वेतन भोगी हो, तुम गौरव नहीं समझ सकते । तो यह उस आभीरराज भूमन्यु की दासी पत्नी है । अच्छा है, जब धर्म लोप होता है, तब दासियाँ रानी ही होती है ।"[2] आभीरराज की हत्या के पश्चात्

---

1. रांगेय राघव - अंधेरे के जुगनू - पृ. 33
2. वही - पृ. 79

गंधकाल की कूटनीति से शोणकेतु क्षत्रिय शासन को पुनःस्थापित करता है । इसप्रकार प्रावृट का गणतंत्र स्थापित करने का यत्न असफल हो जाता है । वह छल से पकडा जाता है । गंधकाल उसे देशद्रोही ठहराता है और उसका सिर कटवा लेकर शोणकेतु को भेंट चढाता है । अपने आचार्य के दारूण अंत शोणकेतु, वृषकेतु आदि सबको चौंका देता है । उपन्यासकार ने अमात्य प्रावृट को अधिक सबल और मानवीय बनाया है ।

भूमन्यु

आभीर राजा भूमन्यु विदेशी है, साथ ही साथ विलासी भी है । दासों और संपत्ति के मोह ने सौवीर भूस्वामियों को विश्वासघाती बना दिया । इसलिए वे आभीरों को ले आए । इसप्रकार सौवीर भूमि में आभीर राजा का शासन जम गया । उसने सौवीरों की स्वतंत्रता को कुचल दिया । सौरभमेयी, मंदनमंथिनी, सुवर्चला आदि भूमन्यु की पत्नियाँ हैं । भूमन्यु की विलासिता दिन-व-दिन बढती गई । नारी का मांसल शरीर उसे अत्यंत प्रिय था । उसने नारी को केवल भोग्या बना दिया । इसी विलासिता के चरम सीमा पर प्रावृट की पुत्री वृहद्वति को उठा दिया जाता है । विधवा होने पर भी उसका सौंदर्य और वीरता से वह मुग्ध हो जाता है और उसमें अपने वीर्य से पुत्र की कामना करता है । वह वृहद्वति से कहता है -"सौरभमेयी, मदनमंथिनी, सुवर्चला इनमें से किसी का भी यौवन तेरा जैसा स्निग्ध मैं ने नहीं देखा रूपसी ।"[1]

---

1. रांगेय राघव - अंधेरे के जुगनू - पृ. 102

भूमन्यु ने शूद्रों को संपत्ति का स्वामी होने का अधिकार दे दिया, दासों को बढावा दिया । सौवीर भूस्वामियों के स्थान पर आभीर भूस्वामी रखा गया । इन सभी कारणों से सौवीर उसके विरुद्ध विद्रोह करता है । उसने छल से वृहद्रति और वृषकेतु का पाणिग्रहण कराता है । ब्राह्मण विधवा का विवाह अपने देवर के साथ ही संभव होता है और किसी से नहीं हो सकता । इसप्रकार राजनीतिक कूटनीति और षड्यंत्रों से वह उपन्यास का खलनायक बन गया है ।

ऐतिहासिक प्रभावान्विति और शब्दप्रयोग

रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों की भाषा विषय-वस्तु की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त इतिहास सत्य का भी बोध कराती है । भाषा के अनेक प्रयोगों द्वारा वह इतिहास को सामने लाता है । "मुर्दों का टीला" की भूमिका में रांगेय राघव ने लिखा है कि "मिश्र और एलाम, सुमेरु और मोअन-जो-दडो के दार्शनिक तत्वों की झलक देने का मैं ने प्रयत्न किया है । उसमें मैं ने विशेष ध्यान रखा है कि उस काल के अनुसार ही उन सबका वर्णन किया जाए ।.... आजकल हिन्दी में ऐसे बहुत से उपन्यास निकल रहे हैं जिसमें अद्भुत बातें साबित कर दी जाती हैं, ऐसे अनेक उदाहरण हैं । खेद है आपको यहाँ "दास दासों" की सी बात करते मिलेगा । उसकी परिस्थिति प्रकट है । वह उस काल के दार्शनिकों की-सी शिक्षित बहस नहीं कर सकता, न वह वैज्ञानिक भौतिकवाद मानता है, न द्वन्द्वात्मक ऐतिहासिक व्याख्या ही । मैं समझता हूँ, इतिहास को इतिहास की सफल झलक करके देना ठीक है, न कि अपने आपको पात्र बनाकर किए कराए पर पानी फेर

देना । भगवतशरण उपाध्याय एकमात्र ऐसे लेखक हैं, जिनमें यह दोष नहीं है । मुझे उनसे काफी सहायता मिली है किन्तु उनमें पौराणिकता काफी है ।"[1]

ऐतिहासिक प्रभावान्विति के लिए रांगेय राघव ने पात्रों को प्राचीन नाम दिया है । जैसे - मणिबंध, नीलूफर, हेका, अपाप, विल्लिभित्तूर, विश्वजीत्, आमेन-रा, चन्द्रा, तारा, प्रावृट, शैखावत्या, वह्निकेतु, वृषकेतु, शोणकेतु, भूमन्यु, गंधकाल, मदनमंथिनी, सौरभमेयी, सुवर्णला, धनकुमार, धनसार, धनदत्त आदि । ये सब उनके काल्पनिक पात्र है । इनके अतिरिक्त फराऊन, हर्षवर्द्धन, राज्यश्री, प्रभाकरवर्द्धन, शतानिक, बिंबसार, चण्डप्रद्योतसेन, जरासंध आदि ऐतिहासिक पात्रों के नाम से सहज ही ऐतिहासिकता का बोध होता है । मिश्र, एलाम, सुमेरु, मोअन-जो-दडो, मगध, कोसांबी, तक्षशिला आदि स्थान-नाम से भी ऐतिहासिकता का बोध कराया गया है । पुरपइठान, सौवीर भूमि, आभीर भूमि आदि काल्पनिक स्थान - नाम भी इतिहास का आभास देनेवाले हैं । उपन्यास में पात्रों के पारस्परिक शिष्टाचार के लिए प्राचीन संबोधनों का प्रयोग किया जाता है । जैसे महाप्रभु, महाश्रेष्ठि, स्वामिनी, महानागरिक आदि । वस्तुओं और पदाधिकारियों के लिए संस्कृत के प्रायः अप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया गया है । जैसे-शिरस्त्राण । इसके अतिरिक्त "मुर्दो का टीला" में मिश्री शब्दों का भी प्रयोग किया गया है । इसमें मोअन-जो-दडो की भौगोलिक स्थिति, लिपि, भाषा आदि का उल्लेख किया गया है । पात्रों के विविध आचरणों, उनके स्वाभाविक चिंतन तथा संवादों से तत्कालीन सभ्यता और संस्कृति को साकार किया गया है ।

---

1. रांगेय राघव - मुर्दो का टीला - भूमिका

उपन्यास में संस्कृत गर्भित भाषा का बाहुल्य है । जैसे "अपिस वृषभ भी तो पूज्य है और "अपिस" वृषभ की आराधना से मनुष्य का एक स्वार्थ सिद्ध हो सकता है । वह सर्वशक्तिमान से निकटता का अनुभव करता है । किन्तु मोअन-जो-दडो के निवासी देवता की आराधना को अपनी स्वार्थसिद्धि नहीं कहते ।"[1]

हर्षकालीन परिप्रेक्ष्य में लिखा गया "चीवर" भी ऐतिहासिकता से दूर नहीं है । महाकवि बाणभट्ट, भारवी, आदि की साहित्यिक रचनाएँ भावात्मक और कलात्मक दृष्टि से गंभीर और संयत है । "चीवर" में रांगेय राघव ने सुसंस्कृत भाषा का प्रयोग किया है । "अंधेरे के जुगनू" की सफलता प्रसंगानुकूल भाषा तथा गंभीर विषयों के प्रतिपादन की क्षमता के कारण है । इसमें अनेक तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है । साथ ही साथ रांगेय राघव ने इसमें अनेक अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया है जिसका अर्थ भी दिया है । जैसे कुत्तक (कालीन), पालिगुंण्मि (जुता), सीता (खेती का सरकारी कर) आदि । कहीं कहीं संस्कृत शब्दों की बहुलता से उपन्यास में दुरूहता भी आ गई है । जैसे "प्रकोष्ठ में काष्ठ, स्तंभों पर मणिमालाएँ लटक रही थी । बीच में अगस्पात्र रखा था । भित्तियों पर चित्र बने थे और एक स्वच्छन्द चन्दन की फलका पर उदाबिलाव की खाल के उद्दलोमी कंबल के नीचे कदलीमृग के चमडों से बना कम्बल कदली मिगपवरपच्चत्थरण पडा था । सामने के तिपाई पर गोणक बिछा था ।"[2] उपन्यास में वर्णनात्मक शैली में तत्कालीन वेश-भूषा का विस्तृत वर्णन भी किया गया है -"उनकी स्त्रियाँ

---

1. रांगेय राघव - मुर्दों का टीला - पृ. 192
2. रांगेय राघव - अंधेरे के जुगनू - पृ. 68

अधोवासक घुटनों तक लटकते पहने थीं किन्तु उन पर हिरण्य का कसीदा था, वे भारी थे, उनमें से, चलते समय, उनकी जंघाएँ दिखाई देतीं और जब वे बैठती तो कटि प्रदेश पर बंधी मेखला चमकती । इस अधोवासक का निचला छोर वे पीछे खोंस लेती और इसप्रकार सामने से उनकी जंघाओं और निम्नोदर प्रदेश का उतार-चढाव स्पष्ट दिखाई देता.... वे स्वस्थ और दृढ स्त्रियाँ पाँवों में ऊदबिलाव या उल्लू के चमडे से बनाए उपानह पहनतीं । उनके सिर के केश ऊपर की ओर बंधे होते और उनमें वे हिरण्य वस्त्र को बाँधकर बाँयें स्कन्ध पर से लटका कर नितंबों से ऊपर खोंस लेतीं....."[1]

"पक्षी और आकाश" तथा "राह न रुकी" में भी उपयुक्त संस्कृत-बहुल भाषा का प्रयोग किया गया है जो तत्कालीन ऐतिहासिक वातावरण को प्रस्फुटित करता है । इनमें भी प्राचीनता का सहज आभास देनेवाले अप्रचलित शब्दों का प्रचुर प्रयोग है । जैसे आराम (बाग), जरठ(वृद्ध) ग्रामणी (सरपंच) आदि । इसप्रकार रांगेय राघव ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिकता की प्रभावान्विति के लिए भाषा को युग के अनुसार उसकी संवेदना के अनुकूल बनाया है । इसीलिए उनके ऐतिहासिक उपन्यासों का शिल्प-विधान अधिक सशक्त एवं प्रासंगिक बन गया है ।

भाषा-शैली

रांगेय राघव ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में प्राय: समन्वित शैली का प्रयोग किया है । "मुर्दों का टीला" में वर्णनात्मक शैली

---

1. रांगेय राघव - अंधेरे के जुगनू - पृ.42-43

के साथ ही साथ फ्लैश-बैक शैली, विश्लेषणात्मक शैली, नाटकीय शैली आदि का प्रयोग किया गया है । "अंधेरे के जुगनू", "चीवर" आदि उपन्यासों में भी समन्वित शैली का प्रयोग किया गया है । "पक्षी और आकाश" आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास है । "राह न रुकी" में आत्म-कथात्मक शैली के साथ पत्रात्मक शैली का भी उपयोग किया गया है ।

रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों में प्रतीकात्मक, आलंकारिक और काव्यमयी भाषा का प्रयोग किया गया है । उनका "मुर्दों का टीला" इस प्रकार की भाषा का एक सुन्दर उदाहरण हैं । "मुर्दों का टीला" में नीलूफर मणिबंध से कहती है -"मैं सोच रही हूँ कि वसन्त का पानी पहले हा-पी में स्वच्छ होता है, फिर ज्येष्ठ के अन्त तक उसमें नीली छाया आ जाती है और बरसात में वह खूनी हो जाता है । स्वामी ! आपने मेरे हृदय में उथल-पुथल मचा दी है । जैसे-जैसे तीर समीप आता जा रहा है मेरे हृदय में एक भविष्य की काली छाया उतर रही है ।"[1] यहाँ नीलूफर के अंतर्संघर्ष को प्रतीकात्मक भाषा में चित्रित किया गया है । उपन्यास में काव्यात्मक भाषा का प्रयोग भी काफी मिलती हैं -"कनक कंकणों से उठती ध्वनि से वातावरण क्वणन कर रहा था । उस कलरव करते समुदाय की मस्ती से जैसे जल झूल रहा था और घाट के शुद्ध संगमर्मर पर उनकी प्रतिध्वनि के जगमग करते प्रकाश पर वे रंग-बिरंगे वस्त्र पहने सुन्दरियाँ ऐसी लगती थीं जैसे किसी धवल महागिरी पर इन्द्रधनुष विश्राम करने को रख दिया हो ।"[2] उपन्यास में कहीं प्रकृति की समता और कहीं विषमता से शैली की प्रभाव-तीव्रता

---

1. रांगेय राघव - मुर्दों का टीला - पृ. 5
2. वही - पृ. 19

में सहायता ली गई है । जैसे-"वातायन से छन-छनकर आता प्रकाश धीरे-धीरे कुछ गुनगुन उठता था । आलोक की वह मदिर चेतना भीतर फूट रही थी, जैसे मूँगे की भीत अनंत नील महासागर में निकल आई हो और सूर्य के उज्ज्वल प्रकाश में आँखें खोलने का प्रयत्न कर रही हो ।"[1] प्रकृति के इस कोमल रूप के अतिरिक्त उसके कठोर रूप का भी वर्णन किया गया है -"भूमि में से एक भयानक आवाज़ आई जैसे अब सब कुछ फट जाएगा । उसकी वह भीषणता एक बार हृदय को स्तब्ध कर गई । सबकी छाती पर जैसे शक्ति से किसी ने प्रहार किया । ऐसा लगा जैसे किसी ने कोई कठोर अट्टहास करके कुछ लंबी साँसें खींच ली हों और उस पर नीरवता फिर सनसना उठी ।"[2] मोअन-जो-दडो के महानागरिकों की उच्छृंखलता के विरुद्ध प्रकृति या ईश्वरीय शक्ति की प्रतिक्रिया के रूप में इस प्राकृतिक विक्षोभ को चित्रित किया है ।

'चीवर' उपन्यास में भी काव्यात्मक भाषा का वर्णन मिलता है । जैसे - नीले मृणाल खाकर कभी कभी अपनी लंबी, श्वेत और कोमल ग्रीवा झुका कर उत्फुल्ल पुंडरीक में से मकरंद खाने लगते । मंदिम समीरण दूर स्थित वातायनों में से भीतर प्रवेश करता और बहुत ही हल्के स्पर्शों से उन मांसल कमलों की सुरभी को मुग्ध-सा सूँघ लेता...."[3] उनके रूप-चित्र भावना की आँखों में उभरते चले जाते हैं और पाठक उस दृश्य से संपृक्त होने की स्थिति तक पहुँचता है । आलंकारिक भाषा और प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग 'चीवर' में मिलता है । इसमें युद्ध वर्णन आदि के लिए उपन्यासकार ने

---

1. रांगेय राघव - मुर्दों का टीला - पृ. 28
2. वही - पृ. 27
3. रांगेय राघव - चीवर - पृ. 3

वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है । रांगेय राघव ने "पक्षी और आकाश" में प्रकृति चित्रण के लिए संस्कृत के कवियों की परिपाटी अपनायी है । जैसे "बरसात की एक मुस्कान ने धरती में एक पुलक भर दी है । चारों तरफ़ हरियाली उठने लगी है । आकाश में बादलों के सार्थ घूमते फिरते हैं । न जाने वे कितने अज्ञात क्षितिजों तक जाते हैं और जहाँ ठहरते हैं वहीं पानी का दान करते हैं, पाल देते हैं और कहते हैं कि ये बहुत दूर जाते हैं, समुद्र से व्यापार करते हैं ।"[1] उनके "अंधेरे के जुगनू" और "राह न रुकी" में भी यत्र-तत्र आलंकारिक और काव्यात्मक भाषा का प्रयोग है । इसीलिए उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिकता के साथ ही साथ सौंदर्यात्मकता का परिचय भी मिलता है ।

सूक्तियों का प्रयोग

रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों में गति की अपेक्षा गहराई अधिक है । यह गहराई जीवन की अनुभूति और चिन्तन विश्लेषण से ओतप्रोत है । इन तत्वों की अभिव्यक्ति उनके उपन्यासों में सूक्तियों के द्वारा हुई है । उन्होंने जीवन के विभिन्न पक्षों को भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से देखा है । उनकी सूक्तियाँ मुख्यत: नारी तथा मानव जीवन संबंधी हैं ।

§1§ अभागी मक्खी को कोई यदि मकडी के जाले की ओर जाते हुए रोके तो समझती है कि कोई मुझे पकडकर मार डालना चाहता है और वह और भी अधिक वेग से जाले में जाकर फँस जाती है । §मुर्दों का टीला, पृ. 22§

§2§ पतंगा भी दीपक पर जलने आता है नक्षत्र पर नहीं । §वही, पृ. 70§

---

1. रांगेय राघव - पक्षी और आकाश - पृ. 5

§3§ स्त्री का गंभीर मौन उसकी मुखर वाचालता से कहीं अधिक भयानक होता है क्योंकि वह तब कुछ करना चाहती है जो वह कह नहीं सकती । §वही, पृ. 162§

§4§ स्वार्थ स्त्री को तब घेरता है जब उसे दांपत्य का सुख मिल जाता है । §वही, पृ. 270§

§5§ जय का लाभ सदा वे उठाते हैं जो पीछे रहते हैं । आगेवाले सदा बलिदान दिया करते हैं । §वही, पृ. 319§

§6§ यदि स्त्री मदिरा है तो पुरुष उसके ऊपर उफन आनेवाले बुदबुदों के समान है । उसके गर्वमें तरलता भी नहीं, केवल वायु होती है । §अंधेरे के जुगनू, पृ. 39§

§7§ ऊमस के भभकते मेघ को आग लगाने से वर्षा नहीं होती, उस समय उसे शीतल वायु चाहिए । §वही, पृ. 55§

§8§ किन्तु ममता का वेग भी अहं के जल को इतनी तरलता से नहीं तोड सकता । §वही, पृ. 56§

§9§ स्त्री एक बरसाती नदी है और पुरुष एक पर्वत है, वह अन्ततोगत्वा उसके चरणों पर गिरती है । §वही, पृ. 57§

§10§यश तो अहं की तृप्ति है । §पथी और आकाश, पृ. 42§

§11§ भाइयों की लडाई सदा ही ऐसी आग रही है, जिस पर पडोसी हाथ सेंकते रहे हैं । §वही, पृ. 47§

§12§ काल एक व्यापारी है जो सूद दर सूद मूल में जोडना चाहता है । §वही, पृ. 99§

§13§ स्त्री प्रेम देने को जन्म लेती है और पुरुष पाने को ।§वही, पृ. 216§

§14§ विलासी को मनुष्यता तो मर जाती है ।§राह न रुकी, पृ. 18§

§15§ अपनत्व की भावना ही सारी सहिष्णुता का जड है । §वही, पृ. 55§

रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों में मानव जीवन के विविध पक्षों पर प्रकाश डालने वाली अनेक सूक्तियाँ बिखरी पडी हैं । ये सूक्तियाँ उनके अपने जीवन-दर्शन से निसृत है । जीवन में प्रचलित मान्यताओं पर आधारित ये सूक्तियाँ पाठक को उत्तेजित करती हैं ।

निष्कर्ष

सामाजिक उपन्यास की रचना की तुलना में ऐतिहासिक उपन्यास की रचना के अवसर पर शिल्पपरक स्थितियों पर गहराई से विचार करना पडता है । अर्थात् रचना की वेला में विशेष प्रकार का आयोजन या संयोजन की आवश्यकता है । लेकिन उपन्यासकार को इस ओर काफी ध्यानावस्थित होना पडता है कि इसके आयोजन रचना पर हावी न हो । वस्तुत: ऐतिहासिक उपन्यासकार अपने विशिष्ट रचना-शिल्प के माध्यम से इतिहास का, चाहे उसमें उसकी कल्पनाशक्ति की जितनी भी मात्रा हो, परिदृश्य खडा करता है । रांगेय राघव ने यही किया है । उसके लिए उपयुक्त घटकों का निर्वाह भी उन्होंने किया है । इन उपन्यासों में उनके वातावरण सृजन से लेकर विशिष्ट शब्द प्रयोग तक उपरोक्त आयोजन के अधीन आनेवाले तत्व हैं । शिल्प के स्वतंत्र विकास के साथ-साथ ये उपन्यास एक कृत्रिम पक्ष भी लिए ले चलते हैं । पर रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यास प्रकारान्तर से कृत्रिम पक्षों को रचनात्मक बना ले चलते हैं । उनको सांस्कृतिक वातावरण में गूँथने का कार्य ही उन्होंने किया है । अत: उनके शैल्पिक तत्व अपने सृजन के अनुरूप ही स्वीकृत है ।

उपसंहार

उपसंहार

रांगेय राघव हिन्दी के मूर्द्धन्य साहित्यकारों में से हैं । यद्यपि परंपरा से वे दक्षिण भारतीय हैं फिर भी जन्म से लेकर मृत्यु तक उत्तर भारत में ही उनका जीवन बीता और वे हिन्दी भाषी साहित्यकारों के बीच में ही सदैव स्थान पाते हैं । यही नहीं कि उनका पूरा जीवन हिन्दी के लिए समर्पित भी था । जीवन में समर्पण बोध, लेखन में कर्तृत्व के प्रति आत्मीयता और चिन्तन में प्रगतिशील होना एक साहित्यकार के लिए बड़ी बात है । अर्थात् उनका व्यक्ति पक्ष और उनकी दृष्टि का वस्तुपक्ष अलग-अलग ध्रुवों में खड़ा दीखता नहीं है । दोनों में सातत्य है । इसलिए उनकी रचनात्मकता में कहीं-कहीं शिथिलता के होते हुए भी अधिकतर संदर्भों में उन्होंने गंभीरता का परिचय दिया है । रांगेय राघव उस "दूसरी परंपरा" के लेखकों में हैं जिन्होंने भारतीय इतिहास, संस्कृति, समाजशास्त्र और नृतत्वशास्त्र का सम्यक् अध्ययन किया है और उसे अपनी रचनाशीलता का अभिन्न अंग बनाया है । हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, राहुल सांकृत्यायन और रांगेय राघव सरीखे रचनाकारों ने अपनी रचनात्मकता की दुर्लभ मौलिकता का परिचय ही नहीं दिया बल्कि हिन्दी की पारंपरिक चिन्तनधारा को पूरी तरह से परिवर्तित किया है । रांगेय राघव का साहित्य भी इसी संदर्भ में समझा और आस्वादित होता रहेगा । इसका कारण यह है कि उनका अनुभव इतना विराट, उनकी दृष्टि इतनी संपन्न और उनकी सूझ-बूझ तीखी और इतनी गहरी है कि उसको अनदेखा करना कठिन है । इसलिए जीवन संबंधी जो परिदृश्य वे खड़ा करते हैं वह असामान्य ही रहा है ।

यह विदित बात है कि रांगेय राघव ने साहित्य की सभी विधाओं में अपनी लेखनी चलायी है । इसका यह मतलब नहीं कि जितनी उनकी रचनाएँ हैं, वे सब उत्तम कोटि की हैं । वस्तुतः लेखनकार्य के इस विस्तार ने उनमें बिखराव ही पैदा किया है । इसके बावजूद इस विस्तृत लेखन चर्या में एक अभूतपूर्व सत्य निहित है । रांगेय राघव ने अपने जीवन में नौकरी न करने का फैसला किया था । अर्थात् उन्होंने लेखन को अपना मुख्य कर्म मान लिया था । लेखन जब मुख्य कर्म हो जाता है तो अपने को किसी विधा-विशेष में बाँधना मुश्किल हो जाता है । यही नहीं तब एक विशेष प्रकार की प्रयोगपरकता की इच्छा भी जागृत होती है । यह प्रवृत्ति रांगेय राघव में थी । इस कारण से उन्होंने तरह-तरह की रचनाएँ प्रस्तुत की है । उनकी संख्या भी कम नहीं है । संख्या का वैपुल्य और विषय का वैविध्य रांगेय राघव की रचनात्मकता की अपनी विशेषता है । लेखन के दायरे में ही वे बने रहे । जहाँ वे अधिक प्रयोगपरक रहे वहाँ उनमें बिखराव आ गया है । अन्यथा उनकी सृजनात्मकता सुरक्षित ही रही है ।

अपने जीवन में समझौतावादी न होने के कारण, प्रगतिशीलता के सशक्त पक्षधर होने के कारण साहित्य के अलावा उनका एकमात्र कार्यक्षेत्र प्रगतिवादी साहित्य का वह मंच था जहाँ वे अपनी प्रखरता का परिचय देते रहे हैं । सामयिक सामाजिक सवालों से और स्थितियों से जूझने का कार्य इसलिए उन्होंने किया है । अर्थात् साहित्य के प्रति उनका समर्पणबोध समर्पण सापेक्ष यांत्रिक प्रक्रिया नहीं है । उसमें उनकी मानवीय दृष्टि, प्रगतिगामी चिन्तन, स्वातंत्र्येच्छा और निम्नवर्गीय तबके के प्रति प्रेम और प्रखर राजनीतिक झुकाव आदि हैं । रांगेय राघव ने सुविधाभोगी लेखकों की परंपरा

नहीं बल्कि समर्पित प्रखर विचारवाले रचनाकारों की परंपरा चलायी है । इस अर्थ में भी वे दूसरी परंपरा के लेखक हैं । असुविधाओं के बीच में रहना और जीवन की विभिन्न स्थितियों पर लिखना तथा अपनी तीव्र प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करना खतरे से खाली नहीं है । अर्थोपार्जन की स्थितियाँ भी ऐसे में काफी ढोली ही रहती हैं । इन्हीं के बीच में रांगेय राघव ने अपने को बनाया है । इसमें उनके लेखक और चिन्तक के विकास के प्रकरण स्वत: मिल जाते हैं ।

हिन्दी कथा साहित्य में रांगेय राघव का नाम विशेष स्मरणीय है । "गदल" जैसी कहानियों के रचयिता के रूप में, "कब तक पुकारूँ", जैसे उपन्यासों के लेखक के रूप में वे सदैव याद किए जाएँगे । कथा साहित्य के अंतर्गत ऐतिहासिक उपन्यास की शाखा को रांगेय राघव ने विशेष रूप से विकसित किया है । रांगेय राघव ने जिस प्रकार के ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं, ऐसे उपन्यास हिन्दी में ही नहीं बल्कि अन्य भारतीय भाषाओं में भी कम लिखे गये हैं । इसलिए उस क्षेत्र में उनका मौलिक योगदान है ।

इतिहास रांगेय राघव का प्रिय विषय है । उपलब्ध इतिहास तक से अपने को वे सीमित नहीं करते हैं । इतिहास के शोधार्थियों के समान वे उसमें डूबे रहते हैं और उसी का सामग्री का उपयोग करके अनुमान के बल पर वे उस समय की सामाजिक स्थितियों का एक परिदृश्य खड़ा करते हैं । रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों का इतिहास-संदर्भ भी मुख्य है और उनका सामाजिक संदर्भ भी । इतिहास का यह नया प्रयोग उनकी लेखनी की मौलिकता का प्रमाण है ।

'मुर्दों का टीला,' "चीवर," "पक्षी और आकाश" आदि उनके प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास हैं । प्रागैतिहासिक कथा पर आधारित उनका प्रमुख उपन्यास "मुर्दों का टीला" विषय विस्तार और इतिहास-दृष्टि के आधार पर मौलिक ही कहा जाएगा । इसका कारण यही है कि उसकी ऐतिहासिकता पर अंकुश लगाना मुश्किल है । लेकिन उपन्यासकार की कल्पनाशक्ति और उपलब्ध कुछ सूचनाओं और सामग्रियों का संतुलित उपयोग करके उन्होंने कथा का एक नया संदर्भ प्रस्तुत किया है । वास्तव में यह उपन्यास कल्पनाश्रित ऐतिहासिक उपन्यास का आभास प्रदान करनेवाला है । लेकिन कल्पना के बीचों बीच उभर कर आनेवाली सामाजिकता का विन्यास जब वे प्रस्तुत करते हैं तो उनकी रचनात्मकता का परिचय हमें मिलता है । वस्तुतः वे इतिहास की खोह में से एक समाज को पुनर्सृजित कर रहे हैं । हमारी परंपरा के मूल तक वे जा रहे हैं और इस प्रकार के हमारी संस्कृति को परिभाषित कर रहे हैं ।

जाति प्रथा, धार्मिक स्थितियाँ आदि रांगेय राघव के इच्छित क्षेत्र हैं । भारत के इतिहास के अध्येता के लिए इनका उपयोग करना पड़ता है क्योंकि वे सिर्फ राजनीतिक गतिविधियों के लेखक का संकलनकर्ता नहीं हैं । वे समाजशास्त्र के सन्देशक भी हैं । उन्हें यह तथ्य ढूँढ़ निकालना पड़ता है कि विशेष राजनीतिक परिस्थितियों के बीच कौन सा सामाजिक स्वत्व विकसित हुआ था और उसकी आर्थिक-स्थिति कैसी थी तथा उन आर्थिक स्थितियों ने समाज को कहाँ तक प्रभावित किया था । इतिहासकार यही करता है । भारत के सामाजिक जीवन के स्वत्व की पहचान का कार्य ही उन्होंने किया है । उसमें दर्शित उच्च-नीचत्व हो, जातिप्रथा या दासप्रथा द्वारा निर्मित द्वन्द्वात्मक स्थिति हो, उसमें वे इसी तथ्य को रेखांकित करते हैं ।

अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में एक और तथ्य को रांगेय राघव ने प्रमुखता दी है और वह है सामाजिक स्वत्व के साथ रेखांकित करने योग्य मूल्यपरक संदर्भ । वस्तुतः यह उपन्यासकार का कोई आदर्श स्थापन नहीं है । पर वह उनकी इच्छित दृष्टि अवश्य है । भावात्मकता, वैचारिकता, सामाजिकता और राजनीति के संदर्भ में उन्होंने समय-समय पर अपने मूल्य-परक संदर्भों को व्यक्त किया है चाहे वह भाव के स्तर पर प्रेम हो, वैचारिकता के स्तर पर न्याय और अन्याय की बात हो, सामाजिकता के स्तर पर मनुष्य की स्थिति हो, या राजनीति के स्तर पर युद्ध की बात हो वे अपने मूल्य संदर्भ व्यक्त करते ही रहते हैं । अतः रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों का नैतिक संदर्भ इस अवसर पर विचारणीय हो जाता है । जब एक साहित्यकार मानवीय स्थिति को प्रमुखता देता है, तमाम परिपार्श्वों को मनुष्य केन्द्री बनाता है तो उनके सामने कुछ नैतिक सवाल उठ खड़े होते हैं और उनसे जूझना पड़ता है । तब वह अपना विकल्प ही प्रस्तुत सकता है । उसका वह विकल्प वास्तव में उसके नैतिक प्रेरणाओं से युक्त है । इन संदर्भों में प्रायः ऐतिहासिक उपन्यास अपनी इतिहास-कथा की मुख्य गति से अलग हटता है । यहाँ पर या तो पात्र का विकास या उसकी मानसिक द्वन्द्वात्मकता का परिचय हमें मिलता है । उस विकास के अभाव में वह खड़ा नहीं हो सकता है । इसलिए यह कहना अनुचित नहीं है कि आदर्श स्थापना की एकमात्र उद्देश्य नहीं बल्कि जीवन की विपरीत अवस्थाओं में, विषयमूलक स्थितियों में, द्वन्द्व अवस्था में वांछित पक्ष कौन का है । इतिहास गवाह है कि हमारी सभ्यता के प्रतिमान इस में निहित है । इसलिए रांगेय राघव द्वारा प्रक्षेपित नैतिक संदर्भ उनकी सशक्त सामाजिक अवधारणा को प्रामाणित कर रहे हैं ।

भारतीय संस्कृति की खोज को वस्तुतः रांगेय राघव के उपन्यासों के प्रतिमान के रूप में स्वीकार किया गया है । इस प्रकरण में यह प्रश्न उठता है कि भारतीयता की पहचान कैसे संभव है जब भारत का भौगोलिक संदर्भ स्पष्ट रूप में विन्यसित नहीं है । भारत का आधुनिक-भौगोलिक संदर्भ जिस प्रकार एक राजनीतिक परिणति है इसी प्रकार उसका प्राचीन संदर्भ उसकी सांस्कृतिक परिणति है । अलग-अलग खंड राज्यों में उसका विभाजित रहना राजनीतिक कारणों का प्रतिफलन है । पर भारतीय कहने योग्य कुछ सांस्कृतिक धाराएँ उस समय भी पहचानने जा सकती हैं । सांस्कृतिक परिपार्श्व के अंतर्गत सामाजिक जीवन की गतिविधियों और उसको पुष्ट करने वाली कुछ भावात्मक परिणतियों का समन्वय रहता है । शतियों से अर्जित जीवन-दृष्टि ही संस्कृति है । भारतीय जीवनने इस प्रकार एक संपुष्ट जीवन-दृष्टि अपनायी थी जो अन्य संस्कृतियों से अलग है । रांगेय राघव ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में इस सांस्कृतिक पक्ष को उभारा है ।

जब हम किसी उपन्यास को ऐतिहासिक उपन्यास कहकर उसे अलगाते हैं तो उसकी अपनी कुछ विशिष्टताएँ होती हैं । ये विशिष्टताएँ जिस अनुपात में उसके कथ्य को निर्धारित करती हैं उसी अनुपात में उसके रूपबंध को भी निर्धारित करती हैं । ऐतिहासिक उपन्यासों के कुछ स्वीकृत निर्धारित तत्व होते हैं जिनके अभाव में वे ऐतिहासिक उपन्यास की कोटि में आती नहीं है । प्रायः रांगेय राघव ने उन कुछ तत्वों का पालन अवश्य किया है । लेकिन अधिकतर संदर्भों में उन्होंने अपना रास्ता भी तय किया है । जहाँ उन्होंने पालन किया है वहाँ वे अधिकाधिक ऐतिहासिक उपन्यासकार नज़र आते हैं और जहाँ उन्होंने पालन नहीं किया है वहाँ अधिकाधिक सांस्कृतिक

उपन्यासकार नज़र आते हैं । इसका कारण यह है कि निर्धारित तत्वों के पालन के पीछे ऐतिहासिक उपन्यास-शिल्प के वांछित-पक्ष के प्रति उनकी स्वीकृति है जबकि वांछित पक्ष के तिरस्कार के साथ उपन्यास शिल्प अपने में, या अपने अंतरंग में एक नया पथ ढूँढना शुरू करता है । यह नया पथ सचमुच उनके सांस्कृतिक दृष्टिकोण को व्यक्त करनेवाला है । इसमें उनके पात्रों की व्यवस्था, उनके जीवन की गति, उनके जीवन दर्शन और सामयिक स्थितियों का उपन्यासकार द्वारा विन्यास आदि आते हैं और इतिहास फलक में इतिहासेतर फलक स्पष्ट होने लगता है जिसे सांस्कृतिक कहना अधिक उचित है ।

रांगेय राघव में इतिहास का मोह नहीं है । लेकिन इतिहास द्वारा स्वीकृत तथ्यों के प्रति कहीं-कहीं विरोध है । जब उन्होंने भारतीय इतिहास का अध्ययन प्रस्तुत किया तब उनकी यह दृष्टि व्यक्त हो गयी थी । यही बात उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में भी मिलती है । अर्थात् इतिहास के किन्हीं अध्यायों का पुनर्विश्लेषण मात्र उनका उद्देश्य नहीं है । इतिहास के चयन के साथ-साथ उसकी अन्तर्धाराओं का चयन भी उनका उद्देश्य रहा है । इस कारण से रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यास सांस्कृतिक उपन्यास की श्रेणी में भी रखने योग्य है ।

उपन्यास में कथा कथन और उसके अनुरूप विकसित भाषिक संरचना का भी महत्व है । किस्सागोई को रीति और कथन-भंगिमा की भाषा की स्वीकृति इसलिए ऐतिहासिक उपन्यास में आवश्यक है कि ऐतिहासिक उपन्यास का अंतरंग और बहिरंग विकास इसी शिल्प से ही संभव है ।

कथा का उतार-चढ़ाव ऐतिहासिक उपन्यास की घटनाप्रधानता का परिणाम है । लेकिन वह मात्र कथानक का उतार चढ़ाव नहीं है।उसमें उपन्यासकार की कथागति है और उनका पात्र-विन्यास है । अर्थात् एक तर्क संगत परिदृश्य में एक सृजनात्मक पक्ष का विलयन होता है । तर्कसंगत इतिहास को सबसे पहले कल्पना के आधार पर अधिक मानवीय बनालिया जाता है और उसमें पुनः पात्रों, उनके संबंधों, द्वन्द्वों का एक सृजनात्मक पक्ष विलयित किया जाता है । तब उसकी तार्किकता मिटती है और सृजनक्षमता विवृत होती है । यहाँ भाषा का उपयोग भी मुख्य होता है । तार्किकता मिटाते वक्त भी इतिहास का हनन वह नहीं कर सकता है । सृजनात्मक इतिहास की भाषा तभी मूल्यवान है जब वह पूरी तरह से औपन्यासिकता को बनाए रखें । मात्र ऐतिहासिक शब्दों और प्रतीकों के प्रयोग से भी यह संभव नहीं है जबकि इन शब्दों और प्रतीकों के प्रयोग के पार स्थित ऐतिहासिक वातावरण को पूरी तरह से उतारना भी पड़ता है । रांगेय राघव के पास इतिहासाधारित औपन्यासिक वातावरण का विराट संसार था जिसे उन्होंने विभिन्न ढंग से प्रस्तुत किया है । उनका लक्ष्य भारतीयता का स्थापन रहा है जो इनके माध्यम से सुस्पष्ट हो सके ।

सामाजिक या राजनीतिक उपन्यासों की तुलना में हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यास समृद्ध नहीं है । लेकिन जिन कुछ ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने इस दिशा में कार्य किया है उनमें रांगेय राघव का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । इसका एकमात्र कारण उनकी औपन्यासिकता की विराटता है । इतिहास एवं प्रागैतिहासिक काल के विस्तृत परिदृश्य को ही उन्होंने चुना है । यह वस्तुतः उनकी चयन-क्षमता है ।

प्रतिभा को रांगेय राघव ने जड़ विन्यासों का उपकरण नहीं बनाया है । प्रतिभा को उन्होंने स्वयं विकसित किया है । इसमें उनकी अनुभूतियों को खूब विकसित करने का अवसर भी प्रदान किया गया है । इस कारण से उपन्यास में प्रतिभा की प्रखरता हावी नहीं है । उनमें उपन्यासकार की अनुभूत्यात्मक लयात्मकता का आभास भी मिलता है जो उनकी मौलिकता है ।

रांगेय राघव की हर रचना प्राय: वाद-विवाद के घेरे में आती है और अनुकूल एवं अननुकूल मत इसके संबंध में प्रकट होते रहते हैं । लेकिन उनके सृजनशील व्यक्तित्व एवं सृजनात्मकता को लेकर कोई वाद-विवाद नहीं है । अपने ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से उपन्यास के क्षेत्र में नयी परंपरा स्थापित करने का कार्य जो रांगेय राघव ने किया है, वह उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि है ।

ग्रंथ-सूची

I. रांगेय राघव की रचनाएँ

(क) ऐतिहासिक उपन्यास

1. मुर्दों का टीला – किताब महल
इलाहाबाद
तृ. सं. 1963.

2. चीवर – किताब महल
इलाहाबाद
सं. 1958.

3. अंधेरे के जुगनू – किताब महल
इलाहाबाद
सं. 1957.

4. पक्षी और आकाश – राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, द्वि. सं. 1961.

5. राह न रुकी – राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली
द्वितीय सं. 1961.

(ख) जीवनचरितात्मक उपन्यास

6. प्रतिदान – शब्दकार, दिल्ली
प्र. सं. 1952.

7. देवकी का बेटा – राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, प्र. सं. 1954.

8. यशोधरा जीत गई – राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, प्र. सं. 1954.

९. लोई का ताना - राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, प्र.सं. 1970.

10. रत्ना की बात - आत्माराम एण्ड सन्स
दिल्ली, प्र.सं. 1954.

11. भारती का सपूत - राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, प्र.सं. 1970.

12. आँधी की नीवें - आत्माराम एण्ड सन्स
(प्रारंभ में राणा की पत्नी दिल्ली
शीर्षक से प्रकाशित) प्र.सं. 1955.

13. लखिमा की आँखें - राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, प्र.सं. 1972.

14. जब आवेगी कालघटा - राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, प्र.सं. 1958.

15. धूनी का धुआँ - शब्दकार
दिल्ली, सं. 1978.

16. मेरी भवबाधा हरो - राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, सं. 1972.

(ग) आँचलिक उपन्यास

17. कब तक पुकारूँ - राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, तृ.सं. 1963.

18. काका - राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, प्र.सं. 1953.

19. धरती मेरा घर - राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, प्र.सं. 1961.

(घ) सामाजिक उपन्यास

20. घरौंदा - राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, द्वि.सं. 1969.

21. विषाद मठ - आत्माराम एण्ड सन्स
दिल्ली, प्र.सं. 1946.

22. सीधा सादा रास्ता - किताब महल
इलाहाबाद, प्र.सं. 1948.

23. हुज़ूर - किताब महल
इलाहाबाद, सं. 1959.

24. उबाल - राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, प्र.सं. 1954.

25. पराया - किताब घर
दिल्ली, प्र.सं. 1954.

26. अंधेरे की भूख - किताब महल
इलाहाबाद, प्र.सं. 1955.

27. बोलते खंडहर - किताब घर
दिल्ली, प्र.सं. 1955.

28. बौने और घायल फूल - आत्माराम एण्ड सन्स
दिल्ली, प्र.सं. 1957.

29. राई और पर्वत - शब्दकार
दिल्ली, प्र.सं. 1958.

30. बन्दूक और बीन - राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, द्वि.सं. 1970.

31. छोटी सी बात - आत्माराम एण्ड सन्स
दिल्ली, प्र.सं. 1959.

32. पथ का पाप - राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, सं. 1992.

33. आग की प्यास - किताब महल
इलाहाबाद
प्र.सं. 1961.

34. कल्पना - राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, प्र.सं. 1961.

35. प्रोफैसर - राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, सं. 1987.

36. दायरे - किताब महल
इलाहाबाद
प्र.सं. 1961.

37. पतझर - राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, सं. 1962.

38. आखिरी आवाज़ - राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, प्र.सं. 1962.

(ड) गाथा

39. महायात्रा गाथा (अंधेरा रास्ता) - किताब घर
नई दिल्ली
द्वि.सं. 1967.

40. महायात्रा गाथा (रैन और चंदा) - किताब घर
नई दिल्ली, प्र.सं. 1996.

(च) कहानी संग्रह

41. साम्राज्य का वैभव – किताब महल
इलाहाबाद, प्र.सं. 1947.

42. देवदासी – राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, प्र.सं. 1947.

43. समुद्र के फेन – आत्माराम एण्ड सन्स
दिल्ली, प्र.सं. 1947.

44. अधूरी सूरत – आत्माराम एण्ड सन्स
दिल्ली, प्र.सं. 1949.

45. जीवन के दाने – राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, प्र.सं. 1949.

46. अंगारे न बुझे – किताब महल
इलाहाबाद, प्र.सं. 1951.

47. ऐयाश मुर्दे – आत्माराम एण्ड सन्स
दिल्ली, सं. 1953.

48. इन्सान पैदा हुआ – किताब महल
इलाहाबाद, सं. 1957.

49. पाँच गधे – राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, सं. 1960.

50. मेरी प्रिय कहानियाँ – राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, सं. 1961.

51. एक छोड एक – आत्माराम एण्ड सन्स
दिल्ली, सं. 1963.

(छ) रिपोर्ताज

52. तूफानों के बीच – शब्दकार
दिल्ली, सं. 1946.

(ज) संकलित, पुनर्लिखित कहानियाँ

53. प्राचीन पुरानी कहानियाँ – किताब महल
इलाहाबाद, सं. 1957.

54. प्राचीन ट्यूटन कहानियाँ – किताब महल
इलाहाबाद, सं. 1957.

55. प्राचीन प्रेम और नीति की कहानियाँ – किताब घर
दिल्ली, सं. 1959.

56. संसार की प्राचीन कहानियाँ – किताब घर
दिल्ली, सं. 1959.

57. अन्तर्मिलन की कहानियाँ – आत्माराम एण्ड सन्स
दिल्ली, सं. 1959.

58. प्राचीन ब्राह्मण कहानियाँ – किताब महल
इलाहाबाद, सं. 1959.

(झ) नाटक

59. स्वर्गभूमि का यात्री – आत्माराम एण्ड सन्स
दिल्ली, सं. 1951.

60. रामानुज – आत्माराम एण्ड सन्स
दिल्ली, सं. 1952.

61. विरूढक - किताब महल
इलाहाबाद, सं. 1955.

(ङ) काव्य

62. अजेय खंडहर (खंड काव्य) - राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, सं. 1954.

63. पिघलते पत्थर (कविता संग्रह) - किताब घर
दिल्ली, सं. 1946.

64. मेधावी (प्रबन्ध काव्य) - किताब महल
इलाहाबाद, सं. 1947.

65. राह के दीपक (कविता-संग्रह) - किताब महल
इलाहाबाद, सं. 1948.

66. पांचाली (खंड काव्य) - आत्माराम एण्ड सन्स
दिल्ली, सं. 1955.

67. रूपछाया (प्रबन्ध काव्य) - राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, सं. 1956.

(ट) आलोचना - इतिहास, संस्कृति, चिन्तन

68. भारतीय पुनर्जागरण की भूमिका - आत्माराम एण्ड सन्स
दिल्ली, सं. 1946.

69. भारतीय संत परंपरा और समाज - आत्माराम एण्ड सन्स
दिल्ली, सं. 1949.

70. संगम और संघर्ष - किताब घर
दिल्ली, सं. 1949.

71. प्राचीन भारतीय संत परंपरा और इतिहास – सरस्वती पुस्तक सदन आगरा, सं. 1953.

72. प्रगतिशील साहित्य के मापदंड – सरस्वती पुस्तक सदन आगरा, सं. 1954.

73. हिन्दी साहित्य की धार्मिक और सामाजिक पुनर्पीठिका – विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, सं. 1954.

74. समीक्षा और आदर्श – विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, सं. 1955.

75. काव्य यथार्थ और प्रगति – विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, सं. 1955.

76. काव्य, कला और शास्त्र – विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, सं. 1955.

77. काव्य के मूल विवेच्य – किताब घर दिल्ली, सं. 1955.

78. काव्य विजय – किताब महल इलाहाबाद, सं. 1955.

79. महाकाव्य विवेचन – आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1958.

80. तुलसीदास का कथाशिल्प – राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1958.

81. आधुनिक हिन्दी कविताओं में प्रेम और शृंगार – विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, सं. 1961.

82. आधुनिक हिन्दी कविता में विषय और शैली – विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, सं. 1961.

83. गोरखनाथ और उनका युग – आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1962.

84. प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास – आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1990.

(ठ) अनुवाद

85. मृच्छकटिक (मृच्छकटिक, शूद्रक) – आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1957.

86. मुद्राराक्षस (मुद्राराक्षस विशाखदत्त) – राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1957.

87. दशकुमार चरित (दशकुमार चरितम) – आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1957.

88. मन के बंधन ("लॉयल्टीज़" गॉल्सवर्दी) – आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1957.

89. रूप की ज्वाला ("शी", राइडर हेगार्ड) – आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1957.

90. तूफान ("दि टेम्पेस्ट", शेक्सपियर) – राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1957.

91. एक सपना ("ए मिड्समर नाइट्स ड्रीम", शेक्सपियर) – आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1957.

92. ऑथेलो ("ऑथेलो" शेक्सपियर) - राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1957.

93. हैमलेट ("हैमलेट", शेक्सपियर) - राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1957.

94. बारहवीं रात ("ट्वेल्थ नाइट" शेक्सपियर) - राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1957.

95. सम्राट लियर ("किंग लियर" शेक्सपियर) - राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1957.

96. वेनिस का सौदागर ("द मर्चेंट ऑफ वेनिस", शेक्सपियर) - राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1957.

97. मैकबेथ ("मैकबेथ", शेक्सपियर) - राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1957.

98. रोम्यो जूलियट ("रोम्यो जूलियट", शेक्सपियर) - आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1957.

99. जैसा तुम चाहो (ऐज़ यू लाइक इट, शेक्सपियर) - राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1957.

100. जूलियस सीज़र ("जूलियस सीज़र", शेक्सपियर) - राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1957.

101. निष्फल प्रेम ("लव्स लेबर्स लॉस्ट" शेक्सपियर) - राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1958.

102. परिवर्तन ("दि टेमिंग ऑफ दि श्रू", शेक्सपियर) - आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1958.

103. भूलभुलैया {"दि कॉमिडी ऑफ ऐरर्स", शेक्सपियर} - राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1958.

104. शिल्पि का प्रेम {"एफ्रोडाइट" पियरे लुई} - आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1959.

105. एण्टीगोने {"एण्टीगोने", सोफोक्लीज़} - आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1961.

106. ईडीपस पाप, प्रेम और मृत्यु {"ईडीपस रैक्स" तथा ईडीपस एट कोलोनस", सोफोक्लीज़} - आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1961.

107. संसार के महान उपन्यासकार - राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1961.

108. होरेस का काव्य कला - राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1961.

109. पूर्णकलश - आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1961.

110, मेघदूत {हिन्दी} {"मेघदूत", कालिदास} - आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1961.

111. रॉकेट की कहानी {"सेटेलाइट्स, राकेट्स एण्ड आऊटर स्पेस, वेली से} - आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1962.

112. मेघदूत {अंग्रेज़ी} {"मेघदूत" कालिदास} - राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, सं. 1976.

113. ऋतुसंहार (अंग्रेज़ी व हिन्दी) - राजपाल एण्ड सन्स
("ऋतुसंहार" कालिदास) दिल्ली, सं. 1977.

114. तिल का ताड (''मच अड्डू एबौट - राजपाल एण्ड सन्स
नत्तिंग", शेक्सपियर) दिल्ली, सं. 1960.

II. आलोचनात्मक ग्रंथ

115. आज का हिन्दी उपन्यास - डॉ. इन्द्रनाथ मदान
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली, सं. 1966.

116. आठवें दशक के हिन्दी उपन्यास - डॉ. रजनीकान्त जैन
ऋषभचरण जैन एवं संतति
दिल्ली, प्र. सं. 1988.

117. इतिहास और संस्कृति - डॉ. वा. मो. आठले
सूर्यभारती प्रकाशन
दिल्ली, प्र. सं. 1996.

118. उपन्यास लेखन शिल्प - सं. ए. एस. ब्यूरैक
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी
भोपाल, प्र. सं. 1923.

119. ऐतिहासिक उपन्यासों का - डॉ. दीनानाथ सिंह
रचना कौशल विजय प्रकाशन मंदिर
वारणासी, सं. 1992.

120. ऐतिहासिक उपन्यास - सत्यपाल चुघ
नेशनल पब्लिशिंग हाऊस
दिल्ली, प्र. सं. 1974.

121. ऐतिहासिकता और हिन्दी उपन्यास – डॉ. मक्खनलाल शर्मा
प्रेमशील प्रकाशन
दिल्ली.

122. क्योंकि समय एक शब्द है – रमेश कुन्तल मेघ
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद, प्र. सं. 1975.

123. केन्द्र और परिधि – अज्ञेय
नेशनल पब्लिशिंग हाऊस
दिल्ली, प्र. सं. 1984.

124. चतुरसेन के उपन्यासों में इतिहास का चित्रण – विद्याभूषण भारद्वाज
विद्याभूषण भारद्वाज

125. प्राचीन भारत का इतिहास – रमाशंकर त्रिपाठी
नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स
बनारस, सं. 1951.

126. प्राचीन भारत का इतिहास – भगवतशरण उपाध्याय
ग्रंथमाला कार्यालय
पटना, सं. 1948.

127. प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास – राधाकृष्ण चौधरी
भारती भवन
पटना, सं. 1974.

128. प्राचीन भारत का इतिहास – डॉ. ओमप्रकाश
विकास पब्लिकेशन
दिल्ली, सं. 1971.

129. प्राचीन ऐतिहासिक उपन्यास: इतिहास और कला – सुषमा त्यागी
अनुराधा प्रकाशन
मेरठ, प्र.सं. 1985.

130. प्रगतिवादी हिन्दी उपन्यास – डॉ. बदरी प्रसाद
ओम प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं. 1987.

131. प्राचीन भारतीय संस्कृति – बी.एन.लुनिया
लक्ष्मीनारायण अग्रवाल
आगरा, प्र.सं. 1979.

132. बिन्दु प्रति बिन्दु. समकालीन आलोचना – विश्वंभरनाथ उपाध्याय
पंचशील प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं. 1984.

133. भारतीय साहित्य के निर्माता रांगेय राघव – मधुरेश
साहित्य अकादमी
नई दिल्ली, प्र.सं. 1987.

134. भारतीय संस्कृति का विकास – सत्यकेतु विद्यालंकार
श्री सरस्वती सदन
दिल्ली, प्र.सं. 1979.

135. भारत का सांस्कृतिक इतिहास – हरिदत्त वेदालंकार
आत्माराम एण्ड सन्स
दिल्ली, तृ.सं. 1962.

136. भारत इतिहास और संस्कृति – मुक्तिबोध
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली, तृ.सं. 1985.

137. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य – रामविलास शर्मा
वाणी प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं. 1984.

138. रांगेय राघव एक अंतरंग परिचय – सुलोचना रांगेय राघव
राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली, सं. 1998.

139. रेखाएँ और संस्मरण – क्षेमचन्द्र सुमन
वाणी प्रकाशन
दिल्ली, सं. 1992.

140. वैज्ञानिक उपन्यास और उपन्यासकार – जगन्नाथ चौधरी
साहित्यालोक
कानपुर, प्र.सं. 1986.

141. वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन – कृष्णा अवस्थी
पुस्तक संस्थान
कानपुर, सं. 1978.

142. संस्कृति के चार अध्याय – दिनकर
उदयाचल
पटना, तृ.सं. 1962.

143. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में पुरुष पात्र – दुर्गेशनंदिनी प्रसाद
गीता प्रकाशन
हैदराबाद, प्र.सं. 1993.

144. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में वैचारिकता – आशा मेहता
भारतीय ग्रंथ निकेतन
दिल्ली, प्र.सं. 1988.

145. हिन्दी कथा साहित्य – पद्मलाल पुन्नालाल बक्षशी
हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर
मुम्बई, सं. 1997.

146. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ – शशिभूषण सिंहल
विनोद पुस्तक मंदिर
आगरा, सं. 1988.

147. हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग – त्रिभुवन सिंह
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
वाराणसी, सं. 1957.

148. हिन्दी उपन्यास पाश्चात्य प्रभाव – भारत भूषण अग्रवाल
दिग्दर्शनचरण जैन
दिल्ली, प्र.सं. 1971.

149. हिन्दी उपन्यास सृजन और सिद्धांत – नरेन्द्र कोहली
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली, प्र.सं. 1989.

150. हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास – सुरेश सिन्हा
अशोक प्रकाशन
दिल्ली, सं. 1965.

151. हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष – शिवदान सिंह चौहान
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली, सं. 1954.

152. हिन्दी उपन्यास – सुषमा धवन
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली, सं. 1961.

153. हिन्दी साहित्य की भूमिका – हज़ारी प्रसाद द्विवेदी
हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर
मुंबई, सं. 1940.

154. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद – त्रिभुवन सिंह
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
वाराणसी, सं. 1957.

155. हिन्दी उपन्यास सौ वर्ष – रामदरश मिश्र
गिरनार प्रकाशन
पिलाजीगंज, प्र.सं. 1984.

156. हिन्दी तथा गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन – सरोजिनी शर्मा
आर्य बुक डिपो
दिल्ली, प्र.सं. 1981.

157. हिन्दी उपन्यास द्वन्द्व एवं संघर्ष – मोहनलाल रत्नाकर
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली, सं. 1993.

158. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली – सं. डॉ. मुकुन्द द्विवेदी
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं. 1981.

159. हिन्दी उपन्यास शिल्प, बदलते परिप्रेक्ष्य – प्रेम भटनागर
अर्चना प्रकाशन
जयपुर, प्र.सं. 1968.

160. हिन्दी आँचलिक उपन्यास: उद्भव और विकास – इन्दिरा जोशी
देवनागर प्रकाशन
जयपुर, प्र.सं. 1985.

161. हिन्दी के आँचलिक उपन्यास – मृत्युंजय उपाध्याय
चित्रलेखा प्रकाशन
इलाहाबाद, प्र.सं. 1989.

III. पत्रिकाएँ

1. साहित्य संदेश - जनवरी-फरवरी, 1963.

2. प्रकर - सितंबर, 1972
अक्तूबर, 1963.

3. साक्षात्कार - अप्रैल 1985
जनवरी 1987.
सितंबर 1992.

4. परिशोध - जनवरी 1972
मार्च 1979.

5. लहर - सितंबर 1963.

6. आलोचना - 31 जुलाई 1964.

7. आजकल - अगस्त 1998
नवंबर 1996.

8. इन्द्रप्रस्थ भारती - जनवरी 1998.